भूमिका।

यह पुस्तक जो अब पाठकोंके हाथमें है प्रचलित धर्मोंके भेद और विरुद्धताके मूल कारणोंके सम्बंधमें वर्षोंकी लगातार धैर्ययुक्त छानवीनका फल है। इसको मैं सत्यताके जिज्ञासुओंके सन्मुख एक गुप्त भाषाके विज्ञापनसहित उपस्थित करता हूं जो एक ऐसी भारी दर्याफ्त है कि जिससे धार्मिक विश्वासका रंग परिवर्त्तित हो जावेगा और विचारोंकी कायापलट हो जावेगी। निःसंदेह कुछ मनुष्योंका ऐसा विचार चिरकालसे है कि धार्मिक पुस्तकोंमें केवल प्राकृतिक शक्तियों अर्थात् मेघ वर्षा वनस्पतिकी उष्णता इत्यादिके काव्य अथवा रूपक अलंकार भरे हुये है परन्तु इस विचारसे जिज्ञासु विचारक वुद्धि संतुष्ट नहीं होती और इस पर साधारण रीतिसे सहमतता भी नहीं है जो इसके सत्य होनेकी दशामें होनी चाहिये थी। तथापि केवल इनकी विरुद्धता ही इस बातको विज्ञापित कर देती है कि यह पुस्तकें इतिहास रूपमें पढ़े जानेके लिये नहीं लिखी जा सकती थीं और न लिखी गईं। जो नवीन दर्याफ्त अब हुई है वह इस बातको जाहर कर देगी कि वेद कुरान जेन्दावेस्ता और निस्संदेह सारे प्राचीन कथाशास्त्र, सब एक ही भाषामें लिखे हुये हैं और उस विरुद्धताके स्थानपर जो उनके ऊपरी लिपिके अक्षरोंकी भाषाओंमें पाई जाती है परस्परमें एक दूसरेकी एकताको साबित करते हैं। हम इस गुप्त भाषाको पिक्टोक्रत

कह सकते हैं ताकि इसको प्राकृत अथवा साधारण मनुष्योंकी भाषा और संस्कृत अथवा विद्वानोंकी भाषासे पृथक् किया जा सके। पिक्टोकृतका मुख्य भाव यह है कि वह उत्तमोत्तम मानसी विचारको कविताके रूपमें प्रगट करती है और उसका गुण यह है कि उसमें समस्त दर्शनोंको एक ही चित्र या चित्रोंके चौखटेमें भर दिया जा सकता है। इस पुस्तकका कुछ विषय मेरी पूर्व लिखित 'दि की आफ नालेज' में दिया गया था और एक संक्षिप्त भाग इसका मेरे प्रेक्टिकल पाथके संकलन (Appendix) में दिया जा चुका है जो १९१७ में प्रकाशित हुई थी। यह नवीन पुस्तक जो व्याख्यानोंके रूपमें लिखी गई है सारी ज्ञानवीनके फलको एक संयुक्त और संक्षिप्त रूपमें दिखाती है और इस विचारसे छापी जाती है कि इससे कमसे कम विद्यामयी ज्ञानवीनकी उन्नति होगी। यह बात मेरे लिये कुछ साधारण संतोषका कारण नहीं है कि मैं इसको ऐसे मूल्य पर अर्पण कर सकता हूं कि जो प्रत्येक मनुष्यकी शक्तिमें है। केवल इतना ही और कहना बाकी है कि इस पुस्तकके व्याख्यान सब एक दूसरे से एक विशेष रूपसे उपयुक्त हैं और उनको उसी क्रमसे पढ़ना चाहिये जिसमें वह दिये गये हैं।

हरदोई, ३१ मार्च १९२१
जनवरी १९२२
(हिन्दी अनुवाद)

चम्पतराय जैन।

संक्षिप्त चिन्होंकी व्याख्या।

———o—:○:—o———

(१) इ० रि० ए०—दि इनसाइक्लोपीडिया ओफ रिलीजन ऐंड ऐथिक्स।

(२) प० हि० भा०—दि परमेनेंन्ट हिस्ट्री ओफ भारतवर्ष।

(३) से० बु० ई०—दि सेक्रेड बुक्स ओफ दि ईस्ट।

(४) से० बु० हिं०—दि सेक्रेड बुक्स ओफ दि हिंदूज़।

(५) से० बु० जै०—दि सेक्रेड बुक्स ओफ दि जैनज़।

(६) सि० सि० फि०—दि सिक्स सिस्टेम्स ओफ इंडियन फिलोसोफी (मैक्समूलर साहबकी)

विषय सूची।

पहला व्याख्यान।

दूसरा व्याख्यान।

तृतीय व्याख्यान।

(क)

तृतीय व्याख्यान।

(ख)

चतुर्थ व्याख्यान ।

पंचम व्याख्यान ।

(क)

पंचम व्याख्यान।

(ख)

षष्ठ व्याख्यान।

सप्तम व्याख्यान।

अष्टम व्याख्यान।

नवम व्याख्यान।

अशुद्धि शुद्धि पत्र ।

इस पुस्तकमें छपाईकी बहुत गलतियां हैं परंतु बडी बडी गलतिया यहां दिखाई जाती हैं। पाठक क्षमा करें ।

पृष्ठ	सतर	कहांसे	अशुद्धि	शुद्धि ।
२	३	नीचे	यहूदी	यहूदी मतों
१८	३	नीचे	यहूदी	यहूदी धर्म
१६	११	ऊपर	हविल	हाविल
२३	६	नीचे	मानता	मानते
२५		....	सांख्यके तत्त्वोंके नकशेको इसी नकशेसे जो फिर पृष्ठ १५६ पर दिया गया है मिलाकर शुद्ध करलो ।	
२६	६	ऊपर	धारणा	धारणा
३५	१	नीचे	वकरी	वकरे
४४	६	ऊपर	आत्माके भले बुरे कार्य्योंके कारणसे	आत्माके भले बुरे कर्मों द्वारा
४८	३	,,	वैज्ञानिक रीतिसे	अर्थात् वैज्ञानिक रीतिसे ।
५०	६	,,	पाये	लिए
,,	१४	,,	(कीमियाई गुण)	(कीमियाई) गुण
५५	५	ऊपर	उठना	उठानी

	११	,,	हद्द औसतको उसी समय " जामे "	हद्द औसत (Middleterm) को उसी समय "जामे" (सर्वदेशी)
५६	८	नीचे	कुदरती	कुदरती मन्तक
५७	११	,,	नतीजा	यह नतीजा
,,	,,	,,	एक अनुभव	एक प्रकारका ऐन्द्रिय ज्ञान
६१	१	,,	है जैसे	है कि जैसे
६२	१	,,	अभ्यासों	आभासों
६३	११	,,	सहधर्मी	सहधर्मी उदाहरण
,,	१	,,	दवा	रवा
६४	६	ऊपर	नहीं	नहीं मानी
,,	२	नीचे	पर=	पर साध्य
६५	८	,,	अर्थ	(अर्थ)
,,	६	,,	का	को
६६	११	,,	झलकाते	झलकाते
६७	२	,,	वह; जो	वह जो
७४	५	ऊपर	में	के
८५	७	,,	यूनीवर्र्स	यूनीवर्स
८७	२	नीचे	भान	ज्ञानहीन
८८	६	ऊपर	कर्तव्य	उत्तेजना

पृष्ठ	सतर	कहांसे	अशुद्ध	शुद्ध
९१	११	,,	प्रकार	प्रकारका
९९	२	नीचे	तार	तौर
१०६	५	,,	सकेगा	हो सकेगा
१०९	११	ऊपर	प्रकार	प्रकारकी
११०	१	नीचे	केदेने	किसिमितकेज़ वदल देने
१११	७	ऊपर	नहीं है	है
,,	,,	,,	स्वाभाविक	संभवित
११३	१०	नीचे	वसना	वस्त्र
			संचरित	संचित
११६	३	,,	इस	उस
११६	४	,,	होनेपर	प्राप्त होनेपर
१२२	८	ऊपर	वार	वारबार
१२७	४	नीचे	नये	नये प्रश्न
१३५	५	ऊपर	विचार	और विचार
१३७	६	,,	आनंदकी	आनन्दके आदर्शकी
,,	६	नीचे	पथप्रदर्शक	पथप्रदर्शन
,,	२	,,	जिससे	जैसे
१३८	८	३०	रूच	रुख
,,	१२	,,	२	२ रूपमें

१४०,१	४	नी०	से	का अर्थ
१५२	५	,,	होगा	दर्कार होगा
१५७	६	ऊ०	से	से भी
,,	१०	,,	तौर पर कि:-	तौर पर
१५८	८	नी०	नहीं है	नहीं हो सक्ते हैं
१६२	३	,,	परिवत	परिवर्तित
१७२	१०	,,	वस	सत्य
१७६	५	,,	सम्बं	सम्बंध
१८६	३	ऊपर	पूर्ति	शर्तों
१६१	६	,,	किना	कल्पनायें
१६१	६	,,	शाहद	अहद
१६२	५	नीचे	देशों	दोनों
,,	३	,,	अब	अब मैं
१६३	३	,,	क्या	व्यय
१६४	६	,,	आनियान	आलिमानह
,,	६	,,	दुर्जन	हृदय
२००	६	,,	मध्य	मध्यकी
२०१	१	ऊपर	चले आये हैं	छुपे चले आये
२०५	५	नी०	करामातें है	करामातें बिल्कुल मुखतलिफ हैं
,,	३	,,	ज्यादा	ज्यादा ईश्वरीय
२०७	५	ऊ०	कुरानिय	वह कुरानिय
२०८	१	,,	हेकल	हेकलके
२०८	८	नी०	वाकीकी	वाणीकी
२०६	६	ऊपर	फिर्का	फिर्का जो
,,	१	नीचे	और जो यूसू	यूसू
,,	१	नीचे	ज्योति	ज्योतिष

११२	८	ऊपर	खयालत	खयालात
११३	८	,,	यरी	हरी
,,	३	नीचे	पसज़	वाअज़
११५	१	ऊपर	यशै	यशैयाह
११७	७	ऊपर	धारण	शरीर धारण
११९	,,	नीचे	मानते	जानते
१२०	४	,,	वातनी	बातिनी
१२१	६	ऊपर	इवरुष	इब्नरूश्द
१२३	११	,,	विद्या	भंजनविद्या
१२४	१	,,	परिचयपन	परिचयपत्र
१२४	१०	,,	कहे	कटे
,,	३	नीचे	अवश्य	अब हम
१२६	११	ऊपर	अनिल	अग्नि
१२९	३	नीचे	देह	दण्ड
१३१	१०	नीचे	क्लिष्ट	बड़े
१३१	२	नीचे	Vorasba	Varsha
१३२	७	ऊपर	प्राणापनसे	पूरे तौरसे
१३३	१	ऊपर	भावों	भवों
१३३	८	नीचे	भ्रांतों	अवतारों
१३४	६	नीचे	सज्ञा	शब्द
१३६	१	ऊपर	पुण्य पाप	नेकी व बदी
१३७	३	ऊपर	॥ द्वेष	= द्वेष
१३७	३	ऊपर	बंधान	बंधन
१४०	३	ऊपर	३१	३
१४१	१	ऊपर	जनती	जानती
१४२	१	नीचे	पदार्थ	जीवत्व
१४३	३	ऊपर	भेड़	बर्रा

२४७	६	नीचे	×	+
२४८	१०	ऊपर	विश्वास	कल्याण
२४६	२	नीचे	करंथियों	२ करंथियों
२५६	११	नीचे	ईसू	ईसूकी
२५६	७	नीचे	कैद	कैदके
२५६	६	नीचे	वस	वस असत्
२५६	५	नीचे	गड़ा	गढ़ा
२५७	११	नीचे	३२	३३
२५७	२	नीचे	कमाल	कमालका
२६३	४	ऊपर	तना	तन्न
२६५	६	,,	पाप और पुण्य	नेकी और वदी
२७१	२	,,	मुकद्दमसे	मुकद्दसमें
२७२	११	ऊपर	हुआ	होता
२८०	५	,,	पुण्य और पाप	नेकी और वदी
२८७	६	,,	अथवा दृश्य	दृश्य
२६४	७	नीचे	प्रशंसा	वर्णन
२६५	११	ऊपर	हुई	दुई
२६६	७	नीचे	ह्यूनेज	ह्यूजेज्
२६६	३	नीचे	शक्ति की	की शक्ति
३०१	३	नीचे	मीर	गीर
३३४	६	नीचे	ओरमजदा जो पहलवी और हमजद	ओर्मज्द जो पहलवी ओहारमज्द
३४३	६	ऊपर	अच्छा	दर्याफ्त
३४४	२	नीचे	Principals	Priciples
३५०	८	नीचे	भग	भाग
३५८	२	ऊपर	सव या थोड़े	सव थोड़े
३६६	८	नीचे	उस	उसकी
३६७	१०	ऊपर	पत्र	पत्नी

३६८	,,	नीचे	बदल	बदला
३७४	१	ऊपर	तलियों	तीलियों
३७६	७	ऊपर	इसजिस्ना	इसतिस्ना
,,	८	नीचे	जबर २८	ज़बूर ७८
३७८	५-६	ऊपर	मनुयों	मनुष्यों
३८३	१	नीचे	निमग्न	लय
३९१	८	,,	जा	जी
३९२	५	ऊपर	दुसरे	दूसरो
४०१	८	,,	याकूब	याकूबके
४१०	४	,,	रूप कभी	रूपक भी
४१७	८	ऊपर	उपयुक्त	अनुचित
४२४	१३	,,	प्रशंसा	वर्णन
४३०	१	नीचे	१	५०
४४२	७	ऊपर	परमात्मा	परमात्माके
४४७	४	ऊपर	Sb.	Sp.
४५३	७	,,	प्रत्यच्च	यथार्थ
४५४	२	,,	उपयुक्त	हर्षदायक
,,	५	,,	चुनानी	चुङ्गनी
४५५	१३	,,	द्रव्य भड़क	भड़क
४६२	६	नीचे	स्थानपर	स्थानपन
४६४	४	,,	सव	शव
४६५	२	,,	समान	सामान
४६६	१०	,,	जोतने सींचने	जोतने या खेत सींचने
४६७	६	ऊपर	स्वर	सार
४६९	१	नीचे	हजी	हाजी
४७३	७	ऊपर	चमन	वमन
४७७	४	,,	धर्मके	धर्म
४७८	२	,,	अनित्य	अवास्तविक

श्रीपरमात्मने नमः ।

असहमत संगम ।

अर्थात्

तुलनात्मक धर्मनिर्णय ।

प्रथम व्याख्यान ।

विषय-दर्शन ।

तुलनात्मक धर्मनिर्णय एक विज्ञान है । वह मानुषिक विद्या का वह अंग है कि जो भिन्न २ (धर्मों) मतोंकी शिक्षाओंको एक दूसरेसे अनुकूल करनेके निमित्त उन मतोंके विचारोंका निश्चय करनेकी जिज्ञासा करता है । और सत्य पर पहुंचनेके लिये सनातन विद्याको नियमानुकूल एकत्रित, करता है और इसका अर्थ बतलाता है । उसका प्रादुर्भाव आलोचनाकी उस

नीति पर निर्भर है कि जिसकी अंतिम प्रकृति मंडनरूप है। कमसे कम इस अंशमें कि वह प्रत्येक प्रकारके विश्वासमें सत्यताके अंशको खोजनेका प्रयत्न करता है। यद्यपि प्रसङ्गवश प्रारम्भमें भिन्न २ मतोंमें लगे हुए भ्रम और त्रुटियोंके जालोंको हटानेके लिये थोडी बहुत तोड फोड किये बिना भी काम नहीं चलता है।

यह विषय बहुत विशाल एवं नूतन है। वास्तवमें अब तक किसीने इसकी ओर वैज्ञानिक ढंगसे दृष्टिपात नहीं किया है। इस पर चौदहवीं शताब्दीका एक ग्रन्थ 'सर्वदर्शनसंग्रह' नामक मिलता है, परन्तु न तो यह ग्रन्थ वास्तविक विज्ञान पर अवलम्बित है और न इसमें सब धर्मोंका ही वर्णन है। इसके कर्ता माधवाचार्यने केवल संक्षेप रूपमें उन मुख्य मुख्य बातों पर जो उनके जाने हुए धर्मोंमें विवादास्पद थीं, तर्क वितर्क किया है। परन्तु वह प्रश्न जो आजकल उपस्थित है वह संक्षेपमें मुख्य २ सैद्धांतिक बातों पर वादानुवाद कर लेनेसे उतना सम्बन्ध नहीं रखता, जितना कि प्रत्यक्ष ऐसे विरोधी जैसे जैन, वैदिक, ईसाई, इस्लाम, पार्सी और यहूदीको एक लायनमें लाकर सहमत करा देनेसे रखता है। यह कहना अनावश्यक है कि अबतक इस प्रकारके प्रयत्न नहीं किए गए हैं। हां! वर्तमान समयके कुछ

अनभिज्ञ अथवा अर्धअभिज्ञ विद्वानोंने पुरुषार्थके जोशमें और मानुषिक प्रेमसे प्रेरित हो इन विभिन्न धर्मोंमेंसे कुछको खींचतान कर एक समान प्रकट करनेका प्रयत्न किया है। परन्तु हर प्रकारके विश्वासोंको शामिल करते हुए, अर्थात् पूर्ण रूपसे इस विषयपर कभी भी विचार नहीं किया गया है और न मानुषिक विचारावतरणके इतिहासमें कभी इससे पहिले विभिन्न धर्मोंके आपसी झगडोंके मूल कारणोंको जाननेका प्रयत्न ही किया गया है।

तुलनात्मक विधिके सम्बन्धमें भी हमारे पूर्वजोंको यह नियम पसन्द आया है कि विभिन्न धर्मोंके विरोधात्मक तत्त्वोंमेंसे कुछको जिन पर वे सहमत हैं छांटलें और उन पर जोर दें। और शेष उन सब तत्त्वोंको, जो विभिन्न धर्मोंमें विरोधात्मक पाए जाते हैं, दबा दें। परन्तु यह नियम हमें पसन्द नहीं है। कारण कि कहीं विरोध इसप्रकार दबानेसे दब सक्ता है? और न कभी स्थायी ऐक्य—समानता ही संभव है जबतक कि विरोधात्मक तत्त्व हल न हो जावें। अतः वास्तविक एकता तक पहुंचनेके लिए यह आवश्यक है कि हम इन विरोधोंकी तली तक पहुँचें, जिससे कि उनके आन्तरिक एकताके नियमोंको (यदि कोई हो तो) जान सकें। अस्तु। हमें बहिर्भागके नीचे खूब गहरा गोता लगाना

होगा जिसके द्वारा हम इन विरोधोंको उत्पन्न होता देख सकें। इस प्रकार हम एक सत्यके मंदिरका निर्माण करेंगे जो सब जातियो और मनुष्योके लिए वास्तविक पूजनीय और एकताका पूजास्थान भी होगा और जहां पर विरोधोंको दवाया नहीं जायगा परन्तु वे सत्यता और यथार्थताके वास्तविक तत्त्वोको साफ और निश्चित करानेके कारण वन जांयगे और जहां पर उनका दुहराना मनुष्योंमें हार्दिक प्रेम और मित्रताको और भी ज्याद् पुष्ट करेगा।

परन्तु यह विचार भी आपके हृदयमें न आना चाहिए कि आप या मैं ऐसे विषयको इस लेखमें पूर्णतया हल कर सक्ते हैं। केवल इस विषयकी विशालता ही इसे असम्भव ठहरानेके लिए पर्याप्त है। दो प्रकारके कष्ट यहां पर उपस्थित होते हैं। एक समयका, जो ऐसे कार्यके लिए बहुत ही संकुचित है। दूसरा अजानकारीका उन अद्भुत गुप्त समस्याओंके मतलबसे, जो बहुतसे धार्मिक एवं सैद्धान्तिक तत्त्वोंसे संबंधित हो गए हैं। परन्तु इन कष्टोंके मुकाबलेमें एक विश्वासदायक व साहसवर्धक बात भी है। और वह यह है कि गुप्त समस्याओंकी शिक्षा अनुमानतः समानान्तर ढंग पर विभिन्न धर्मों व मतोंमें चली आई है और उसके हल करनेकी कुञ्जी भी प्रत्येक

प्राचीन शास्त्रमें छिपी हुई मिलती है और सरलतासे बनाई भी जा सकी है। गुप्त शिक्षाओं और समस्याओंका बड़ा एवं विचित्र समूह इस प्रकार ऐसे कुछ नियमो पर निश्चित हो जाता है जिनसे कि हम विश्वस्त रूपसे प्राचीन धर्मोके वास्तविक तत्त्वोका, जो शताब्दियोकी धूलके नीचे दबे पड़े हुए है, फिरसे निर्माण कर सके हैं। इस ढंग पर जो नतीजे हम निकालेंगे उनकी सत्यताका, बल्कि कहना तो यूं चाहिए कि उनकी यथार्थ सत्यताका, पूरा विश्वास विभिन्न मतोंके एक स्थान पर मिलनेसे हो जाता है। अर्थात् जब कि विज्ञान (Science) सिद्धांत, पुराण, शास्त्र आदिका मिलान एक बातपर हो जावे तो फिर उसकी सत्यता और पूर्णतामें कोई संशय नहीं रह सक्ता है। अस्तु। हम केवल तुलनात्मक-धर्म विज्ञानके प्रारंभिक तत्त्वोका ही वर्णन नहीं करते रहेंगे बल्कि एक यथार्थ सत्य व एकताके मंदिरका भी निर्माण करेंगे जो हर जमाने और हर समय केलिए वास्तविक मीरास (पैतृक सम्पत्ति) मनुष्य जातिका होगा और यह एक उच्च एवं विशाल नीतिशास्त्रका पवित्रस्थान भी होगा जो हर प्रकार पूर्ण एवं अपने प्रत्येक अंगमें पूर्ण और स्वावलम्बित होगा। यद्यपि इसमें अधिक स्थानोंके लिए भी जो हमारी बनाई हुई भित्तियो और नियमोके ऊपर भविष्यमें

उठाए जायँ, गुन्जाइश रहेगी। हम आशा करते हैं कि हमारे प्रयत्नोका फल जो आपके सामने आएगा वह पूरे तौरसे हमारे ढंग और नियमकी सफलता और सत्यताका काफी प्रमाण होगा।

धर्म-मिलन (ऐक्य) के विषयमें आपको और मुझको जो इस न्यायके मंदिरमें विद्यमान हैं इसबात पर सहमत होना चाहिए कि विभिन्न समस्याओंको हल करनेमें, जो इस सत्यकी खोजमें मिलें, ठीकठीक न्यायकी कसौटी ही हमारी पथप्रदर्शक होनी चाहिये। पक्षपात और द्वेष सत्यताके विपरीत हैं। और उन्मत्तताका उत्ताप बुद्धिका संहारक है। मनुष्योंके निजी अन्ध विश्वास और अनिश्चित ज्ञान भी हमको सहायता नहीं दे सके हैं। इनसे भी बुद्धिको ज्ञानप्राप्ति नहीं होती है। और इस कारण सत्यकी खोजमें यह बाधक है। जैसा कि एक और स्थान पर पहले कहा गया है। यदि वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके बजाय मनुष्योंके निजी विश्वासोपर भरोसा किया जाय तो प्रत्येक पागल मनुष्य को भी धर्माचार्य बननेका अवसर प्राप्त होगा और प्रत्येक उन्मत्त मनुष्यको विज्ञानप्रेमी बननेका। बस, न्यायकी कसौटी—केवल बुद्धि ही हमारी पथप्रदर्शक हो सकी है। कमसे कम उस समय तक तो अवश्य ही, जबतक हम किसी ऐसे गुरुको न पालें जिस-

की पथप्रदर्शक बुद्धि हमारे पगोंको सत्य मार्ग पर चलानेके लिए अचल प्रकाशका कामदे। इसी कारणवश प्रारंभमें हमें धर्मशास्त्रोंके तत्त्वोंको भी छोड़ना होगा। क्योंकि करीब २ सर्व धर्मोंके शास्त्र केवल ऐसी बातोसे भरे हुए नहीं हैं जो कि पूर्णरूपेण अविश्वास योग्य ही हों और जिन को कि केवल स्वधर्म होनेके हेतु विश्वास करनेवाला ही ग्रहण कर सक्ता है। सुतरां एक धर्मशास्त्र दूसरे धर्मशास्त्रसे और कुछ स्थानोंपर स्वतः अपने पूर्वकथित सिद्धान्तोसे विपरीत कथन करते है और यहां तक कि उन्हें सरल एवं शुद्ध सत्य मानना नितान्त असंभव प्रतीत होता है।

बुद्धिगवेषणा अथवा मानसिक खोज किसको कहते हैं? और बुद्धिकी उत्तमता एवं विशालता क्योंकर जल्दीसे प्राप्त की जा सक्ती है? ये बाते दूसरे व्याख्यानमें बताई जांयगी। परन्तु यह प्रत्यक्ष है कि जो मनुष्य अपने धार्मिक मिथ्या भ्रमों (Superstition) की जड़ उखाड़ कर नहीं फेक देता है वह सत्य की खोज करने योग्य नहीं कहा जा सक्ता है। यदि कोई सज्जन ऐसा हो कि जो अपनी बुद्धिके निष्पक्षपात विश्वासोको ग्रहण नहीं कर सक्ता है तो उसको शिकायत नहीं करनी चाहिये यदि उसका यह दावा कि उसको समझदार माना जाय बुद्धिके इजलाससे खारिज हो जावे।

अब हम विविध धर्मोंके तत्त्वों और सिद्धान्तोंका वर्णन करेंगे जिससे कि उनकी समानता और विपरीतताके विषयोंका पता चलसके।

जैनधर्म।

जैनधर्ममें सात तत्त्व निम्न प्रकार माने गये हैं—

(१) जीव--अर्थात् चेतन पदार्थ।

(२) अजीव अर्थात् अचेतन पदार्थ।

(३) आस्रव अर्थात् पुद्गलका जीवमें आना।

(४) बन्ध अर्थात् कारावास।

(५) संवर अर्थात् पुद्गल को आनेसे रोकना।

(६) निर्जरा अर्थात् कारावासको तोड़ना।

(७) मोक्ष अर्थात् सिद्धि।

इनको ही पुण्य और पापके मिलानेसे (७+२=९) नवपदार्थ कहते हैं। जगत अनादि निधन है। इसको कभी किसीने उत्पन्न नहीं किया है। इसमें दोप्रकारकी वस्तु पाई जाती हैं-जीव और अजीव। अजीवमें कितनीएक वस्तुएं सम्मिलित हैं जैसे काल, आकाश, पुद्गल आदि। परन्तु इनमें जीव और पुद्गल ही विशेषतया मुख्य हैं। जीव अनंत हैं। और पुद्गल परमाणुओंका समुदाय है। जगतके विविध चक्र परिभ्रमण इन जीव

पुद्गलके आपसी मिलावके फलस्वरूप हैं जो मुख्य २ प्राकृतिक नियमोंपर आधारित है। संसारी आत्माएं पुद्गलसे सम्बन्धित हैं, जिसके कारण उनके वास्तविक गुण विभिन्न परिमाणमें ढक गये हैं एवं निस्तेज हो गए हैं। स्वाभाविक गुणोंका इस प्रकार दबजाना और मन्द पड जाना उस पुद्गलकी तौल और परिमाणपर निर्भर है जो प्रत्येक जीवके साथ लगा हुआ है। पुद्गलसे पूर्ण छुटकारा पा लेनेका नाम मोक्ष है। जिसके प्राप्त होने पर जीवके स्वाभाविक गुण जो मन्द और निस्तेज हो गए थे फिर नये सिरे-से पूर्णरूपेण प्रकाशमान-(उदित) हो जाते हैं। शुद्ध जीवके स्वाभाविक गुणोंमें

(१) सर्वज्ञता

(२) आनन्द और

(३) अमरत्व

शामिल हैं इसी कारण प्रत्येक मुक्त जीव सर्वज्ञ, आनन्दसे भरपूर और अमर हो जाता है। कारण कि उस समय उसके साथ पुद्गल नहीं होता है। इस कारणसे ही प्रत्येक मुक्त जीव परमात्मा कहलाता है। परमात्मा जगतके सबसे ऊँचे भाग पर जिसको सिद्धशिला कहते हैं, रहते हैं, जहांसे गिरकर (च्युत होकर) या निकल कर फिर कभी वह सांसारिक परिभ्रमण और दुःखोंमें

नहीं पड़ते हैं। शेषके अनंत जीव आवागमनके चक्रमें पडे चक-राया करते हैं। वारम्वार जन्मते और मरते हैं। आवागमनमें चार गतियां है। जिनके नाम (१) देव गति (२) नरक गति (३) मनुष्य गति (४) और तिर्यंच गति हैं। देवगति स्वर्गवासी दे-वादिसे संवंध रखती है। नरकगतिका मतलव नारकी जीवोंसे है। मनुष्यगतिका भाव मनुष्य जीवनसे है। शेषके सव प्रकारके जीव तिर्यञ्चगतिमें दाखिल हैं जैसे नभचर, थलचर, कीडे, मकोडे वनस्पति आदि। इन गतियोंमेंसे प्रत्येकमें विभिन्न अवस्थाएँ जीवनकी हैं परन्तु गति चार ही है। स्वर्गवासी देवगण विशेष सुख और आनन्दका उपभोग करते है। किंतु दुःखका वहां भी विलकुल अभाव नहीं है। नारकी जीव अत्यन्त दुःख उठाते हैं। मनुष्य दुःख और सुख दोनों भोगता है किंतु उसके भागमें दुःखका परिमाण विशेष है। और तिर्यञ्च गतिमें भी दुःख और तकलीफ विशेष है। वार २ जन्मना और मरना इन चारो गतियोमें है। (केवल वे ही जीव, जो आवागमनकी सीमाके वाहर हो जाते हैं, सदैवका जीवन उपभोग करते है।) परन्तु इस वातका भय यहां भी नहीं है कि एक जीवनका पुण्य आगामी जीवनमें न मिले। पुण्य और पापका फल जीवके साथ एक जन्मसे दूसरे जन्मको जाता है और उसीके अनुसार आगामी जन्म (जीवन) का गतिवन्ध होता है।

आवागमनसे छुटकारा, व्रतोंके पालने, आचार विषयक नि-यमोंको मानने जैसे अहिंसा, दूसरोंके प्रति क्षमा धारण करना आदिसे और शारीरिक एवं आन्तरिक तपस्या जैसे स्वाध्याय, ध्यान, उपवास आदि करनेसे होता है। व्रत पांच हैं। अहिंसा (किसीको पीड़ा न पहुचाना) सच बोलना, चोरी न करना कुशील (ज़िना) न पालना, और सांसारिक वस्तुओंकी लालसा न करना। खुलासा यह है कि निर्वाण सच्ची श्रद्धा अर्थात सम्यक्दर्शन (तत्त्वोंके विश्वास), सच्चे ज्ञान (तत्त्वोंका ज्ञान) और सच्चे चारित्र (शास्त्रोंमें बताए हुए व्रतों आदिको पालने) से प्राप्त होता है। इस सम्यक् रत्नत्रय मोक्षमार्गका निर्माण परमात्मपद पालेनेके अर्थ हुआ है जो जीवका निजी स्वभाव है। अनंत जीवोंने इस रत्नत्रय मार्गका अनुसरण कर मोक्ष लाभ किया है। जो कि एकमात्र निर्वाण प्राप्तिका मार्ग है। यह मार्ग दो विभागमें है। प्रथम सहल गृहस्थके लिए और द्वितीय कठिन साधुओंके वास्ते।

गृहस्थधर्मका प्रारम्भ सम्यक्दर्शनकी प्राप्तिसे होता है। जि-सके पश्चात् गृहस्थ व्रतोंका पालना प्रारम्भ करता है और धीरे धीरे ग्यारह प्रतिमाओंको पालते हुए ऊपर चढ़ता हुआ सन्या-सपदवीको पालेता है। इससमयसे उसे साधुमार्गके कठिन व्र-

तोंका पालना अवश्यम्भावी होजाता है। ये ग्यारह प्रतिमाएं गृहस्थके लिए है। जिनमेंसे हरपिछली प्रतिमा हर पहिली प्रतिमाकी निस्वत विशेष बढ़ी हुई और उसको अपनेमें सम्मिलित किए हुए है। साधुका जीवन अतिकठिनसाध्य जीवन है। वह अपनेको संसारसे नितान्त विलग करके और अपनी इच्छाओं एवं विषयवासनाओंको निरोधित करके शुद्ध आत्मध्यानमें लीन हो जानेका प्रयत्न करता है इसप्रकार तप व उपवास करते हुए वह अपनी आत्माको पुद्गलसे अलग कर लेता है। और कर्म और आवागमन की जड़ उखाड़ डालता है। कर्मोंके नाश होतेही जीव सर्वज्ञ और अमर हो जाता है एवं अपने स्वाभाविक आनन्दसे भरपूर हो जाता है जिसमें भविष्यमे कभी भी कमती नहीं होती है। जैनधर्मके अनुसार जीवके साथ आवागमन लगा रहता है जबतक कि वह निर्वाणपद प्राप्त न करले। कुछ जीव ऐसे हैं जो कभी भी मुक्त न होंगे यद्यपि परमात्मपद उनका भी स्वाभाविक स्थान हैं। इसका कारण यह है कि उनके कर्म ऐसी बुरी तरहके हैं कि उनको कभी भी रत्नत्रयकी प्राप्ति नहीं हो सकी है अर्थात् उन्हें कभी भी सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका भान नहीं हो सका है जिनके बिदून मोक्ष नहीं मिल सकी है। हम आगे चलकर देखेंगे कि जैनधर्मकी

सिद्धान्तशैली वैज्ञानिक ढंग की है। और इसी कारणसे उसमें किसी देवी देवताओके लिए स्थान नहीं है यद्यपि वह प्रत्येक काल में जो अनंत समयका है, चौवीस सच्चे गुरुओ अथवा तीर्थंकरो (परमात्माओं) की उत्पत्तिको मानता है। तीर्थंकर आवागमनके समुद्रके पार पहुंचनेके लिए जीवोको योग्य मार्ग बताते है। ये महात्मा या महापुरुष किसी बडे या छोटे देवताके अवतार नहीं है वल्कि मनुष्य हैं जो स्वतः भी उसी मार्ग पर चलकर परमात्मपद प्राप्त करते हैं जिसको वादमें वे दूसरोंको बताते है।

वैदिक धर्म।

यह मनुष्यकी मुख्य प्रकारके देवी देवताओंकी भक्तिके वर्णनसे संबंधित हैं। इन देवताओंमें तीन मुख्य है जो एक भी हैं और तीन भी। ये (१) सूर्य्य (२) इन्द्र और (३) अग्नि हैं।

सूर्य्य आकाशमें राजा और सरदार है। शेषके देवता उसे पथप्रदर्शक मानते हैं और वह उनको अमर जीवन दान देता है। गायत्रीका पाक मंत्र सूर्य्य ही के लिये पढ़ा जाता है। इस महापवित्र मंत्रका भाव इसप्रकार हैः—"हम ध्यान करते हैं इस आकाशके जीवित करनेवालेके प्रकाश पर। वह हमारी वुद्धि को खोले।"

इन्द्र वज्रका मालिक है और देवताओंकी फौजका सेनापति। इसकी एक अद्भुत सूरत हिन्दू देवताओंमें है। इस कारणके होते हुए कि इसने अपने गुरुकी स्त्रीसे व्यभिचार किया था और तत्फलस्वरूप इसके शरीरमें फोड़े फुन्सी फूट निकले थे। ब्रह्मा जीने उन सबको उसकी प्रार्थना पर नेत्रोंमें परिवर्तित कर दिया और इस प्रकार उसे पहिलेसे भी विशेष सुंदर बना दिया।

इन्द्रका शत्रु विरित्र है। "जिसकी राक्षसी (असुरों की) सेना इसके साथ सदैव संग्राम ठाने रहती है। विरित्र अगणित समय परास्त होता और मारा जाता है परन्तु सदैव नए सिरेसे उत्पन्न हो जाता है। और फिर संग्राम करने लगता है जिसमें वह पुनः मारा जाता है।"*

इन्द्र एक बलवान देवता है। और उत्पन्न होते ही पूछता है 'कि माता! कहां है वे प्रचंड योद्धा जिनके वक्षस्थल (छाती) को यह वज्र भेदेगा'। अन्तमें इन्द्र और असुरोंमें संग्राम होता है। और इन्द्रकी विजय होती है।

इन वैदिक देवताओंमेंसे तीसरा बड़ा देवता अग्नि है। वह देवताओंका पुरोहित है जिसके बुलानेसे वह लोग आते है। वह देवताओंका मुँह भी है अर्थात् अग्निको जो बलिदान चढाया

---

* यहा पर डा० म्यूर साहबकी कवितासे उद्धृत किया गया है।

जाता है वह देवताओका भोजन है। और इससे इनकी शक्ति बढ़ती है। चित्रोंमें अग्निकी सूरत तीन पाँव और सात हाथों वाली बनाई जाती है। पुरोहितके रूपमें अग्निको ऋषियोंमे सब से श्रेष्ठ गिना गया है जो पूजनके समस्त कार्योंसे सर्वथा अभिज्ञ है। वह बुद्धिमान अधिष्ठाता, कामयाब पुरोहित और सर्व पूजन संबंधी रीतियोका रक्षक है। इसकी सहायतासे लोग देवताओं-की ठीक ठीक नियमसे पूजा कर पाते हैं जो देवताओ द्वारा गृहीत होती हैं। (देखो, विल-किन्ज हिन्दू मैथालोजी)

जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं ये तीनों देवता बहुत बड़े देवता वैदिक-धर्ममें हैं। इनमेंसे कोई अपने किसी साथीके कारण सीमान्तरित नहीं है। और न कोई किसीसे बड़ा है। बल्कि सच तो यों है कि जो पद और विशेषण इनमेंसे एकके लिए व्यवहृत किये जाते हैं, वह ही अन्य दोके लिए भी विना छोटाई बढ़ाईके विचारके काममें लाए जाते हैं।

हिन्दू देवताओकी पूजाका फल डा० म्यूर साहबकी इस कवितासे जो उन्होने यमराजके संबंधमें लिखी है और जिसका खुलासा हम यहां पर देते हैं पूर्णरूपेण प्रकट होताहै--यह कविता यमराजके भक्तको इनकी भक्तिसे जो फल मिलता है उसके प्रकट करती है:—

" अपनी कमताइयोंको पीछे छोड़,
अपने पुराने स्वरूपको धारण कर,
प्रत्येक इन्द्रिय जो तेरे पहिले थी-
समस्त सांसारिक (पौद्गलिक) मलसे पवित्र करके ।"
" और अव आत्मिक प्रकाशसे चमकते हुए,
और जीवनसे जो विशेष तेज और उत्तम और धन्य है-
और विशेष योग्यताके साथ
जिससे आनन्दका परिमाण वढता रहे । "
" उन उत्तम स्थानो पर स्वच्छ दिनकी रोशनीमें
जहां यमराज पूर्ण आनन्द प्रदान करते हैं ।
और हर इच्छाकी पूर्ति करते हैं ।
तेरी खुशीका दौरा कभी कम न होगा ।"—डा० म्यूर ।

जरदस्त

जरदस्तका मत ईरानके लोगोंका प्राचीन धर्म है । और अव उस
के माननेवाले भारतवर्षके पार्सी हैं । पारसियोंकी पूजा एक खुदा
या देवताकी है जिसको वे अहूरामज़दा कहते हैं । अहूरामज़दा
का जोडीदार अङ्गिरा मैन्यू है जिसको अहिरमन भी कहते है ।
इनमेंसे अहूरामजदा पवित्र आत्मा है । और दूसरा नापाक दैत्य
है । शब्द अहूरामजदाका अर्थ सर्व वुद्धिमान मालिक है (अहूरा=

मालिक, मज़्दा= सर्व बुद्धिमान)। अहूरामज़्दाके अतिरिक्त पार्सी लोग अन्य देवताओंकी भी पूजा करते थे जैसे सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि। पारसियोंका विश्वास है कि कयामत (मृतोत्थान) के दिन मुर्दे जीवित हो जायंगे और अहिरमनकी सृष्टिके नष्ट होनेपर जगतकी पुनः सृष्टि होगी। जीवको पार्सी धर्मानुयायी अविनाशी और अपने कार्य्योंका जिम्मेवार मानते हैं। कयामत होनेपर प्रत्येक जीवको नूतन शरीर मिलेगा और वह इसके पश्चात अनन्त सुखका भोग करेगा। पार्सी लोग अग्निकी विशेष मान्यता करते है। जो कुछ २ पूजनके ही रूपमे हैं। इसी कारण से लोग पारसियोको अग्निके पूजनेवाले (आतिशपरस्त) भी कहते है। उत्तम विचार, उत्तम शब्द, और उत्तम कार्य्य करना पारसियोका आचारसंबंधी परिमाण है। उनकी प्रार्थना जिसको प्रत्येक पार्सी कंठ याद करता है, निम्न प्रकार है—

"साधुपन सबसे उत्तम धर्म और सुख है। सुख उसको है जो साधु है नितान्त उत्तम, साधूपनके लिए।" (इ० र० रो० ९ जिल्द प० ६४८) पारसियोंके पवित्रता संबंधी नियमोमे गोमूत्रसे स्नान करना भी सम्मिलित है। सर्वोत्कृष्ट प्रार्थना पारसियोंकी अहूनावैर्या है जो मंत्ररूपमें बुराई और अपवित्रता के दूर करनेके हेतु व्यवहृत होती है। इसका भाव अहूरामज़्दा

की बादशाहत और पुरोहितकी सहृदयता पर है। और इसको लोग रस्मोंके समय पर ही नहीं बल्कि दैनिक कार्य्यके अन्तर्गत भी पढ़ते रहते हैं। पारसियोंके धर्मशास्त्रोंसे जो बहुत ही जीर्णावस्थामें अब मिलते हैं एक अन्य देवता मिथरा नामकका भी पता चलता है। जिसकी पूजा होती थी। परन्तु हम मिथराई मतका वर्णन किसी अन्य व्याख्यानमें करेंगे। तो भी इतना कहना उपयुक्त है कि पारसियोंके शास्त्रोंमें आवागमनका सिद्धान्त किन्हीं २ स्थानो पर बहुत साफ तौर पर माना गया है। जैसे कि मिहाबाद नामक शास्त्रमें (देखो फाउनटेन हेड ओफ रिलीजन प० १५६—१५८) प्रकाशवान, आनंदसे भरपूर, और मंगलमय स्थान पवित्र आत्माओंका (स० बु० ई० जि० २३ प० ३४) वह स्थान है कि जहां पर रोग व दुःख व मृत्युका अभाव है। यह प्रत्यक्षरूपमें जैनियोंकी सिद्धशिलासे तुलना रखता है। जहां पहुँचने पर दुःख और रोग विलग हो जाते हैं और जहां जीव अनन्त सुख, अनंत जीवन, और अनन्त ज्ञानका उपभोग करता है।

यहूदी।

यहूदी धर्म ऐसे लोगोंका मत है जो जेहोवा अथवा जाह्वेह (Jehovah or Jahweh) को अपना ईश्वर मानते हैं। जेहोवा

संसार और सर्व पदार्थोंका बनानेवाला है। इसने सर्व प्रथम मनुष्यके युगल दम्पतिकी सृष्टि की। और उन्हें अदनके बागमें जो इसने लगाया, ठहराया। इस बागमें अन्य वृक्षोंके होते हुए दो मुख्य प्रकारके वृक्ष थे जिसमेंसे एक नेकी और बदीके ज्ञान का वृक्ष और दूसरा जीवनका वृक्ष था। यहां पर मनुष्य (आदम) ने खुदाकी आज्ञाकी अवज्ञा की और साँप (शैतान) के बहकाने पर पहिले प्रकारके वृक्षका फल खाया। इस पर वह अपनी साथी हव्वाके साथ जो इस पापमें सम्मिलित थी और पश्चात उसकी स्त्री हुई, बाग अदनसे निकाल दिया गया। इस अवज्ञाके फलस्वरूप मृत्युने भी आदमको आन घेरा। आदमके प्रारम्भमें दो पुत्र हबिल और कायन हुए। जिनमेंसे कायनने अपने भाईको जानसे मार डाला। इस कारण खुदाने कायनको शाप दिया। और वह पृथ्वी पर कार्यहीन हो रमता फिरने लगा। इसके पश्चात् आदमके एक और पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम उसने सैत रक्खा। सैतके एक पुत्र एनोस नामक हुआ। इसके समयसे लोग जेहोवाका नाम लेने लगे। और कुछ सज्जन इसका अर्थ यूँ भी समझते हैं कि इस समयसे लोग अपनेको जेहोवाके नामसे कहने लगे (देखो अंग्रेजीकी अंजीलके हाशिएके नोट, किताब पैदायश बाब चहारम आयत २६)।

असहमत-

आदमके अवज्ञा करनेके पश्चातसे जाहवेह बराबर बनी इसरायलको आज्ञा पालन करनेकी चेतावनी देता रहा है और बहुतसे पैगम्बर भी इसरायलोंमें हुए हैं। जाहवेहकी पूजा जिस का कि एक अर्थमयनाम (I am) मैं हूं, है, विशेष कर प्रार्थना भजन और बलिदानकी है। जेहोवा अपनेको उद्विग्न खुदा बताते है जो मनुष्योके पापोंको, जो इनसे द्वेष करते है, तीसरी और चौथी पीढी तक क्षमा नहीं करते हैं। भविष्य जीवनके विषयमें कब्बालहकी गुप्त शिक्षा देनेवाले तो आवागमनको मानते हैं (ई० र० ए० जि० ७ प० ६२६)। परन्तु शब्दार्थी फिलासफर लोग इसे नहीं मानते है। यहूदी लोग एक तरह पर कयामतके मानने वाले है। और मसीहके आगमनकी वाट जोहते है जो पुरानी खराबियोको हटाकर संसारको नया बना देगा। इनके आचार संबधी विषय, निम्नकी दस ईश्वरीय आज्ञाओसे,-जो कहा जाता है खुदाने हजरत मूसाको दी थीं, साफ प्रकट हैः-

१. मेरी सत्तामें तेरे लिए दूसरा खुदा न होगा।

२. तू अपने लिए कोई मूरत अथवा किसी वस्तुकी सूरत..., मत बना।

३. तू खुदावन्दा अपने खुदाका नाम बेफायदा मत ले।

४. छै दिन तक तू महिनत करके अपने सारे काम काज कर,

परंतु सातवें दिन जो खुदावंद तेरे खुदाका सबत है कुछ काम मत कर।

५ तू अपने माता पिताका मान कर।

६ तू खून मत कर।

७ तू व्यभिचार मत कर।

८ तू चोरी मत कर।

९ तू अपने पड़ोसी पर झूठी गवाही मत दे।

१० तू अपने पड़ोसीके घरका लालच मतकर। तू अपने पड़ोसीकी स्त्री और उसके दास और दासी और उसके बैल और उसके गधे और अन्य वस्तुका, जो तेरे पडोसीकी है, लालच मत कर।

वेदान्त।

वेदांत हिन्दू दर्शनोंमें विख्यात दर्शन है। और जिस मतको आजकल यूरोपके लोग Idealism (भ्रान्तवाद) कहते हैं उसके सदृश है। यह संसार जो दृष्टिगोचर होता है, वह सर्व पदार्थ जो ज्ञानेन्द्रियसे जाने जाते हैं और वह सृष्टि जिसका स्रष्टा मन है, सबके सब ख्याल और धोखेकी टट्टी हैं। इन्द्रिय धोखेबाज हैं। क्या हम रस्सीको अकसर सांप नहीं समझ लेते है। जब यह संभव है तब कौन बुद्धिमान मनुष्य इनके

ज्ञान (इलहाम) को सच्चा मान सक्ता है। यह एक बहुत बडा इन्द्रजाल है जो हमारे सामने फैला हुआ है। एक अपरिमित वारहमासी स्वप्नका ड्रामा (नाटक) भ्रान्तिकी रंगस्थली पर-दिखाया जा रहा है। और अपूर्वता यह है कि दर्शक ही स्वयं एक्टर है, जो अपनेको भूले हुए है। इसका कारण क्या है? यह कब कैसे, क्यो और कहां प्रारम्भ हुआ? कब, कैसे क्यो और कहां इसका अन्त होगा? कब, कैसे, क्यों और कहां उसके दर्शक एक्टर बन गए? परंतु ये प्रश्न ही बेकार हैं। क्या वह मनुष्य जो स्वप्नावस्थामें है ऐसे प्रश्नोका कोई उत्तर दे सक्ता है? नहीं। तुमको भी उससमय तक मौन धारण करना योग्य है जबतक कि तुम इस मायाजालमेंसे न निकल जाओ। यह विचार भी कि तुम इस जालसे बाहिर निकल जाओगे भ्रमात्मक विचार है। तुम कब किसी जालमें थे जो इसमेंसे निकल सकनेका प्रश्न उठाओ। यह सब अनिर्वचनीय माया है। इस विशाल मायावाद के अन्तर्गत केवल एक सत्तात्मक वस्तु है जो परिवर्तनरहित सर्वव्यापी एवं स्वस्वभावसे पूर्ण है। इस सर्वव्यापक पदार्थके गुण सत् (सत्ता) चित् (चेतना) एवं आनन्द हैं। जिनके कारण इसका नाम सच्चिदानन्द (सत्-चित्-आनन्द) पड गया है। इसको ब्रह्म भी कहते हैं। यही एक चेतन पदार्थ है। उसके अति-

रिक्त अन्य कोई पदार्थ सत्तात्मक नहीं है। जीव स्वप्नके पुतलो के सदृश है। इनकी कोई सत्ता नहीं। निर्वाण यहां अर्थरहित है। अपनेको मुक्त जान लो और तुम मुक्त ही हो। इस उच्च सत्यको जानना आवश्यक है कारण कि इस मायावी संसारके मायावी भ्रमोसे छुटकारा मिले। आत्मज्ञान, आत्माको जाननेके लिए, जो केवल एक ही सत्ता और चेतन है, आवश्यक है। समाधिमें आत्माका भान होता है। और समाधिका अर्थ, मनको विचारों और शारीरिक क्रियायोसे रोककर आत्मामें लीन कर देना है। समाधि योगशास्त्रके नियमोपर चलनेसे प्राप्त होती है।

यह हिन्दुओके अद्वैतके मायावादका सिद्धान्तवर्णन है। इसके अतिरिक्त दो प्रकारके अन्य सिद्धान्त वेदान्तके नामसे विख्यात हैं। यह अद्वैतवादसे उस सीमा तक विरोध रखते हैं जहांतक कि वह संसार और विभिन्न जीवोंकी सत्ताको, जिनको वह बहुतसे बन्धनोंके साथ मानता है, स्वीकार करते हैं। यद्यपि यह कार्य उनके विश्वासक्रमके विपरीत विदित होता है। परन्तु यह तीनो सम्प्रदाय आवागमनके सिद्धांतको स्वीकार करते हैं, जिसका अन्त आत्माके ज्ञान होने पर हो जाता है।

वेदान्त, वास्तवमें भारतीय सुतरां हिन्दुदर्शनकी एक शाखा है परन्तु कमसे कम एक व्याख्या ऐसी अवश्य विद्यमान है जहां

इसने गैरहिन्दु (अहिन्दू) दर्शन पर भी भारतके बाहर अपना असर डाला है क्योंकि मुसलमानोंका शूफीमत यथार्थमें वेदान्त-की ही नकल है। यद्यपि इसमें वेदान्तसे कुछ विपरीतता है परन्तु हम इसपर समयाभावके कारण विचार नहीं कर सके हैं।

कपिलका सांख्यदर्शन।

यह दो पदार्थको अनादिनिधन मानता है। एक पुरुष और दूसरी प्रकृति। इनमेंसे पुरुष अथवा जीव तो केवल दर्शक है और अभिनयसे नितान्त विलग है, प्रकृति अर्थात् नेचर (Nature) मे सत्त्व रजस और तमस गुण हैं। सर्व परि-वर्तनशील चक्र, समस्त अनित्य पदार्थ, समस्त विचारावतरण एवं वे समस्त इन्द्रियां, जिनपर मानसिक विचारावतरणका सर्व दारोमदार है, सब प्रकृतिसे संबंधित हैं। और उसीके विविध-रूप (विकार) है। पदार्थ क्रमवार एक दूसरेके पश्चात् प्रकट होते या खुलते हैं और पश्चात् लिपट कर अदृश्य हो जाते हैं। सञ्चर (खुलने) का क्रम प्रतिसञ्चर (वन्दहोने) के क्रमसे नितान्त विपरीत है। अर्थात् जिस पदार्थका सबसे अन्तमें सञ्चर होता है वह सबसे पहिले लुप्त हो जाता है। परिणाम [Evolution] का क्रम इस प्रकार है—
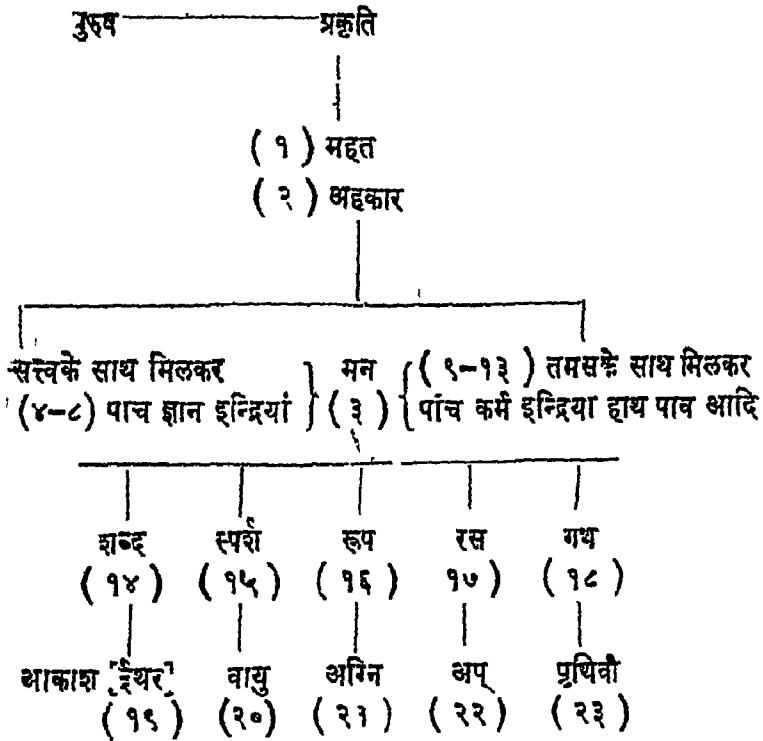
इन २३ प्रकारकी प्रकृतिके विकाशोमे पुरुष और प्रकृतिके मिलानेसे इनकी तादाद २५ हो जाती है। यह २५ तत्त्व सांख्यदर्शनने माने हैं। इनका ज्ञान संसारसे मुक्त होनेकेलिए आवश्यक है। कपिल मुनिके सिद्धान्तमें संसारकी सृष्टिका स्थान हो ही नहीं सक्ता है यद्यपि कुछ पिछले लेखकोंने खींचतान करके इस को ईश्वरवाद प्रकट करनेके प्रयत्न आवश्य किए है। अन्य दर्शनोके सदृश योगसमाधि सांख्यका भी एक अंग है।

असहमत-

न्याय दर्शन ।

न्याय दर्शनमे जिसके अर्थ दार्शनिक तर्क हैं निम्न प्रकारके १६ तत्त्वोको माना है ।

(१) प्रमाण (यथार्थज्ञान अथवा यथार्थ ज्ञानके द्वारा)
(२) प्रमेय (प्रमाणका विषय)
(३) संशय
(४) प्रयोजन
(५) दृष्टांत
(६) सिद्धान्त
(७) अवयव
(८) तर्क
(९) निर्णय
(१०) वाद
(११) जल्प
(१२) वितण्डा
(१३) हेत्वाभास
(१४) छल
(१५) जाति
(१६) निग्रह स्थान

जीव, शरीर, इन्द्रियां, इन्द्रियविषय, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (आवागमन) फल, दुःख, और अपवर्ग (निर्वाण) प्रमेय हैं। दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्या ज्ञान नष्ट करने योग्य हैं। इनके, एकके पश्चात् एक नष्ट किए जाने पर, इसप्रकार कि सबसे अन्तमें जो लिखी गई है वह सबसे पहिले नष्टकी जाय, मुक्ति प्राप्त होती है। गौतमप्रणीत सूत्रोमे किसी सृष्टि कर्त्ताका वर्णन नहीं है। अवश्य एक स्थान पर बौद्धोके शास्त्रार्थ के उत्तरमें अनायास इसका उल्लेख है।

वैशेषिक दर्शन।

वैशेषिक दर्शनका यह मत है कि छै पदार्थोंके जाननेसे दुःखका अन्त होता है। जो सर्वोत्कृष्ट फलके सदृश हैं। वे छै पदार्थ यह हैं:-

(१) द्रव्य (२) गुण (३) कर्म (४) सामान्य (५) विशेष (६) समवाय। द्रव्य गिनतीमें नौ हैं:-पृथ्वी, अप् (जल) तेज (अग्नि) वायु, आकाश (ईथर) काल, दिक (आकाश अर्थात् स्थान) आत्मा और मन। गुण इस प्रकार हैं:-रूप, रस, गंध, स्पर्शन, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्वापरत्वे (प्रथम, अन्त) बुद्धि, सुख (आनन्द) दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न। उत्क्षेपण (ऊपरको फेकना) अवक्षेपण (नीचेको

फेंकना) आकुञ्चन (सकुड़ना) प्रसारण (फैलना) और गमन (चलना) यह क्रियायें (हरकतें) हैं। आवागमनसे उस समय छुटकारा मिलता है जब मनमें क्रिया उत्पन्न होनेसे बन्द हो जावे। नैयायिकोंके सदृश वैशेषिकवाले भी प्रारम्भमें किसी सृष्टिकर्ताकी सत्ता नहीं मानते हैं। यद्यपि उन्होंने वेदोंको श्रुतिके तौर पर स्वीकार किया है।

योग दर्शन।

हिन्दू दर्शनोमें योग दर्शन तीन पदार्थ मानता है:-

(१) ईश्वर जो ध्यानका आदर्श है।

(२) जीव

(३) पुद्गल (प्रकृति)

आत्माका आवागमनसे छुटकारा पाना मुख्योद्देश्य है। वह समाधि लगनेसे जो दुःखोंका नाश होजाता है, उससे प्राप्त होता है। समाधि योगके अंगोंका अंतिम अंग है। वह अंग (१) यम [२] नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और (८) समाधि है।

यमका संबध निम्न पांच व्रतोसे है:—

(१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय-अचौर्य्य (४) ब्रह्मचर्य्य और (५) अपरिग्रह।

नियमसे अर्थ इनसे है कि—

(१) शौच (२) संतोष (३) तप (४) स्वाध्याय (५) भक्ति। आसन ध्यानको लगानेकेलिये शरीरको एक प्रकार निश्चल (स्थिर) करनेको कहते हैं। और प्राणायाम श्वासोच्छ्वासको अधिकारमें लानेका नाम है। परन्तु प्रत्याहारका अर्थ अभ्यास द्वारा इन्द्रियोंके रुक जानेसे है। शेष अंगोमेंसे, धारणा, मनका एकाग्र करना, और ध्यान आत्माके विचारमें स्थिर होना है। समाधि *इन सबका अन्तिम फल है। जिससे मुग्धावस्था प्राप्त होती है।*

बौद्धधर्म।

बौद्धधर्मका प्रारम्भ भारतवर्षसे हुआ है। यद्यपि अब यह भारतवर्षमे लुप्तप्रायः है। इसके प्रतिपादक एक मनुष्य थे जिनको हुए अनुमानतः ढाई हज़ारवर्ष हुए और जो अन्तमे बुद्धके नाम से विख्यात हुए। बुद्धकी शिक्षामे किसी सृष्टिकर्त्ताको नहीं माना गया है। और आत्मा सहित सर्व पदार्थ अनित्य माने हैं। निर्वाण, जीवन इच्छाका मिट जाना है। जो आवागमनका कारण है। आवागमनके विषयमें बौद्धमतावलम्बियोंकी एक अनोखी और अद्भुत सम्मति है। आत्माका अस्तित्व एक योनिसे दूसरी योनि तक बौद्धने नहीं माना है। बल्कि यह माना है कि प्रत्येक जीवके चारित्रसंबंधी संस्कारोंका संग्रह उसके मरने पर उससे

अलग हो जाता है। और नये स्थान पर पहुंच कर नये स्कधों के साथ मिलकर प्रकट होने लगता है। बौद्धोंके अनुसार प्रत्येक जीव केवल स्कंधोका एक बंडल है जो मरते समय नष्ट हो जाता है। वह ही चारित्रसंबंधी संग्रह, जिसका उल्लेख हम अभी कर चुके हैं, नष्ट होनेसे बचता है। अस्तु। निर्वाणप्राप्तिके लिए बौद्धमतानुसार ये प्रयत्न करने चाहिए कि जिससे यह संग्रह न रहने पावे। भारतीय धर्मोंमें संसारी जीवनके दुःखोके ऊपर विशेष जोर दिया है और बौद्धमतने भी। जीवित होना ही दुःख है परन्तु दुःख जीवनके कारण नहीं है। बल्कि उसकी उत्पत्ति इच्छाके कारण है। इच्छाका नष्ट करना बौद्धमतके सिद्धान्तोंसे संभव है। इसी कारण बौद्धमतके सिद्धान्तमें ये चार बडे खंबे माने गए हैं:—

(१) दुःखका अस्तित्व

(२) दुःखका कारण

(३) दुःखका हटाना

(४) दुःखके हटानेके नियम

इन बड़े सिद्धान्तोंमें ही सत्यधर्मका भाव है जिसको बुद्धके पहिले २४ बुद्धोंने लोगोंको बताया था। आठ अंगोवाला मार्ग इसप्रकार है—

(१) सत्य विचार (सत्य अभिलाषायें)

(२) सत्य आकाङ्क्षायें

(३) सत्य वाणी

(४) सत्य चारित्र

(५) सत्य जीवनक्रम

(६) सत्य प्रयत्न

(७) सत्य सावधानता

(८) सत्य आनन्द अथवा शान्ति।

इस मार्गपर चलनेसे संसारचक्र (आवागमन) नष्ट हो जाता है। इस संसारचक्रका अस्तित्व निम्न १२ प्रकारके निदानोंके ऊपर अवलम्बित है जिनमेंसे प्रत्येक अगला अपने पिछले निदानके कारणभूत है:—

(१) अज्ञानता

(२) कर्म (संस्कार)

(३) चेतना

(४) व्यक्तित्व (नाम व रूप)

(५) इंद्रियों व मनकी शक्ति

(६) संबंध (बाह्य पदार्थोंसे मानसिक संबंध)

(७) इन्द्रियज्ञान

असहमत-

(८) इच्छा

(९) जीवनमोह

[१०) अस्तित्व पाना

(११) जन्म

(१२) वृद्धता, मृत्यु, रंज़, रुदन, दुःख, आलस्य, एवं निराशा।

चेतनासे व्यक्तित्वका आविर्भाव किस प्रकार होता है? यह इस प्रकार समझना चाहिए कि स्कंधोंके मिलनेसे व्यक्तित्व बनता है और संग्रहसे चेतना उत्पन्न होती है। प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक पदार्थ एवं प्रत्येक देवता संग्रह-संयोग (Aggregatoin) है।

(अरली बुद्धिज्म पृ० ५७)

यह प्रश्न कि शरीर और आत्मा एक ही पदार्थ हैं अथवा विभिन्न हैं ऐसा है कि जिनको बौद्धमतने बिदून हल किए छोड़ दिया था। [इ० रि० ऐ० जि० ४ पृ० २३४]।

ईसाई मत।

ईसाई मत जो अपनेको यहूदियोंके धर्मका परिपूर्णकारक समझता है निम्नलिखित सात व्याख्याओंसे संबंधित है:-

(१) प्रारम्भिक अवस्था आनन्द बाग अदनका।

(२) नेकी और बदीके ज्ञानके वृक्षका फल खानेका लालच।

(३) लालचका बुरा फल ।

(४) ज्ञानकी कुञ्जीसे मुक्तिके मार्गका खुलना ।

(५) क्रोस पर चढ़ना

[६] मृतकोमेंसे जीवित होना ।

(७) और आकाश पर चले जाना ।

ईसाइयोका आत्मा संबंधी कोई दार्शनिक विश्वास नहीं है । और प्रत्यक्षमे आवागमनका विरोध करते हैं । निर्वाण भी उनके मतानुसार चारित्रसे प्राप्त नहीं हो सका बल्कि ईसाकी कृपासे । नसिया (nicea) के अकीदेके बमूजिब ईसाई लोग निम्न लिखित विश्वासके नियमोंके माननेवाले हैं:-

"हम विश्वास करते हैं:—

१—(१) एक खुदा पर .. ..

२—(२) और एक खुदावन्द ईसूमसीह पर जो खुदाका बेटा है । जो पितासे प्राप्त है । केवल प्राप्त किया गया है । अर्थात् पिताके जौहर (द्रव्य) मेंसे-खुदाका खुदा-नूरका नूर-सच्चे खुदाका सच्चा खुदा प्राप्त हुआ, बनाया हुआ नहीं-पिताके साथ एक ही जौहरका. ....

[३] जो हम मनुष्योंके लिए और हमारी मुक्तिके लिए नीचे उतरा और (जिसने) शरीर धारण किया और मनुष्योंमें मनुष्योंके सदृश रहा—

[४] क्रोस पर चढ़ा (शब्दार्थ-जिसने दुःख उठाए)
[५] और तीसरे दिवस जीवित हुआ
[६] आकाश पर चढ़ा
[७] और चपल व मृतकोकी जांच करनेको आने वाला है
३-[८] और पवित्र पाकरूह (पवित्र आत्मा The Holy Ghost) पर ।"

इस प्रकारके बहुतसे नियम प्राचीन और नष्टप्राय मतोंमें मिलते हैं । परन्तु हम इनका वर्णन आगे किसी अन्य व्याख्यानमें करेंगे ।

इसलाम ।

इसलाम जो संसार भरके समस्त जियादा प्रचलित धर्मोंमें सबसे नववयस्क है, मुल्क अरबमें उत्पन्न हुआ था । इसको एक मनुष्य मुहम्मद नामीने आस पासके देशोंके धार्मिक खण्ड-हरों पर स्थापित किया था । इसमें विश्वास तीन बातोंसे संबंध रखता है । एक परमेश्वरसे जिसका नाम अल्लाह है । दूसरे कुरानके ईश्वरीय शास्त्र होनेसे और तीसरे मुहम्मदकी पैगाम्ब-रीसे । इसलामके सिद्धान्तोंमें कयामतका सिद्धान्त भी सम्मि-लित है एवं स्वर्ग और नरकका भी, कि जहां पर जीव सांसारिक कार्योंके फल पुण्य और पापका दुःख व सुख भुगतते हैं । मुह

लमान लोग आवागमनके सिद्धान्तको नहीं मानते हैं। यद्यपि इनके कुछ विख्यात और विद्वान फिलासफरोने जैसे अहमदबिन यूनस, अबूमुसलिम खुरासानी (दी फिलोसफी ओफ इसलाम पृ० २७) ने इस सिद्धांतको प्रत्यक्षरूपमें स्वीकार किया है। पुण्य कृत्योंकी सूचीमें इसलाम साधारण रीत्या दुआ, रोजा, हज और पवित्रताको मानते हैं।

ब्राह्मणोंका धर्म्म।

ब्राह्मणोका धर्म्म, जिससे मेरा भाव हिन्दुओंके वेदोंके पश्चात् के धर्मसे है, दो प्रकारका है। एक तो वह धर्म जिसमें पुराणोंमें वर्णित देवी देवताओंकी पूजा की जाती है। दूसरा यज्ञविषयक नियम। पुराणोंके देवताओकी एक बड़ी संख्या है परन्तु इनमेंसे ब्रह्मा, शिव, और कृष्ण विशेष विख्यात है। हिन्दुओका विश्वास है कि यह देवता अपने भक्तोकी प्रत्येक इच्छाको पूर्ण करते हैं। यज्ञ-बलिदान भी देवताओं आदिको प्रसन्न करके अपना काम निकालनेके लिए किए जाते हैं। इसमें संशय नहीं है कि प्राचीन [पिछले] समयमें लोग मनुष्योंको भी होमित किया करते थे। और यह राक्षसी रीति नदियो आदि पर छोटे २ बच्चोंके बलिदान करने स्वरूप, कुछ काल हुआ जब तक प्रचलित थी। साधारणतया मेंढ़े, बैल, और बकरीके बलिदानका

विशेष प्रचार था। और विदित होता है कि इन तीन पशुओंकी बलिदान क्रिया अनुमानतः प्रत्येक यज्ञ विधान माननेवाले धर्ममें प्रचलित थी। भारतवर्षमें गऊ और घोड़ेकी बलिदान क्रिया गोमेध और अश्वमेधके नामसे हुआ करती थी। परन्तु अब यह दोनो ही व्यवहृत नहीं की जाती है। और प्रथमके कारण तो अब हिन्दू और मुसलमानोंमें बहुत कुछ फिसाद और झगड़े भी हुआ करते हैं।

जोगियोंका मत।

जोगियोंका मत (Mysticism) अथवा शक्ति धर्म अनुमानतः एक समान हैं। इनमें यह प्रयत्न किए जाते हैं कि योनकी कुछ आत्मिक शक्तियोंको, जिनका अर्थ और उद्देश्य किसीका प्रत्यक्ष रूपमें समझा हुआ नहीं है, गुप्तशिक्षाके द्वारा प्राप्त किया जाता है।

रोजीक्रूशीयनिजम और फ्रीमेसनरी।

रोजीक्रूशीयनिजम (Rosicrucianism) और फ्रीमेसनरी (Free masonry) इसी प्रकारके अन्य दो मत हैं जो जीवनकी गुप्त आत्मिक शक्तियोंसे संबंध रखनेकी हामी भरते हैं। बहुत प्रकारकी गुप्त समस्यायें (mysteries) प्राचीन समयमें विभिन्न देवताओंकी उपासना करनेके क्रममें व्यवस्थित थीं। इनकी शिक्षा

केवल मुख्य २ चेलोंके, जिनको वह गुप्त रूपमें बताई जाती थी, अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं विदित थी। पतञ्जलिके शास्त्रमें बहुतसे चक्र शरीरमें एसे बताए हैं कि जहां ध्यान लगानेसे कुछ शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं । इन सब मतोका यथार्थ भेद यह है कि मुख्य २ क्रियायोंसे विशेष कर शरीरके कुछ चक्रो पर ध्यान लगानेसे आत्मिक शक्तियां प्राप्त होती हैं । जिनका प्राप्त करना जीवनका उच्चतम उद्देश्य है। चाहे वह केवल उद्देश्य भी न हो।

राधास्वामी।

वर्त्तमान समयमें राधास्वामी मतने जो गत शताब्दिके अन्तिम भागमें स्थापित किया गया था कुछ लोगोकी दृष्टि अपने ओर आकर्षित की है क्योंकि इसकी शिक्षाका एक भाग ऐसा है जो इसके माननेवाले, औरो पर सम्भवतः किसी प्रकार शपथपाशके कारण अथवा अन्य किसी कारणसे प्रकट नहीं करते हैं। उसके संस्थापककी उपासना परमात्माके सदृश होती है । और इनके अन्य गुरुओंकी भी मान्यता इस पराकाष्ठाको लिए हुए है कि उनके अनुयायी उनके वाज वाज मुंहसे निकले हुवे पदार्थों (माद्दह) को भक्तिभावसे चख लेते हैं। राधास्वामियोंकी शिक्षा हिन्दुओंके विष्णु सम्प्रदायके सदृश है। परन्तु वह हिन्दू अवतारोंको नहीं मानते हैं। एक लम्बी

सूफी मुसलमान पीरो और अर्ध पीरों जैसे शम्सतबरेज वगैरह की, जिनको वे अपने धर्मके पैगम्बर बतलाते हैं, राधास्वामियोंके मतकी मुख्य बात है।

अब साधारणतया सर्व मुख्य धर्मोंका वर्णन हो चुका है। शेषमेंसे जापानी धर्म शिन्तो (Shintoism) पत्थरकी पूजा और जादू टोनेकी खिचड़ी है। इसके होते हुए भी जापानियोंने आत्माको नित्य माना है और बहुतसे बहादुरों और विख्यात पुरखाओंके विषयमें यह विचार है कि वह सीधे उच्च आकाश पर जा विराजे। (इ० र० ऐ० जि० १ पृ० ४५७।)

बाब या बहाई मत।

बाब मत या बहाई मत, जिसकी शिक्षा मुसलमानोंके अन्तिम इमामसे, जिनके विषयमें कहा जाता है कि वह इस समयमें छुपे हुए प्रकट होनेके समयकी प्रतीक्षा कर रहे है, संबंध रखता है। यह धर्म इसलाम्‌की एक नवीन शाखा है और इसके संस्थापकने अपनेको छुपा हुआ इमाम बताया है

प्रकीर्णक मत।

भारतीय धर्मोंमें कबीरपन्थ, दादूपंथ, सिक्खोंका मत और आर्य्य समाज भी नवविकसित धर्म्म हैं जो अपने अपने संस्थापकोंके रिफारम् (सुधार) के विचारोंके फलरूप हैं। जैसे

सिक्खोंका मत पहिले हिन्दू और मुसलमानोके मिलाप करानेके लिए बनाया गया था यद्यपि अन्तमें मुसलमानोंका सिक्खोंसे इतना द्वेष बढ़ गया जितना कि हिन्दुओंसे भी न था। यह सब धर्म भक्ति पर अवलम्बित हैं। और आवागमनके समर्थक हैं। शेषमें भारतीय धर्मोंमें ब्रह्मसमाज पाश्चात्य ढंगमें ईश्वरोपासना का मत है। यह अन्तिम शताब्दिमें बंगालमें स्थापित हुआ था। और इसके एक शिष्य एवं उपदेशकने जिसका नाम शिवनारायण अग्निहोत्री है अन्ततः अपने आप एक स्वतंत्र धर्म स्थापित किया जिसका कि नाम उसने देवसमाज रक्खा। देवसमाजके उद्देश्योंमें एक यह भी है कि यदि आत्मा उन्नति प्राप्त कर उत्कृष्ट जीवनको, जो किसी एसे मनुष्यकी संगतिसे प्राप्त हो सक्ता है जो स्वयं उस अवस्थाको पहुंच चुका हो, प्राप्त न करले तो वह नष्ट हो जाती है। देवसमाजके संस्थापकके विषयमें कहा जाता है कि वह मनुष्य जीवनकी उच्चतम पराकाष्ठा तक पहुंच चुका है। इस कारणवश इसके शिष्य इसकी उपासना इसको सर्वोत्तम पूज्य और उपासनीय एवं उत्कृष्ट गुरु और अपूर्व परमात्मा समझ कर करते हैं।

थियोसोफी।

थियोसोफी (Theosophy) जो नूतन धर्मोंमें विशेष

उल्लेखनीय धर्म है, एक रूसी महिला एच० पी० वलावेट्स्की नामकके द्वारा प्रतिपादित किया गया था। एच० पी० वलावे-ट्स्कीके कुछ अद्भुत कार्य्य (करशमे) भी कहे जाते हैं जिनके विषयमें वह स्वयं तो कहती है कि वह विशेष गुप्त महात्माओंकी मदद्से हुए और कुछ खोजी महानुभावोका मत है कि वह केवल जालसाजी और शोवदेवाजीका फल है। (मोडर्न रिलीजस मुवमेंट्स इन इन्डिया)

इसके अद्भुत कार्य्योंके कारणसे थियोसोफीने गत शताब्दिके अन्त समय जव कि उसकी स्थापना की गई थी वहुत कुछ मनुष्योका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। प्रारम्भ में इन गुप्त महात्माओंकी, जो अपने गुप्त स्थानोंसे अद्भुत कर्म किया करते थे, वहुत चरचा रही। परन्तु अव थियोसोफी एक अन्य प्रकारके लोगोके हस्तान्तरगत होनेके कारण इसका कार्य केवल यह हो गया है कि एक फल वेचनेवालेकी तरह विविध उद्यानों और पुष्पवाटिकायोंमेंसे उत्तम २ पुष्प एकत्र करे और इनको एक गुप्त समस्याके कुछ कमजोर धागे पर पिरोए।

चीनके धर्म।

चीनियोंके धर्मकी ओर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि

सबसे प्राचीन धर्म उस देशका तावइज़म (Taoism) है जिसका विवेचन हम बादमें एक व्याख्यानमें करेंगे।

चीनियोंका एक अन्य धर्म कनफ्योशीयनइजम (Confucia-nism) नामसे है जिसका संस्थापक एक कनफ्योशस (Confucios) नामक था, जिसको हुए ढाई हजार वर्षसे कुछ विशेष समय व्यतीत हुआ है। परन्तु यह धर्म्म अनुमानतः सबका सब केवल एक आचारसंबंधी शिक्षाका चिट्ठा है जैसा कोई विद्वान पुरुष रच सक्ता है। और धर्मसे इस प्रकार असंबन्धित प्रतीत होता है कि हम इसका विवेचन इन व्याख्यानोमे नहीं करेंगे। इसमे सशय नहीं कि यह संभव हो कि कनफ्योशीयनइ-जमके सिद्धांत गुप्त हो, जैसे कि अन्य बहुतसे धर्म्मोंके हैं। परन्तु यदि ऐसा है तो यह विशेष उपयुक्त होगा कि आगामीके हमसे विशेष विद्वान् उसकी जांच करें। चीनके प्रचलित धर्मोंमसे तीसरा धर्म बौद्धमत है जिसका विवेचन इस व्याख्यानमें पहिले ही किया जा चुका है।

अमेरिकाके धर्म।

अब अमेरिकाके धर्म्मोंका विवेचन करना शेष रह गया है। परन्तु जहां तक मुझे इनका ज्ञान है वे सब धर्मसे नितान्त विप-रीत भासते हैं और केवल एक आधी बातोके अतिरिक्त जो उन

में कहीं कहीं मिलती हैं, अनुमानतः सब अधमतर और भयावह मनुष्य बलिदानसे, विदून किसी अच्छाईके भरे पड़े हैं। यदि इन धर्म्मोंकी कभी कोई गुप्त सिद्धांतावली थी तो वह बहुत काल व्यतीत हुआ कि नष्ट हो गई और उसके स्थान पर ये बुरीसे बुरी ग्लान्युत्पादक मनुष्य बलिदानकी क्रियायें स्थापित हो गईं जिनका कि कोई भी संबंध धर्म्मसे नहीं है। यह असंभव नहीं है कि यह राक्षसी धर्म्म भूतकालमें किसी ऐसी सूखी हुई गुप्त धार्मिक तत्त्वावलीकी गुठलीके इर्द गिर्द उत्पन्न हो गए हों जो किसी समयमें एशिया अथवा योरोपसे अमेरिका पहुंची हो। मैं उनका इन व्याख्यानोमें राक्षसी रीति रिवाज और भूतप्रेतकी पूजा समझ कर विवेचन नहीं करूंगा।

उपसंहार।

हमारा पर्यालोचन संसारके मुख्य २ धर्मोंके विषयमें इसप्रकार सम्पूर्ण हो जाता है। और मुझे केवल इतना ही खेद है कि वह ऐसा पूर्ण नहीं है जैसा मैं उसे करना चाहता था। यहां पर उन पुराने लुप्त धर्म्मोंका, जो बेबलोनिया, असिरिया, और मिश्र के देशोंमें आविर्भूत हुए थे और जिनसे हम बहुत कुछ सहायताकी आशा वर्तमान धर्म्मोंके सिद्धान्तोंके विषयमें रखते थे, वर्णन नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि हमारा ज्ञान इन

लुप्त धर्म्मोंके विषयमें इतना परिमित है और ऐसे भ्रमपूर्ण और अविश्वस्त स्रोतोंसे प्राप्त है कि यह विशेष उपयुक्त है कि उनकी भी विवेचनाका भार आगामीके विशेष विद्वान्के ऊपर छोडा जाय वजाय इसके कि प्रारंभसे ही भ्रमपूर्ण और भ्रमात्मक सूत्रों की नींव रक्खी जावे। तो भी मैं इन देशोके कुछ धर्म्मोंका वर्णन किसी आगामी व्याख्यानमें उस सीमातक करूंगा जिस तक मैं सेहतके साथ कर सकता हूं।

छोटे मोटे सम्प्रदायो और सैद्धान्तिकमतों जैसे न्यूप्लैटोनइजम (New-Platonism) फिसा गोरिसका मत आदिका विवेचन यहां पर जान कर नहीं किया गया है क्योंकि इनके सिद्धान्त अन्य धर्म्मोंकी छानवीनसे समझे जा सके है। और समयका भी अभाव है। मैंने 'चारवाक' मतके विषयमें भी यहां पर कुछ नहीं कहा है कारण कि मैं उसका विवेचन पुद्गलवाद (materialism) वर्णनमें आगे करूंगा।

भूमण्डलके समस्त मुख्य २ धर्म्मोंका विवेचन पूर्ण होने पर यह वात अवशेष रह जाती है कि वह वातें जिन पर ये सर्व धर्म्म सहमत हैं एवं वे भी जिन पर वह आपसमें विरुद्ध हैं, खोजी जायें। निम्नलिखित विषयों पर ये सर्व धर्म सहमत प्रतीत होते हैं:—

असहमत-

[१] भविष्य जीवन, और भविष्य हालत

[२] आत्माकी शरीरसे विभिन्न सत्ता, सिवाय बौद्ध धर्म्मके कि जहां पर संस्कारोंको [कर्मवर्गणाओंको] आवागमनका कारण माना गया है।

[३] भविष्यके जीवनकी उत्तमताकी संभावना

[४] आत्माको भले बुरे कार्य्योंके कारणसे अपनी भविष्य जीवनीको बनाने और बिगाड़नेमें स्वतंत्रता।

[५] एक प्रकारकी ईश्वरीय (Divine) जीवनकी सत्ता जिसका प्रकाश कुछ ऐसे मनुष्योंमें हुआ है कि जिन्होंने परमात्माका पद प्राप्त किया हो अथवा देवताओंमें या वह दानियतके मतानुसार एकही खुदामें।

इन धर्म्मोंमें विपरीतता भी निम्न बातोंमें प्रकट होती है:—

[१] परमात्माके स्वभाव, रूप और नाम एवं संख्या और कार्य।

[२] सृष्टिका स्वरूप और उसका आरम्भ।

[३] आत्माका स्वभाव एवं उन्नतिकी सीमा, मय आवागमन और कयामतके। और

[४] आत्माके अपने उद्देश्यको प्राप्त करानेके मार्ग, मय अहिंसा और मनुष्यों और पशुओंके बलिदानके।

उपर्युक्त वर्णित व्याख्यायोंमें अनुमानतः सब बातें एकता और विरोधकी आ जाती हैं। और यह ठीक ठीक तौरसे उसे हल करनेकेलिए, जो धर्मके प्रारम्भ और उसके विविध रूपान्तरोंमें विभक्त होनेसे सम्बन्ध रखती है, उचित है।

अब हम उस स्थान पर पहुंच गए हैं कि जहां आजके व्याख्यानका विषय खतम होता है अतः हम इसको बन्द करते हैं और द्वितीय व्याख्यानमें इस बातका वर्णन करेंगे कि मानसिक उत्कृष्टता क्या है और वह कैसे शीघ्र प्राप्त हो सकी है।

इति शम्।

दूसरा व्याख्यान।

तुलनाकी रीति।

पिछले व्याख्यानमें हम यह कह चुके हैं कि विविध धर्म्मों का मुकाबला ठीक २ बुद्धयनुकूल होना चाहिये। आज हमारा यह प्रयत्न होगा कि हम मुकाबला करनेकी पूरी २ तारीफ करें और वह साधन निर्धारित करें जिनसे वस्तुओंका ज्ञान ठीक २ हो सके। सबसे पहला कार्य्य यह है कि पक्षपात को अपने हृदयोंसे निकाल देवें, जो उन लोगोंमें भी, जो यह दुंद मचाते हैं कि हम हठधर्मी नहीं, ९९ प्रति सैकड़ा अवश्य पाया जाता है हम लोगोंकी तबियत कुछ ऐसी होती है कि हमारे आन्तरिक भाव इस प्रकारके वलिष्ठ हैं जो अपने पैतृिक (पैदायशी) नियमों की ओर झुके रहते हैं और इसका प्रभाव यह होता है कि हममेंसे बहुत सावधानीसे छान वीन करनेवाले भी अपने मन्तव्य के विरुद्ध सिद्धान्तोंको तत्काल ही लचरसे लचर युक्तियोंके आधारपर खंडन करनेकेलिये तैयार हो जाते हैं। जो व्यक्ति दूसरे के सिद्धान्तोंसे द्वेष नहीं करता वह भी उनके सिद्ध करने का भार तो तत्काल और प्रायः बुद्धिमत्तासे विरुद्ध उन्हींपर

रखदेता है। यह बात न्यायपर निर्भर है कि कोई सिद्धान्त उस समय तक निर्णीत नहीं हो सकता जब तक अनुसंधान करने वालेके अन्तःकरण पर इस प्रकारका द्वेष भाव रहता है। जो वास्तवमें जिज्ञासु है और अन्तःकरणसे सत्यताका खोजी है उसका अन्तःकरण ऐसा नहीं होना चाहिये। पैतृक धार्मिक विश्वास तो एक विशेष वंश और कुलमें जन्म लेनेपर निर्भर है परन्तु यह इसकी सत्यताका प्रमाण नहीं है। यदि मैं "क" धर्मके स्थानपर "ख" में उत्पन्न होता तो अवश्य मेरा धर्म "ख" होता यदि "ग" में उत्पन्न होता तो "ग" होता परन्तु मेरा "क" धर्मका स्वीकार और 'ख' 'ग' का अस्वीकार इस बातका प्रमाण नहीं है कि 'क' धर्म्म ही सच्चा धर्म्म है क्योंकि जो लोग "ख" व "ग" में उत्पन्न हुये है वे भी अपने धर्मोंको वैसा ही सत्य २ समझते हैं जैसा कि मैं "क" धर्मको मानता हूं। अतः किसीकी नेज सम्मति उसके सिद्धान्तोंका प्रमाण नहीं हो सकती और ग शास्त्रोंके वचन;-जैसा कि हमने पहले व्याख्यानमें दर्शाया है, सत्यताके प्रमाण हो सकते हैं क्योंकि कोई कारण नहीं है कि एक शास्त्रको दूसरे पर विशेषता दी जावे। इसका भाव यह नहीं है कि हम एकदम सब शास्त्रोंको झूठा मान लें परन्तु यही कि सबसे प्रथम हमको यह जानना उचित है कि उनमें ऐसा कौन

है जो सद्गुरुका वचन हो और माननीय हो। तब सत्यताका निश्चय किस प्रकार हो सकता है "ठीक २ बुद्धयनुसार अनुसंधान करनेसे" वैज्ञानिक रीतिसे—सामान्यतः ज्ञान प्राप्तिके ३, साधन हैं।

(१) अनुभव या प्रत्यक्ष (मशाहदा)

(२) विचार- न्याय और

(३) साक्षी—(शब्द)

इनमेंसे प्रथम अनुभव तो विज्ञानकी जड है। दूसरा अर्थात् न्याय फिलसफाकी जड़, तीसरा साक्षी;-जब कि वह निर्भ्रान्त और पूर्णदृष्टा अर्थात् सर्वज्ञका वचन हो, शास्त्र कहा जाता है। अनुभवका परिणाम विज्ञान, न्यायका फिलसफा और साक्षीका शास्त्र या पवित्र पुस्तक है।

विज्ञान नैसर्गिक ज्ञानका नाम है जिसकी जांच परीक्षा द्वारा होती है और जो तत्काल सच्चे परिणाम पैदा कर सकता है उसके दो भाग है एक—(Physics) दूसरा—(metaphysics) उनमेसे फिजिक्स को तो कुदरती वस्तुओंका ज्ञान कहना चाहिये परन्तु मेटाफिजिक्सका सम्बन्ध उनकी किसमवार छान बीन और उनके पारस्परिक सम्बन्धसे है तथा उसका यह भी कर्तव्य है कि वह तमाम ज्ञान या मानुषिक विचारोको नियमानुकूल

स्थान देवे। इसलिये यह सच्चा मेटाफिजिक्स वास्तविक और कुदरती वातोंसे सदैव मुनासिबत रखता है। इसका निर्बुद्धि विचारोंकी उन कपोलकल्पनाओंसे जो जमीन आसमानके कुलावे मिलानेका दावा करते हैं, कोई सम्बन्ध नहीं है। यह देखनेमें आता है कि जब विज्ञान और विचार किसी वातपर सहमत नहीं होते तो विरोधका कारण सामान्यतः यह होता है कि विचारने कुदरतकी घटनाओसे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया है। जो विचारवान् वास्तविक फिलासोफरकीसी ख्याति प्राप्त करना चाहता है उसको चाहिये कि विचार तथा घटनाओंके घोड़ोंको अपने मनके रथमें जोडे परन्तु पहलेके उस हार्दिक भावको जो उसको हरसमय अगम्य पहाड़ियोंके छोटे २ मार्गो द्वारा लपक कर शिखर पर पहुचनेकी प्रेरणा करता रहता है, दवाये रहे और दूसरेको यथावश्यक चाबुक लगाता रहे ताकि वह सड़कके किनारों पर ही घास चरनेमें न लगा रहे। सत्यताके निश्चयके वास्ते सामान्यतः यह कहना ठीक है कि जहां विज्ञान और मेटाफिजिक्सका इत्तिफाक होगा वहां जानना चाहिये कि असली हाल ज्ञात हो गया परन्तु धार्मिक संस्थामें ऐसे इत्तिफाकके ऊपर एक नई शर्त लगाई गई है और वह यह है कि शास्त्र भी इस वातसे;-जिसपर विज्ञान और मेटाफिजिक्सका इत्तिफाक हुआ है सहमत हो, क्योंकि शास्त्र सर्वज्ञका कहा होता है और इस-

लिये निश्चयात्मक सत्यतासे सहमत होगा। यह ख्याल कि परमात्माका वाक्य बुद्धिसे बाहर है स्वयं खिलाफ बुद्धि है क्योंकि सर्वज्ञता और बुद्धिमत्ता दो विरुद्ध बातें नहीं हैं अतः अब फिलासफीकी यों तारीफ करना चाहिये कि वह एक विद्या है कि जिसमें:—

१—हालात अनुभव (प्रत्यक्ष) से पाये जाते हैं।

२—परिणामोंकी जांच न्यायसे होती है।

३—और सत्यताका अन्तिम निर्णय शास्त्रसे किया जाता है जो कि सर्वज्ञका असत्य न होनेवाला वाक्य है।

और वास्तवमें जहां इन तीनोंकी एकता हो वहांपर सन्देह और शास्त्रार्थकी जगह नहीं रहती है। विज्ञानका खास साधन अनुभव है जिसकी विवेचनासे कारण और कार्य्यका सत्य २ ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। वस्तुओंके गुण और उनके नैसर्गिक (कीमियाई गुण) कार्य्य, कारणका काम करते हैं और कार्य्य वस्तुओंके क्रिया और कीमियाई असरसे पैदा होते हैं। जैसे हल्वेकी मिठाईका कारण शक्कर है इसलिये जहां हल्वेके अवलेहमें शक्कर नहीं डाली जाती वहां हल्वेमें मीठापन भी नहीं होता है बस यही विज्ञान है गोकि वह यहां नित्यप्रतिके साधारण वस्तुओंमें पाया जाता है और यह पूर्णरूपसे निश्चय योग्य है और दरअसल यही एक चीज है कि जिसके ऊपर तत्काल

अपरिहार्य और कतई नतीज़ा पैदा करनेके लिये विश्वास किया जा सकता है ।

न्यायके खास २ साधन निम्न लिखित हैं:—

१–अकली नतीजा (अनुमान)

२–प्रकरण (किस्म) का निश्चय या

३-अनैलिसेज (Analysis) जो सामग्रीका ज्ञान करावै । } तर्क

और

(४) नयवाद या निसवत (लिहाज निसवतीका मद्द नजर रखना)

इनमेंसे अनुमान (अकली नतीजा) सही राय लगानेका साधन है। प्रकारनिश्चय (तशखीसकिस्म) प्राकृतिक पदार्थोंको गुणानुकूल सही २ विभक्त करना, छानवीन (analysis) सही २ पदार्थोंके अंशोंको ज्ञात करनेका और नयवाद सत्यताके विविध दृष्टिकोणसे समझनेका नियम है। हम इन सब बातोंपर इस व्याख्यानमें विवेचना करेंगे और वह नियम भी बतावेंगे जिससे एक साधारण बुद्धिके विद्यार्थीको न्यायपर पौनघंटाके अंदर २ पूरा विज्ञान प्राप्त हो जाय। सबसे पहली वस्तु जाननेके योग्य यह है कि तर्कमें अभ्यास प्राप्त करनेकेलिये यह नितान्त अनावश्यक है कि मनमें कठिन और परेशान करनेवाली परिभाषायें, जो आजकल तर्ककी पुस्तकोंमें पाई जाती हैं, बलात्कार

ठोसदी जावें कुदरती मन्तक एक बहुत सरल वस्तु है और किसी परिभाषाओंके रटनेकी जरूरत नहीं रखता है । उसका प्रत्यक्ष सुबूत यह है कि बहुतसे अनपढ़ मनुष्य बहुत ठीक और सही नतीजा निकालते हैं और छोटे २ बच्चोंमें भी प्राय: सही नतीजा निकालनेकी एक आश्चर्यजनक हदतक योग्यता पाई जाती है। यदि तर्क विशाल केवल कठिन और मार्मिक परिभाषा (technical) के जाननेपर निर्भर होता तो यह स्वाभाविक (कुदरती) तर्क असम्भव सा होता। वास्तवमें यह बात है कि तर्कमें परिणाम केवल ऐसे नियमकी सहायतासे निकाला जाता है जो परिवर्तित नहीं हो सकता। यदि मैं आपसे पूछूं कि कल कौन दिन होगा? ऐसी अवस्थामें कि जब आज सोमवार हो, तो आप फौरन उत्तर देंगे कि कल मंगल होगा परन्तु आप यह नहीं बतासकते कि मेरे गुच्छे में कितनी चाभियां है, न यह कि मेरी जेबमें कितना रुपिया है और न यह कि मेरी घड़ी किस धातुकी है अर्थात् वह सोनेकी या चान्दीकी है या किसी और वस्तुकी। इसका कारण यह है कि जब कि सप्ताहके दिनोंकेलिये एक नियम निर्धारित कर दिया गया है जिसके अनुसार सदैव सोमवारके बाद मंगल होता है तब ऐसा कोई नियम मनुष्य या कुदरतकी ओरसे निश्चित नहीं किया गया है कि सदैव मेरे गुच्छेकी इतनी या इतनी ही चाबियां हों अथवा इतने ही बिना कमी ज्यादतीके मेरी जेबमें हर वक्त

रुपिया हो और एक ही धातुकी मेरी घडी बनी हुई हो और कदापि दूसरी धातुकी न हो। यदि सोमवारके बाद मङ्गलके होनेमें कोई एक भी अन्तर होता तो आप निश्चयसे यह नहीं कह सकते कि कल मंगल ही होगा क्योकि यह सम्भव है कि कल ही वह अन्तर हो जिस सूरतमें कल मंगल न होकर कोई दूसरा दिन होगा। इन उदाहरणोंसे हम यह परिणाम निकालते हैं कि जहां कहीं एक निश्चित नियम है और कोई अन्तर नहीं है केवल वहां ही तार्किक परिणाम निकाला जा सकता है परन्तु ऐसे नियमकी अनुपस्थितिमें अथवा ऐसी सूरतमें जहां ऐसा नियमित और कभी न बदलनेवाला नियम नहीं है, कोई परिणाम नहीं निकाला जा सकता है। यही एक सरल और सीधा मार्ग न्याय का है जिसको हरएक व्यक्ति थोड़ा बहुत जानता है। यदि किसी पढ़ाईकी पुस्तकमें इस छोटीसी बातको बहुत एंच पेचसे वर्णन किया जावे तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वह अपने सिद्धांतके पूरा करनेमें असमर्थ रहा। यह इसी नियमके प्रयोगका परिणाम है कि एक अनपढ़ गंवार और एक साधारण छोटा बालक, जो किसी स्थानसे धुंएको निकलता हुआ देखता है तत्काल इस बातको ज्ञात करलेता है कि वहां पर अग्नि मौजूद है। आपका किताबी तार्किक भी ऐसा ही करता है परन्तु एक मर्म्य और क़ुदरतके खिलाफ तरीकेसे है उसको सबसे प्रथम एक ख़्याली

सांचा बनाना पड़ेगा जिसके द्वारा वह तार्किक परिणाम पर पहुंचनेका प्रयत्न करेगा।

एस (S) = पी (P)

यहां

एस (S) = धुवां

पी (P) = अग्नि

अतएव यह सूरत प्राप्त हुई;—

"धुवां आग है"

यह विद्वानोंके तर्कका पहला पक्ष है। दूसरा यह है—

यह धुवां है।

अब हमारे तार्किक महाशय यह अनुसंधान करनेका प्रयत्न करेंगे कि आया इसका मिडिल टर्म (middle term) हेतु सर्व-देशी है या नहीं। परन्तु वह यह स्थल है जहां इन पेंच पांचोंमें पड़ कर भ्रममें पड़जानेका इतना अन्देशा है कि यदि वह इसमें सुरक्षित भावसे सफल होसकें तो वास्तवमें वह शाबासीके अधिकारी हैं। अब पहले दोनो पक्ष इस तरह पर हुये—

१–सब एस (S) पी (P) है

२–यह एस (S) है

इसका भाव सर्व साधारणको समझनेकेलिये इसप्रकार होगा।

१– सब स्थानोमें धुवां आगसे पैदा होता है।

२- यह स्थान धुएका है।

अब अलबत्ता हम यह परिणाम निकालनेके अधिकारी हैं कि "अतः यह धुवां भी आगसे पैदा हुआ है।"

कुदरती मन्तकमें, जिसको केवल एक नियमित साधनकी जरूरत है इस प्रकारकी कष्ट और उलझनें नहीं उठना पड़तीं मैं आपसे यहां पर यह कहना उचित समझता हूं कि हेतु (Middle term) में कोई विशेष जादूकी शक्ति नहीं है कि जिसके कारण वह येन केन प्रकारेण पाश्चात्य तर्ककी सत्यताको गारंटी करदे। वह सामान्यतः केवल कुदरती तर्कके नियमोंको बयान करनेका एक दूसरा परन्तु उलझन पैदा करनेवाला तरीका है क्योंकि हद औसतको उसीसमय "जामे" कहते हैं कि जब कि उसका प्रयोग सब अवस्थाओंमें हो अर्थात् जब कि उसमें कोई व्यतिरेक न हो। पाश्चात्य तर्क इस बातको स्वीकार करनेकेलिये बाध्य है कि तार्किक परिणाममें सदैव मनकी ओरसे इस बातका प्रयत्न होता है कि उन सर्व साधारण सिद्धान्तोंको ज्ञात करे कि जिन पर कुदरतमें वस्तुओ और घटनाओका एक दूसरेसे सम्बन्ध होता है। और इस प्रयत्नमे सफलता प्राप्त करनेके लिये मनको उस ज्ञान पर भरोसा करके प्रारम्भ करना पड़ता है, जो उसको प्राप्त है।

जब साधारण सम्बन्धका नियम ज्ञात होता है और इच्छा

यह होती है कि विशेष वस्तु वा घटनाके निमित्त ज्ञान प्राप्त किया जावे तो उस समय उसको "अनुमान" (Deduction) कहते हैं। परन्तु जहां उद्देश्य यह है कि अनुभूत घटनाओंमेंसे उनका एक दूसरेसे साधारण सम्बन्ध ढूंढा जावे तो उस समय उस नियमको,—जो प्रयोग होता है तर्क (Induction) कहते हैं (देखो Banerjee's hand book of deductive Logic. p. 81- 82)

यही साधारण और आवश्यक तार्किक सिद्धान्त है जो पाश्चात्य विद्वानोंकी पुस्तकोमें क्लिष्ट नियमोंमें वयान किया गया है अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कालिजके विद्यार्थियोका मस्तिष्क भी इसके समझनेमें चकरा जावे। यह वात ध्यान रखने योग्य है कि वनावटी पाश्चात्य तर्क अपने परिणामकी सत्यताका जिम्मेवार नहीं है यद्यपि कुदरती है। मैं फिर मिस्टर वनर्जी महोदयकी पुस्तककी साक्षी दूंगा जिसमें डाक्टर रे साहवके निम्न भांति शब्द पाये जाते हैं:—

"अनुमान (Deductive reason) में हम पक्षोंमें दिये हुए भावोंसे परिणाम निकालते हैं, पक्षोंके भावोसे हम उस परिणाम पर पहुंचते हैं जो उनमेसे लाजमी निकलता है तो भी हम उसकी सत्यताके जिम्मेवार नहीं हैं। निःसंदेह अगर उनका लेख सत्य है तो परिणाम अवश्य सत्य होगा अतः यह सिद्ध है कि

अनुमान द्वारा जो परिणाम हम निकालते हैं वह अनुमानमात्र है जिसकी सत्यता पक्षोंकी सत्यता पर निर्भर है।" वनावटी और कुदरती तर्कका इस वारेमें मुकावला करनेकेलिये निम्न-लिखित दलील पाश्चात्य तर्कके नितान्त युक्तियुक्त हैं।

१–सब मनुष्य निर्बुद्धि हैं।

२–सुकरात एक मनुष्य है।

३–इसलिये सुकरात निर्बुद्धि है।

परन्तु स्वाभाविक तर्क द्वारा इस प्रकारका परिणाम निकालना असम्भव है–क्योंकि वह वहीं पर नतीजा निकालेगा जहां कोई नियमित सिद्धांत हो। परन्तु ऐसा कोई नियमित सिद्धांत नहीं जिसके अनुसार यह कहा जावे कि सब मनुष्य निर्बुद्धि हैं यह ध्यान रखना चाहिये कि हरएक व्यवस्थासे तार्किक परिणाम नहीं निकल सकता चाहे जितना पुराना हो और चाहे जितनी कडाईसे उस पर अमल होता हो। उदाहरणके लिये यदि कोई व्यक्ति गत ५० वर्षसे बराबर प्रातः काल मेरे मकानके सामनेसे जाता है तो हम इससे यह नहीं सिद्ध कर सकते कि वह कल भी अवश्य ही मेरे मकानके सामनेसे निकलेगा क्योंकि हजारो वातें उसके निकलनेमें वाधक हो सकती हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि असली तर्क जिसको संस्कृतमें "व्याप्ति" कहते हैं एक ऐसा नियम है जो न भूत कालहीमें सही पाया गया है किन्तु आगामीमें भी

अवश्य सही पाया जायगा सामान्य व्यवस्थासे यहां पर कोई काम नहीं निकल सकता है ।

पांच प्रकारके तार्किक सम्बन्ध हैं जिनमें व्याप्तिका होना सम्भव है। वह यह हैं—

१–कार्य्य-कारण

२–पूर्वचर उत्तरचर (अगला पिछला)

३–सहचर (एक साथ होनेका सम्बंध)

४–व्याप्य–व्यापक और

५–स्वभाव

इन पांच प्रकारके संम्बंधोसे ७ प्रकारके निम्नलिखित परिणाम निकलते है—

१–कारणके ज्ञात होनेपर कार्यका ज्ञान,–जैसे रसोईघरमें गीला ईंधन जल रहा है इसलिये रसोईघरमें धुवां भरा है।

२-कार्य्यके ज्ञानसे कारणका ज्ञान,—जैसे यहां धुवां हो रहा है इसलिये यहां पर आग मौजूद है ।

३–अगला ज्ञात होनेपर पिछलेका ज्ञान, जैसे सोमवारका एत्-वारके बाद होना ।

४–पिछला ज्ञात होनेपर अगलेका ज्ञान जैसे—किशोरावस्था, युवा और वृद्धावस्थासे पहिले होती है।

५–दो एक साथ होनेवाली वस्तुओंमेंसे एकके उपस्थित होने

पर दूसरेकी उपस्थितिका ज्ञान, जैसे बुढ़ापा और अनुभव (तज्रुर्बा)

६-व्याप्यके ज्ञानसे व्यापकका ज्ञान, जैसे इस स्थान पर कोई फलवाला वृक्ष नहीं है इसलिये यहां पर कोई आम्रका वृक्ष नहीं है।

७-स्वभावके ज्ञात होनेपर वस्तुओंका ज्ञान होना, इस गृहमें कोई घट नहीं है-क्योंकि इस स्वभावकी कोई वस्तु यहां मौजूद नहीं है।

यह अन्तिम तार्किक उदाहरण सामान्यतः गलत प्रतीत होता है क्योंकि नतीजा कि इस कमरामें कोई घट नहीं है एक अनुभव समझा जा सकता है परन्तु इस सूरतमें हमको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि चक्षु असतको देख सकता है जोकि एक झूठी बात है। बस यही तर्क है और मैं यह कहूंगा कि इस कुदरती मन्तकमें गलतीकेलिये कोई स्थान नहीं है बशर्तें कि व्याप्तिका अनुसंधान ठीक २ और वैज्ञानिक रीतिसे किया जावे। व्याप्तिकी सत्यताकी अन्तिम जांच शास्त्रसे की जाती है जोकि एक सर्वज्ञ आप्तका वचन है और जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालमें सत्यताका बोध करानेवाला होता है इसलिये जहां हमारी निज सम्मति सर्व मनुष्योंके अनुभवसे सहमत है और उसका प्रमाण सर्वज्ञके वचनसे होता है वहां किसी प्रकारका संशय

र्हीं रहता है। शास्त्रोंका असली कर्त्तव्य यही है जो सदैव सत्य सेद्धान्तोकाप्र तिपादन करनेवाला और प्रामाणिक कोषोंकी गांति होना समुचित है । अब हम जरा देर अवकाश लेकर वेविध तरीकोंके तर्कके नियमो पर गौर करेंगे । निम्न भांति वार तरीके प्रचलित रहे हैं—

१—जैनोंका नियम

२—न्यायका नियम

३—बौद्धोका नियम

४—योरोपका नियम जो अरस्तूके नामसे विख्यात है।

इस व्याख्यानमें जो कुछ हमने तर्क (न्याय) के बारेमें कहा है वह जैनोंके नियमानुसार है। न्यायवाले परिणामको सत्यताको सहधर्मी (हमजात या हमजिन्स) उदाहरण पर निर्भर कहते हैं। पहले किसी समय रसोईमें धुवां देखा गया था जहां आग थी। पहाड़की चोटी पर धुवां दिखाई पड़ता है इसलिये पहाड़की चोटी पर भी आग है। इसी प्रकारकी युक्तिपर नैयायिक साध्यकी सिद्धि करते हैं। यहां पर किसी सत्य विज्ञानानुसार शुद्ध की हुई व्याप्तिका सम्बन्ध नहीं है। साध्यकी सिद्धि किसी निश्चयात्मक और न परिवर्त्तन होनेवाले नियमके आधार पर नहीं है किन्तु एक सहधर्मी उदाहरणके बलपर निर्भर है। वह दोष भी जिनके

आभाससे बचनेका आदेश है न्यायके तर्कको विद्याकी पराकाष्ठा तक नहीं पहुंचाते हैं। वह निम्न ५ भांतिके हैं—

१—व्यभिचार, जिसका भाव यह है कि हेतु कभी तो साध्यमें पाया जाता है और कभी उसके विरोधीमें। जैसे शब्द अनित्य है क्योंकि वह दिखाई नहीं देता। यहां न दिखाई पड़नेका विशेषण प्रायः नित्य पदार्थोंमें भी जैसे आत्मा आकाश इत्यादि और अनित्यमें भी जैसे सूक्ष्म शरीर वायु इत्यादिमें भी पाया जाता है।

२— विरोधाभास, जो साध्यका विरोध करता है जैसे घड़ा एक बना हुआ पदार्थ है क्योंकि वह नित्य है।

३— प्रकरणसम, जो साध्य ही हेतुके रूपमें हो (नतीजा बशक्ल दलील) जैसे शब्द अनित्य है क्योंकि उसमें सत्ता नहीं है।

४-- साध्यसम अर्थात् जिसकी सत्ता खुद ही असिद्ध हो जैसे छाया द्रव्य है क्योंकि वह हिलन जुलन क्रिया सम्पन्न है (यहां पर यह कहना कि छाया की हिलन जुलन क्रिया होती है असिद्ध है)

५--अतीतकालाभास अर्थात् जिसका प्रयोग ऐसे समयपर किया जावे कि जो समयानुकूल न हो। जैसे-शब्द नित्य है क्योंकि रंगकी भांति वह स्पर्शसे पैदा होता है। इस अन्तिम युक्तिकी परिभाषा इस तरह पर है जैसे दीपक-प्रकाश पदार्थों पर पड़-

जैसे उनके रंग दृष्टिगत होते हैं इसीप्रकार ढोलको लकड़ीसे बजाने पर शब्द उत्पन्न होता है इसलिये दोनों सूरतोंमें दो पदार्थोंका मिलना—उत्पत्तिका कारण होता है। पहली सूरतमें प्रकाश और पदार्थोंके मेलसे उनका रंग प्रतीत होता है और दूसरेमें ढोल और लकड़ीके बजानेसे शब्द। मगर दीपकका प्रकाश पदार्थोंपर पड़कर उनके रङ्गको प्रतीत कराता है न कि स्वयं रंगको उत्पन्न करता है। इसीप्रकार इस युक्तिसे सिद्ध किया गया है कि शब्द भी नित्य है, ढोल और उसके बजानेकी लकड़ीसे पैदा नहीं होगया। इस युक्तिमें यह त्रुटि है कि शब्द और रंग निश्चय ही दो विविध समयसम्बंधी पदार्थ हैं पहला केवल तत्काल उत्पन्न होता है जबकि ढोल बजाया जाता है। दूसरा प्रकाशके पदार्थोंपर पड़नेसे पैदा नहीं होता किन्तु पहलेसे वह मौजूद होता है ऐसे विविध समय संबंधीवाले उदाहरणोंमें तार्किक सापेक्षता ढूंढना ही त्रुटि है। न्यायकी कही हुई त्रुटियोंका बयान अब खतम हुआ। परंतु यह प्रत्यक्ष है कि उनकी सहायतासे भी कोई सत्य तार्किक सम्बन्ध न्यायवाले स्थापन नहीं कर सकते है। जैनमती नियम और नैयायिक नियममें खास अन्तर यह है कि नैयायिक सदैव सहधर्मी उदाहरणसे साध्यकी सिद्धि करना उचित समझते हैं। उन अवस्थाओंके अतिरिक्त, जिनका अभ्यासोंमें वर्णन किया गया है। किन्तु जैनी लोग उसी समय

पर तार्किक परिणाम निकालेंगे जब वह उसको किसी सत्य सम्बन्ध (व्याप्ति) पर कायम कर सकते हैं । नीचे लिखी मिसालमें नैयायिकोंकी सब आवश्यकताओंका लिहाज रक्खा गया है । तौ भी परिणाम वह है जिसकी सत्यताका कोई तार्किक जिम्मेवार नहीं हो सकता है । मिसाल—

१– जैद की स्त्रीके गर्भमें आया हुआ बच्चा पुत्र है ।

२– क्योंकि वह जैदका पुत्र है ।

३– मिस्ल जैदके तमाम बच्चोंके, जो सब लड़के हैं ।

इस स्थलपर युक्तिका चिन्ह (जो जैदका बच्चा होना है) सहधर्मी है जो न व्यभिचार है और न किसी प्रकारसे असंगत है परन्तु इससे कोई निश्चयात्मक सम्बन्ध पुल्लिंग अथवा स्त्री लिंगसे नहीं है इसलिये इस बातका कोई प्रमाण नहीं है कि जैदकी स्त्रीके गर्भमे आया हुआ बच्चा अवश्य ही लडका होगा । इस उदाहरणमें हेतु कुल सहधर्मी उदाहरणोंमें साध्यके साथ संबंधित पाया जाता है। यह व्यभिचार नहीं है क्योंकि जैदका बच्चा होनेका विशेषण एक भी लडकीमें नहीं पाया जाता और न यह असमय है क्योंकि वह वास्तविक तमाम समय गर्भमें आये हुये बच्चेमें मौजूद है और नतीजा निकालनेके समय भी ।

गौतमके न्यायकी इस निर्बलताको प्रायः लोग इस भांतिसे दबा रखनेकी कोशिश करते है कि यह सम्भव है कि गौतमका

असहमत-

यह मत था कि उनकी युक्तियोके निराकरणका भार उनके विरोधियोपर पड़े परंतु ऐसी निर्बल बुनियादके ऊपर तार्किक परिणामको निश्चित करना कि विरोध करनेवाले उन त्रुटियोका शोधन कर लेंगे अत्यन्तहानिकारक है। विशेषतया जब कि हमारी त्रुटियोका शोधन विरोधियोको योग्यता और सम्मतिपर निर्भर हो।

बौद्धोंके तर्कमें भी नैयायिकोंकी भांति व्याप्ति नहीं जाती है और उसमें भी सहधर्मी मिसालसे परिणाम निकालना उचित समझा गया बशर्तेके हेतु—

१—पक्षमें मौजूद हो

२—सपक्षमें पाया जावे

३—मगर विपक्षमें न हो।

निम्नलिखित दलीलमें

(क) इस सामनेवाले पहाड़की शिखा पर अग्नि है,

(ख) क्योंकि इस पर धुवां है

(ग) रसोईकी भांति,

(घ) झीलके विरुद्ध

(ङ) अतएव सामनेवाले पहाड़के शिखर पर आग है।

इसलिये सामनेवाले पहाडकी शिखा पक्ष (वह स्थान जहां पर=इस दलीलेमें आग) है। प्रथमकी देखी हुई रसोई सपक्ष (स=भांति+पक्ष अर्थात् पक्षकी भांति पहलेका देखा हुआ स्थान) है

और कोल विपक्ष (वि-मुखालिफ, पक्ष) है जहां कि न धुवां है और न अग्नि। यह तीनो बातें जैदके बच्चेवाले उदाहरणमें लिहाज की गई है तो भी यह कोई नहीं कह सकता कि वह बच्चा, बौद्धोंके मन्तकी दावा हो, इस बातसे रुष्ट हो करके, कि उन्होंने उसका लड़का लड़कोपनका प्रश्न उसके उत्पन्न होनेसे पहले ही विवादास्पद कर दिया, झूठा नहीं कर देगा।

योरोपियन (पाश्चात्य) तर्क भी पर्याप्त नहीं है क्योंकि उसका सिलसिला दलील केवल बनावटी और कुदरतके विरुद्ध ही नहीं है जैसा कि अब प्रत्यक्ष होगया होगा परञ्च उसका कोई भी सम्बन्ध निश्चयात्मक सिद्धिसे नहीं है। वह सही २ तर्क होनेके स्थान पर "इल्म तावीर" (अर्थ निकालना) के समान है।

निःसन्देह वह नैय्यायको और बौद्धोके तर्कसे ज्यादा सही है परन्तु उसका काम केवल मन्तकी जुमलोंकी तावीर अर्थ को समझने पर ही समाप्त हो जाता है जिससे कि उनमें और परिणाममें परिभाषाके लिहाजसे मुताबिकत रहे। हम इसका स्वीकार करनेको उद्यत हैं कि इस परिभाषाके सादृश्यको पाश्चात्य तर्क बड़ी सत्यताके साथ स्थिर रखता है। हेमिल्टन (Hamilton) और मेंसिल (Mansel) महोदयकी सम्मति है कि तर्क केवल ख्याली मुताबिकत कायम रखनेकी विद्या है और उसका वास्तविक सत्यतासे कोई सम्बन्ध नहीं है। मिल

(Mill) और बेन (Bain) ने अवश्य इस बातका प्रयत्न किया कि योरोपियन मन्तकको एक सत्य विद्याकी सीमा तक पहुंचा देवें जिससे पदार्थोंके वास्तविक सम्बन्ध सिद्ध हो सकें परन्तु उन्होंने भी वैसा ही उसको भद्दा फर्जी और बेडौल छोड़ दिया जैसा कि पाया था। पाश्चात्य तर्कका मूल्य, जब हम इस विचारसे ख्याल करते हैं कि नित्यप्रतिके व्यवहारमें सामान्य पुरुष वकील, दार्शनिक, व तार्किक लोग भी उसका वास्तविक प्रयोग नहीं करते, कुछ नहीं ठहरता है। उसकी अनगिनित परिभाषाएं और तारीफें स्मरण शक्तिके ऊपर एक भारी बोझ होती हैं और उसके कायदे और सूत्र खयालको प्रत्यक्ष करानेके स्थान पर उलटा उलझाते और कठिन करते हैं। परंतु कुदरती मन्तक, जिसका कि आज वर्णन किया गया है, हर एक व्यक्तिको चाहे जितना वह निर्बुद्धि हो, सिखाया जा सकता है और ६ ठी और ७ वीं कक्षाके बालकोंको भली प्रकार सरलतासे पढ़ाया जा सकता है, वह मनको प्रकाशित कर देता है और विचारोंकी सापेक्षताको सुरक्षित रखता है और इस प्रकार जीवनको सुखी बनाता है। इसके विरुद्ध मौजूदा तर्क केवल दिखावटी विद्वत्ताका द्योतक है। वह किसी लाभकारक पदार्थको नहीं प्रतीत कराता है और अपने शिष्यको केवल पलकसे प्रतीत होनेवाली बुद्धिमत्ताकी सूरत प्रदान करके समाप्त हो जाता है। मुझे विश्वास है कि जिस किसीने इस विषयको समझा है वह इस मामलेमें मुझसे

विरोध नहीं करेगा कि मौजूदा मन्तककी उच्चसे उच्च कक्षाका नतीजा कठिन परिभाषा और सूत्रोंका एक 'सेट' है जोकि ख्याली सापेक्षताको सिद्ध करनेकेलिये विना इस विचारके कि वह वास्तवमें सही है अथवा नहीं, कायम किया गया है, जब कि कुदरती मन्तकसे कमसे कम प्राप्त होनेवाला लाभ तबीयतका मन्तकी रुजहान है जो मनुष्यको कुदरती सम्बन्धों और पदार्थोंके सच्चे कारणोंकी खोजमें लगाता है। पस! इस कुदरती मन्तकसे सबसे बढ़कर फायदा कुदरत पर पूरे तोरसे आधिपत्य प्राप्त करना है कि जिससे उत्तमसे उत्तम मनुष्यके उद्देश्य प्राप्त हो सकें। मनुष्य जातिके लिये वह बहुत शुभ दिन होगा जिस दिन यह कुदरती मन्तक स्कूलमें लड़के और लड़कियोंको पढ़ाया जावेगा और मैं आशा करता हूं कि यह प्रारम्भिक पाठशालाओंमें भी किसी सादा तरीके पर प्रारम्भ कराया जायगा।

यहां पर मन्तकका बयान खतम होता है जिसके समझनेमें मुझे विश्वास है कि पौन घण्टासे ज्यादा नहीं लगा।

अब मैं 'किस्मबंदी'के लिये चंद अलफाज कहूंगा जिसका भाव पदार्थोंको, उनके विशेषणके अनुसार, विविध प्रकारोंमें विभक्त करना है। खासियत (गुण) की दो सूरते हैं या तो वह ऐसा गुण किसी पदार्थका है जो उससे कदापि अलग न हो सके, जैसे गर्मी अग्निसे कभी अलग नहीं हो सकती, या वह, जो पृथक् हो सके जैसे दाढ़ी, जो मनुष्यके निकल आती है और

पृथक भी हो सकती है । असली गुण उसको कहते हैं जो अपनी जाति (लक्ष्य) भरमें पाया जावे किन्तु उससे बाहर किसी पदार्थमें न पाया जावे ।

मेटाफिजिक्स अर्थात् दर्शनका दूसरा सहायक 'Analysis' (जो सामिगरीका ज्ञान करावै) है जिससे हम किसी मिली हुई या बनी हुई वस्तु अथवा खयालके अणुओंका हाल ज्ञात कर सकते हैं और अन्तिम सहायक दर्शनका नयवाद अर्थात् लिहाज-निसवती है जिसकी महत्ता इस बातकी अधिकारी है कि उसका उल्लेख कुछ विस्तारसे किया जावे । इसके निमित्त यह कहना सही है कि जिस कदर विरोध और त्रुटियां मनुष्योंके आपसमें धर्म और दार्शनिक विचारोंमें हुई हैं वह सब इसके उसूलोंके अज्ञताके कारण हैं । नयवादका शाब्दिक अर्थ लिहाज निसवती है और दर्शनमें किसी नतीजेके स्थापनमें इसबातका लिहाज रखनेसे है कि वह नतीजा किस पक्षको लिये हुये है । यदि ऐसा न किया जावेगा तो दार्शनिक मन्दिर टेढा बनेगा । जैसे हम देखते हैं कि प्राकृतिक पदार्थोंमें परिवर्तन होता रहता है और वह टूट फूट कर नष्ट होते रहते हैं परन्तु यह केवल प्राकृतिक पदार्थोंकी ही सूरत है न कि प्रकृतिकी, जो द्रव्य हैं । फर्ज करो कि हम एक साधारण नियम प्राकृतिक पदार्थोंके अनित्यपनके हेतु बनावैं और उसको पुष्ट करनेकेलिये प्रकृतिके नित्यत्वको गौण कर देवें तो हमारे विचारकी सूरत क्षणिकवादकीसी होगी; जो कहता है कि संसार

में कोई भी पदार्थ अक्षय अथवा नित्य नहीं है जिसका नतीजा यह होता है कि हम यह माननेके लिये बाध्य होते हैं कि पदार्थ सदैव असत्से उत्पन्न होते हैं और पुनः नष्ट हो जाते हैं। क्षणिक-वादकी त्रुटिका यही कारण है कि पदार्थोंका अनित्यपन उनकी पर्यायोंतक ही परिमित है और उस प्राकृतिक मसाला तक, जिसकी वह बनी हुई हैं, नहीं पहुंचता है। यह एक उदाहरण नयवादके नियमोंको समझनेकेलिये पर्याप्त है और हमको एकतर्फी परिणाम पर अड़ बैठनेसे रोकता है। हर एक पदार्थोंके बहुतसे पहलू हुआ करते हैं और ऐसे ही नयवाद भी बहुत प्रकारके हैं परन्तु इनमेंसे ज्यादा आवश्यक नयवाद निम्न लिखित प्रकारोंके हैं—
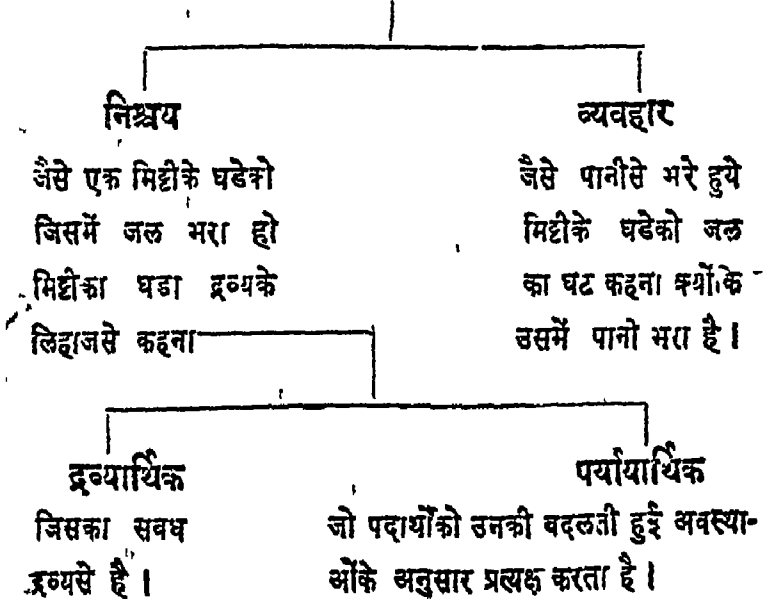
असहमत-

नयवादका भाव समझनेके हेतु जिसका जानना दार्शनिक विचारोंकेलिये अत्यन्तावश्यक है इस कदर कहना ही पर्याप्त होगा।

अब मैं शास्त्रकी ओर फिर आता हूं जिसका कुछ उल्लेख आजके व्याख्यानमें होचुका है। यह स्थल इस विवादास्पद विषयके निर्णय करनेका नहीं है कि इलहाम (श्रुति) किसको कहते हैं और उसका असली विकास क्या है? इसपर विचारकेलिये विशेष और उचित स्थान वादको मिलेगा, यहांपर तो केवल यह कहना आवश्यक है कि शास्त्रका असली काम हमको ठीक २ ज्ञानकी शिक्षा देना है जिससे कि हम सत्यता पर कार्य्यबद्ध होकर अपने हार्दिक उद्देशको प्राप्त करसकें। इस सीमातक हर शास्त्र जो सच्चे गुरुका कहा हुआ कीमती है जैसा प्रथम उल्लेख किया जा चुका है वह एक सर्वज्ञ-भूत भविष्यत वर्तमानकी सब बातों और सब सम्बन्धोंके ज्ञाताका वाक्य है और तार्किक संबंध (व्याप्ति) की सच्ची अन्तिम कसौटी है। यहांतक कि जो बात सत्य शास्त्रोंके विरुद्ध है वह अवश्य त्रुटि और परेशानी और ठोकर खिलानेवाली होगी।

यहां पर आजकी सांझका विषय अन्तको प्राप्त होता है और हम भी आज यहीं पर रुक जाते हैं।

इति शम्।

तीसरा व्याख्यान।

——:o:——

विज्ञान (क)

आजके व्याख्यानका विषय "वैज्ञानिक धर्म्म" है परन्तु शब्द 'वैज्ञानिक' किसी कद्र भ्रमकारक है क्योंकि आजकल जो भाव विज्ञानका है उसका अर्थ प्रकृतिवादियोंका ज्ञान है जो किसी धर्म्मको नहीं मानते हैं। वैज्ञानिक धर्म्मसे मेरा भाव इस स्थल पर धर्म्मके "विज्ञानसे" है अथवा इस बातसे कि धर्म्म एक विज्ञान है। किसी समुदाय अथवा फिर्केके अकीदे (विश्वास) से नहीं है।

विज्ञान, अज्ञानका विरोधी है और द्रव्यों और उनके गुणों तथा पदार्थोंके वास्तविक कारणोंके ज्ञानका नाम है। विज्ञानसे मतलब ऐसे ज्ञानसे है जो संशय विपर्य्यय और अनध्यवसायसे रहित है और जिसका अनुसंधान अनुभवसे हो सकता है। अर्थात् सही २ ज्ञानको ही 'विज्ञान' कहते हैं और सही सही ज्ञान सच्ची साक्षीके अतिरिक्त अनुभव और तार्किक खोजसे ही परिमित बुद्धिवाले मनुष्यको प्राप्त हो सकता है। विज्ञानका पहला उसूल नेचर (Nature) की स्थिति है। इसका भाव यह है कि द्रव्य और उनके गुण सदैवके हैं और कभी नहीं बदलते हैं। वह कभी नाश नहीं होते हैं और न कभी नेस्तीसे हस्तीमें आते हैं। यह

बात मनुष्यके वर्तमान और भूत कालके अनुभवसे सिद्ध है। और जिस अनुभव पर यह बात निर्भर है वह किसी विशेष पुरुष या स्त्री का अनुभव नहीं है, न किसी विशेष फिर्के या समूहका, किन्तु सब मनुष्य जातिका, जिसमें कोई भी व्यतिरेक नहीं है क्योंकि बावजूद इसके कि लोग संसार और सृष्टि-उत्पत्तिकी निसबत चाहें जो सम्मति रखते हों, तो भी एक मनुष्य भी ऐसा नहीं पाया जाता जो अपने निजी अनुभवसे यह कहनेकेलिये तैयार हो कि उसने पदार्थोंको अस्तित्वसे नष्ट होते या नेस्तीसे अस्तित्वमें आते हुए देखा है।

क़याम कुदरत (लोकस्थिति) का नियम यह बताता है कि द्रव्य सदैव कायम रहनेवाला अर्थात् 'नित्य' है। यहां तक कि जो कुछ वास्तवमें मौजूद है उसका कभी नाश नहीं हो सक्ता। जब कि एक वस्तु देखनेमें नष्ट हो जाती है तो यथार्थमें उसकी केवल सूरत बदल जाती है। यह नहीं होता कि वह नितान्त सतसे असत् हो गई हो। जैसे उस मिश्रीकी-डलीकी, जो दूध अथवा पानीमें घुल जाती है, केवल सूरत बदल जाती है और वह स्थूल दशासे जलरूपको प्राप्त हो जाती है। इसीप्रकार पानी का बरसना हवाकी नमीका जलके बिन्दुओंकी सूरतमें परिवर्तित होकर पृथ्वी पर गिरना है। ऐसा नहीं होता कि बादलोंके पीछेसे कोई देवी देवता बैठ कर नेस्तीसे अस्तित्वमें लाकर जलको बरसाता है। उबलनेसे पानी भाप बन जाता है और भाप फिर

सर्दी पाकर रकीक (पानी) हो जाती है। जैसा हैकल साहब कहते हैं-"संसारमें हम कहीं प्रकृतिकी असत्तासे सत्तामें आने या पैदा किये जानेकी कोई मिसाल नहीं पाते हैं, न कहीं कोई अस्तित्व पदार्थ बिलकुल नाशसे पैदा होता पाया जाता है। यह अनुभूत बात जिस पर अब कोई एतराज नहीं करता है कीमिया केमिस्ट्री की जड है और उसका अनुसंधान प्रत्येक पुरुष तुला द्वारा कर सक्ता है" (दि रिडिल ऑफ दि युनीवर्स)

द्रव्यकी व्यवस्थाका नियम यह है कि पदार्थोंके गुण व विशेषण भी नित्य हैं यद्यपि विविध द्रव्योंके मिलनेसे इनमें परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे रङ्ग व गंध इत्यादि गुण जो प्रकृति (पुद्गल) में पाये जाते हैं सदैवसे प्रकृतिमे मौजूद है और सदैव रहेंगे। सत्य यह है कि द्रव्य और उसके गुण एक ही पदार्थको दो सूरतें या पहलू हैं क्योंकि द्रव्य अपने गुणोंसे पृथक् कोई वस्तु नहीं हो सकती है। यह कहना इसके बराबर है कि गुण द्रव्य ही में रहते हैं और द्रव्य गुणोंका ही समूह है जैसे सोना अपने सब गुणों पीलापन भारीपन, द्रव्यत्व इत्यादि २ के समूहका नाम है और उनसे पृथक् कोई पदार्थ खयाल नहीं किया जा सकता है। द्रव्योंमें उत्पत्ति स्थिति और नाश एक ही साथ पाये जाते हैं, जब कि हम एक सोनेकी सलाखको कुठालीमें गलाते हैं तो सलाखपनका नाश होता है, रकीक् हालतका प्रारम्भ होता है और सोनेकी स्थिति सोनेकी भांति बनी रहती है। यह तीन प्रकारका कार्य द्रव्यका है।

हम यह कहनेके भी अधिकारी नहीं हैं कि सलाखपनका नाश और रकीकपनका आरम्भ एक ही समयमें नहीं होता क्योंकि उनमें कोई अन्तर नहीं होता है अर्थात् रकीकपनमें परिवर्तन होना ही सलाखपनमें टूटनेकी सूरत है। यदि आपने सोनेकी इन दोनों हालतोंमें कोई अन्तर माना तो आप यह कहनेकेलिये वाध्य होंगे कि सलाखपनके नष्ट होने पर सोनेकी पहले कोई सूरत स्थिर नहीं रही और वादमें उसका रकीकपन भी असत् अर्थात् नेस्तीसे सत्तामें आया परन्तु यह नितान्त नियमविरुद्ध होगा क्योंकि पदार्थोंकी सत्ता, विदुन किसी लिङ्ग या स्वरूपके खयाल में नहीं आ सक्ती है।

संसारमें दो विशेष प्रकारके द्रव्य पाये जाते हैं एक जानदार, दूसरे वेजान। पहले कहे हुए वह हैं जिनमें चैतन्य या जीवन है और दूसरे जो वेजान हैं, जैसे प्रकृति। इनके पारभाषिक नाम जीव (चेतन) और अजीव (वेजान) हैं हम इनको जड़ और चेतन भी कह सक्ते हैं। इस समयका विज्ञान आत्मिक द्रव्यकी सत्तासे इन्कारी है और चेतनताको प्रकृति (पुद्गल) का गुण मानता है परन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिक लोगोंको जीवनके प्रारम्भके समझानेमें वडी कठिनाइयां पडती हैं, और वह लोग जीवनके इस संसारमें पहली वार प्रादुर्भूत होनेके निमित्त आश्चर्य्यजनक कल्पनायें किया करते हैं। कतिपय पुरुष ख्याल करते हैं कि जीवनका अंश या वीज पहले किसी दूसरे ग्रहसे पृथ्वी पर गिरा,

कतिपय कहते हैं वह स्वयं सत्तात्मक है और भी इस प्रकारकी सम्मतियां हैं जो लोगोंने जीवनके लिए निर्धारित की हैं। हम सबसे पहले उस खयालका अनुसंधान करेंगे जो चेतनताके प्रारम्भिक अंशको पौद्गलिक परमाणुमें कायम करता है। यह खयाल किया गया है कि चेतनाका यह प्रारम्भिक अंश शनैः २ बढते २ कैंट (Kant) शोपेन होअर (Schopen Hauer) टिंडल (Tyndall) जैसे प्रसिद्ध बुद्धिमानोंकी तीव्र और जबरदस्त समझ बन गया और इससे भी ज्यादा उन्नति कर सकता है। इस विचारके अनुसार चेतनताकी उत्तमसे उत्तम सूरतें इस प्रारम्भिक अंशकी 'शिद्दत' (वृद्धि) से प्राप्त होती हैं परन्तु यह केवल एक भ्रम है और उसका आधार दो प्रकारके वैज्ञानिक नियमों और एक प्रकारकी धार्मिक त्रुटि पर है। वह नियम ये हैं—

(१) प्रकृतिका असर चेतनाकी पर्यायों पर होता है और

(२) सब प्राणियोंमें एक ही प्रकारकी बुद्धि नहीं पाई जाती है। और त्रुटि यह है कि वह पदार्थ जीव ही नहीं है जो सदैव और हर समय पर एक ही अवस्थामें स्थिर न रहै। अनुभूत बातोंके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं कहना है, वह निश्चित हैं और उनका खण्डन नहीं हो सक्ता है। सत्य तो यह है, जैसा हम देखेंगे, कि धार्मिक विज्ञानने भी उनका पूरा २ लिहाज रक्खा है।

त्रुटि, हेकल साहबको विख्यात पुस्तक 'दी रिडिल ओफ दि युनीवर्स' के निम्नलिखित वाक्योंसे प्रकट हैः—

"इन और अन्य ज्ञात घटनाओंसे यह प्रत्यक्ष है कि मनुष्यकी चैतन्य शक्ति और उसके निकटस्थ दूध पिलाने वाले पशुओंकी भी चेतनता परिवर्तन होनेवाली वस्तु है, और उसकी शक्ति आन्तरिक और वाहरी कारणोंसे जैसे रुधिरका दौरा वगैरा और भेजेकी चोट और मुश्क इत्यादिके प्रयोगसे परिवर्तित होती रहती है। जीवित शरीरोंमें चेतनताकी वृद्धि इस वातका द्योतन करती है कि वह कोई असत्तात्मक पदार्थ नहीं है, किन्तु भेजेका एक प्राकृतिक कार्य है और इसलिये वह द्रव्यसंवन्धी नियमोंसे व्यतिरिक्त नहीं है।"

सत्य यह है कि धार्मिक विज्ञानने कभी जीवको हैकल साहवके अर्थोंमें कोई 'असत्तात्मक पदार्थ' नहीं माना है और न यह कभी माना है कि उस पर प्राकृतिक प्रभाव नहीं पडता है. परन्तु पाश्चात्य विज्ञानवेत्ताओंको जिस ख़यालसे मुकावला पडा वह सत्य धर्म्मकी असली सम्मति न थी किंतु ईश्वरवादका एक भ्रमकारक मुग़ालता था जिसके अनुकूल जीव एक असत्तात्मक और कभी न परिवर्तन होनेवाला पदार्थ है। इसलिये हम जीवकी सत्तासे विज्ञानवेत्ताके इनकारको क़तई इनकार नहीं समझते हैं क्योंकि वास्तवमे सच्ची धार्मिक शिक्षा पर ग़ौर करनेका उसको कभी अवसर ही नहीं मिला है।

सच्ची धार्मिक शिक्षानुसार, जीव और प्रकृति (पुद्गल)

दोनों द्रव्य हैं, जिनमें बाज गुण सामान्य हैं परंतु चेतनता नहीं। चेतनता जीवका स्वाभाविक गुण है जो कोई असत्तात्मक द्रव्य नहीं है। यद्यपि वह प्राकृतिक नहीं है अर्थात् प्रकृति (पुद्गल)का बना हुआ नहीं है तथापि जीव और प्रकृति दोनों बाज सूरतोंमें एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं जैसे केवल खयाली शक्तिसे बीमारको अच्छा कर देना। और चेतनताका जड़ी बूटियों और औषधियोंके प्रयोगसे कम व ज्यादा होना इत्यादि। जीव और प्रकृतिके मिलनेसे जीवकी वास्तविक शक्तियां (ज्ञान) मन्द और निरर्थक हो जाती हैं अतः निर्वाणका नितान्त यही भाव है कि जीवकी खराबी पैदा करनेवाली प्रकृतिसे नितान्त पृथकता होजावे। बुरीसे बुरी अवस्थामें प्रकृतिके प्रभावसे जीवकी चेतनताका करीब २ अभाव हो जाता है और वह उस समय केवल स्पर्शके योग्य रह जाती है।

जीवके उपरोक्त वर्णनमें जो जैनधर्मसे लिया गया है, यह प्रत्यक्ष स्वीकार किया गया है कि चेतना प्रकृतिसे प्रभावित होती है इसलिये जो प्रश्न कि-अब धर्म और विज्ञानके बीच पैदा होता है वह यह नहीं है कि आया मनुष्य या पशुओंके शरीरमें कोई असत्तात्मक कभी न बदलनेवाला पदार्थ है अथवा नहीं, परंच यह है कि आया चेतना शक्ति पुद्गलके परमाणुओंका कर्तव्य है या दूसरे किसी द्रव्यका? जिससे पुद्गलका सम्बन्ध तो होता है परन्तु जो वास्तवमें पुद्गल नहीं है।

अब अगर दर्शनको पुद्गलके परमाणुओंकी खासियत माना जाय तो मनुष्यकी बुद्धिमत्ता और अवधिज्ञान इत्यादि आश्चर्यजनक शक्तियां इस प्रारम्भिक दर्शनको तीव्रतर अथवा वृहद् सूरतें होंगी परन्तु हमारे सामने तीव्रता या वृद्धिका मामला नहीं है। ऊचीसे ऊंची और नीचीसे नीची चेतनामें जो अन्तर है वह तादाद (संख्या)का अन्तर नहीं है किंतु किस्म (गुणों) का अंतर है क्योंकि कट्टरसे कट्टर प्रकृतिवादियोने परमाणुके दर्शनकी शक्तिमें सूंघना, देखना और सुनना नहीं माना है और यह किसी तरह भी विचारमें नहीं आ सकता है कि यह शक्तियां अर्थात् सूंघना देखना और सुनना स्पर्श शक्तिसे वढ़ते २ वन सकें। प्रकृतिके परमाणुमें मानी हुई केवल स्पर्श शक्ति और उत्तम चेतनताके कार्य्यों और कर्तव्यों जैसे तजवीज और इरादेमें इतना वड़ा अंतर है कि इसको हम केवल शाब्दिक इस्तिलाहो या जुमलोंसे नही हटा सकते हैं और वह इस वातका इच्छुक है कि तीव्रता और वृद्धिके अतिरिक्त उसकी कोई विशेष उत्तम विवेचना की जावे। इस वातके पक्षमें कि स्पर्श शक्तिमेंसे अवधिज्ञान या तार्किक युक्ति निकल सकती है, किंचित् मात्र भी प्रमाण नहीं है। और यह नितान्त असम्भव है कि आप कैंट (Kant) या शोपेन होअर (Schopenhauer) जैसे वड़े बुद्धिमान पुरुषोकी समझको केवल स्पर्श शक्तिको हजारगुना दसलक्षगुना या सौ अरव गुना करनेसे निर्माण कर सकें।

इसके अतिरिक्त प्रकृतिके एक परमाणुसे जो गुण सम्बन्धित हैं वह उससे कभी पृथक् नहीं हो सकते हैं क्योंकि परमाणुको हम तोड़ फोड़ नहीं सकते हैं और न उसमें कोई ऐसे हिस्से या अंश है जो उससे पृथक् हो सकें । परमाणुओंमें स्वीकार की हुई चेतनाका तीव्र करना नितान्त असम्भव है क्योंकि कोई परमाणु अपनेमें कोई ऐसा मु'तकिल होनेवाला (परस्मै देयः) गुण नहीं रखता है जिसको वह किसी अपने भाई या बहिनको दान कर सकै और न मनुष्य ही अपनी चेतनाको अपने किसी आर्त भाईको दे सक्ता है क्योंकि सङ्कल्प स्मरण तजवीज दर्शन इत्यादिकी शक्ति सांसारिक पदार्थोंकी भांति मुन्तकिल होनेवाले पदार्थ नहीं हैं।

अतः हम यह देखते हैं कि यह विचार कि प्रकृतिके तत्त्वो में चेतनताका एक प्रारम्भिक अंश है जो शनैः २ बढते बढते तीव्र हो कर एक जीवनमुक्त या उच्च दार्शनिककी विशेष ज्ञान रखनेवाली जीवात्मा बन सकता है घटनाओंके जाहर करनेके लिये नितान्त अपर्याप्त है और माना नही जा सकता है। परन्तु प्रकृतिवादियोका एक और विचार शेष है जिससे वह चेतनाकी विवेचना करते हैं। अब दूसरा प्रकृतिवादियोंका फिर्क़ा हमको यह बताता है कि चेतना भेजेसे उत्पन्न होती है चेतनताका जीवात्माका गुण होनेके विरुद्ध अपना अनुसंधान समाप्त करते हुये जेना महाविद्यालयके प्रोफेसर अर्न्स्ट हेकल साहब ऐसा लिखते हैं-

"इस वातसे कि चेतनता मनके अन्य विशेषणोंकी भांति आज शरीरके हिस्सोके वढने पर निर्भर है और इस वातसे कि वह वालकमें इन हिस्सोके वढनेकी मुनासिवतमें पाई जाती है हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि पशुओमें वह ऐतिहासिक रीतिसे वनी है"

परन्तु यह भ्रम है, कोई तार्किक परिणाम नहीं है जो किसी निश्चित व्याप्ति पर स्थित हो और इस वातसे तो आप पहले ही विज्ञ हो चुके हैं कि व्याप्तिके विदून सच्चा परिणाम नहीं निकल सकता है। हेकल साहवका दिल स्वयं उनको इस पक्षकी निर्वलता स्वीकार करनेको वाध्य करता है- क्योंकि यह तत्काल ही लिखते हैं-

"यद्यपि हम चैतन्यके इस प्रकार शनैः २ उत्पन्न होनेके कितने ही कायल क्यो न हों अभाग्यवश हम अभी अपनेको इस दशामें नही पाते कि इस वातकी विशेष विवेचना करें या उसके सावित या साफ करनेकेलिये कोई विशेष सम्मति निर्धारित करें।"

वाह ! क्या उत्तम विचार है कि विवादास्पद विषय अभी पूर्णरूपसे साफ नहीं हुआ और तिस परभी हम उसके कायल वैठे है। कहा जाता है कि चेतनता भेजेसे पैदा होती है परन्तु स्वयं भेजेने उसको कहांसे पाया ? क्या वह उसी फर्जी अंशमेंसे आता है जो प्रकृतिके परमाणुओंमें प्रारम्भिक माना गया है

और जिसका खंडन इससे पूर्व होचुका है। स्वयं हेकल साहब भी पुद्गल परमाणुमें जीवत्वका होना स्वीकार नहीं करते हैं जैसा कि उक्त महोदयने अपनी पुस्तक दि रिडिल ओफ दि यूनीवर्सके १० वें खंडमें कहा है, तो फिर यह कहांसे आया, आप पत्थरोंसे रुधिर नहीं निकाल सकते और न चेतनता-स्मरण शक्ति इत्यादिको जड अर्थात् निर्जीव तत्त्वोमेंसे दुह सकते हैं बिलफाष्टके स्थानपर दिये हुए विख्यात व्याख्यानमें जो युक्ति प्रोफेसर टिन्डल महोदयने अपने कल्पित विपत्ती बिशप बटलरके मुंहमें रक्खी थी उसका खंडन आज तक नहीं हो पाया है और वह यह है:-

"अपने बेजान हाइड्रोजनके परमाणुओंको लो और अपने ओक्सीजनके परमाणुओको लो और अपने कारबनके परमाणुओको लो, नाइट्रोजनके परमाणुओको लो और अपने फासफोरसके परमाणुओंको और अपने शेष और परमाणुओंको लो जो छर्रोंकी भांति निर्जीव हैं जिनका भेजा बना हुआ है। उनको पृथक् और ज्ञानशून्य खयाल करो और उनको एक दुसरेके साथ दौडते हुये और सब प्रकारका पिंडरूप बनते हुए मनमें विचारो। एक निर्जीव क्रियाके तोरपर यह समझमे आसकता है। परन्तु क्या तुम देख सकते हो या किसी प्रकारसे बुद्धिमें यह बात ला सकते हो कि उन निर्जीव क्रियाओंमेंसे और उन जड़

असहमत-

परमाणुओंमेंसे इन्द्रिय दर्शन विचार व रागादि उत्पन्न हो सकते हैं ? क्या पासोको उछालकर तुम 'होमर' (यह एक वड़ा यूनानी कवि हुआ है) को उत्पन्न कर सकते हो या गोलियां लडाकर गणित विद्याके पेचीदा नियमोको.. (तुम मानुषिक समझका, जो इस बातका इच्छुक है परमाणुओं की क्रियाओ और चेतनामें तार्किक सम्बंध देखाया जाये, इस प्रकार कभी संतोष नहीं कर सके हो ।"

टिन्डलने स्वयं प्रकृतिके गुणोंमें जीवत्व और चेतनत्व सम्मिलित करनेसे इस दिक्कतसे बचना चाहा । उसने प्रतिपादन किया है:—

"अगर इस प्रकृतिको डेमोक्रिटस (एक यूनानी दार्शनिक) की दृष्टिसे देखें और ऐसा माने जैसा कि उसका वैज्ञानिक पुस्तकोंमें उल्लेख है तो चेतनाका उसमेंसे निकलना समझमें नहीं आ सकता है जो युक्ति कि शास्त्रार्थमें विशप बटलरके मुंहमें रक्खी गई है वह मेरी सम्मतिमें इस प्रकारकी प्राकृतिक विद्याका नाश करनेकेलिये पर्याप्त है परन्तु वह लोग जिन्होंने प्रकृतिका गुण इस प्रकार वर्णन किया है वह थोड़ी विद्याके ज्ञाता थे । वह जीवन-विद्या (बायोलोजी) के पूर्ण ज्ञाता न थे । वह जीवन-विद्यासे अनभिज्ञ थे ।......आश्चर्य ! हम इस पर अदबके साथ गौर करें—प्रकृतिसे रिक्त जीवन कहां है ? हमारा विश्वास कुछ

हो ! हमारा ज्ञान दोनोंको अलग, न होनेवाले तौरसे जुड़ा हुआ बताता है। हमारे हर समयका भोजन और पानीका गिलास जो हम पीते हैं, प्रकृतिका मन पर आन्तरिक रूपसे प्रभाव डालना द्योतन करते हैं।"

अभाग्यवश टिंडलको केवल तत्कालीन जीवसम्बन्धी त्रुटियोंका ही ज्ञान था। उसे यह नहीं ज्ञात था कि ऐसा जीव, जिसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया है प्रकृतिसे पृथक् और उसके प्रभावसे विलग नहीं हो सकता है और न उसे यह मालूम था कि मोक्षप्राप्त जीव निर्वाणमें प्रवेश करनेसे कि जिसका प्रचलित विज्ञानको गुमान तक नहीं है उस विज्ञानके नितान्त बाहर हो जाता है। अत एव टिंडल महोदयको या उसके पहले या बादमें उसके किसी दार्शनिक ज्ञाताको यह खयाल नहीं आया कि प्रकृति और मनका सम्बन्ध जीवकी सत्ताका किसी प्रकार खण्डन नहीं करता और जब वह उसको खण्डन ही नहीं करता तो उसकी सत्ताका विनाशक तो किसी अवस्थामें हो ही नहीं सकता है क्योंकि चेतनता और भेजेका सम्बन्ध केवल इस कारणसे ही नहीं हो सकता है कि भेजा उसको पैदा करे किंतु और कारणोंसे भी जैसा कि प्रोफेसर वेलियम जेम्सने जो मानसिक विद्याके विख्यात ज्ञाता हैं, बताया है। 'यह आवश्यक नहीं है कि चेतनता भेजेसे पैदा हुई हो किंतु यह भी सम्भव है कि चेतनताका

द्योतक भेजा हो।' प्रचलित विज्ञानने इन विविध मुमकिनातके ऊपर कभी दृष्टिपात नहीं किया अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वह झूठे साबित हुए हैं। इसलिये जब प्रचलित विज्ञान के बाज सराहनेवाले यह विश्वास करते हैं कि उसने जीवको केवल एक गुमान या वहम साबित कर दिया है तो वह उन खयाली परिणामों पर लालायित हो जाते हैं जो वास्तविक रूपमें कभी विवादास्पद नहीं हुए हैं। वास्तवमें वर्तमानके जिज्ञासुओंने कभी इस बातका प्रयत्न नहीं किया है कि जीव और प्रकृतिके गुणोंको ठीक २ रीतिसे ज्ञात करे और इसलिये एकको दूसरेसे पहिचाननेके योग्य नहीं हैं। चेतनताके विशेष गुणोंका विचार हर एक व्यक्तिको इस बातको स्वीकार करा देगा कि वह कोई भेजेसे पैदा होनेवाला पदार्थ नहीं है चाहे उसका भेजेसे कितना ही गहरा सम्बन्ध क्यों न पाया जाय क्योंकि हम अभी देखेंगे चेतनतामें:—

१–व्यक्तिपन

२–अन्तःकरणकी शक्ति (Psychic nature और

३–नित्यता

पाये जाते हैं। जब कि भेजा—

१–पिंड रूप

२–अचेतन यानी जड़ और

३–अनित्य है।

हैकल और उसके मित्र चेतनाको ऐसा समझते हैं कि गोया उसका प्रयोग मनुष्यकी और कुछ ऊंचे कक्षाके पशुओंकी विशेष बुद्धि पर ही हो और उसमें उस नीची कक्षाकी चेतनता को शामिल नहीं करते हैं जैसे दुःख;—जिस को सब प्राणी अनुभव करते हैं जैसा कि भारतके विख्यात वैज्ञानिक प्रोफेसर सर जगदीशचन्द्र बोसने हालमें पूरी सेहतके साथ साबित किया है। हेकल साहबकी रिडिल आफ् दि यूनीवर्समेसे निम्न लिखित पंक्तियां प्रकृतिवादियोंके सिद्धान्तको प्रत्यक्ष रीतिसे जाहर करती हैं:—

"जैसा कि हर एक व्यक्तिको ज्ञात है नये पैदा हुए बच्चेके चेतना नहीं होती है। प्रेयर साहबने इस बातको साबित कर दिया है कि बच्चेमें चेतनता उस समयके बाद प्रादुर्भूत होती है जब वह बोलने लगता है। बच्चा कुछ अवधि तक अपना नजकिरा प्रथम पुरुष (सर्व नाम) में करता है। उस विशेष समय पर जब कि बच्चा बोलनेमें पहलीवार अपने लिये 'मैं' शब्दका प्रयोग करता है अर्थात् जब उसको अपने अस्तित्वका ज्ञान प्रत्यक्ष हो जाता है उस समय अपनी सत्ताका ज्ञान और पर सत्ताका विरोध आरंभ होता है।"

इस लेखमें मैंने आवश्यक जुमलोंके नीचे लकीर खींच दी है। यह बयान नितान्त आश्चर्यजनक है विशेषतया जब

हम जानते हैं कि यह एक ऐसे व्यक्तिका कहा हुआ है जो बहुत ठीक २ और सेहतके साथ विचार करनेका अभ्यासी है। यदि नये पैदा हुये बच्चेके चेतना नहीं होती तो उस कष्टको जिसको वह पैदा होनेके समय चिल्लाकर जाहिर करता है कौन अनुभव करता है। यदि चेतनता वाक्‌शक्ति प्राप्त होनेके बाद जाहिर होती है तो बच्चेकी प्रीति और नफरतका जो वाक्‌शक्तिके पहले भी उसमें पाई जाती हैं क्या कारण है? और यह युक्ति कि बच्चा बहुत अवधि तक अपना कथन ज़मीर गायब (प्रथमपुरुष) में करता है? प्रतिज्ञाको नितान्त झूंठकी सीमातक पहुंचा देती है। क्या इसका यह भाव है कि बच्चा अपने दुख, सुखको भी जमीर गायबमें अनुभव करता है मानो किसी अन्य व्यक्तिकी दशाओंका द्रष्टा हो।

हमको उचित है कि हम ऐसी बनावटी सत्यताओं और अर्ध सत्यताओंसे धोखा न खायें। बुद्धि, विचार, और बोलना इन सबका निवास वही है जो दुख सुखके अनुभवका है। समझ और अनुभव एक ही पदार्थके दो विविध कार्य्य हैं जो हमको हमारी अवस्थाओंको ज्ञात कराता है दूसरे शब्दोंमें हमको अपने अस्तित्वके ज्ञान करानेवाली शक्तिके दर्शन और अनुभव (जज़्बे) भी वैसे ही चेतनताकी सूरतें हैं जैसे बुद्ध्यनुसार विचार और शब्दोंद्वारा प्रगट होने वाले खयाल जिनको हम ज्ञान कहते हैं। दो विविध प्रकारकी चेतनत

अथवा अनुभव-शक्ति संसारमें नहीं है। समझ एक है चाहे उसका द्योतन वेसोचे समझे हो अथवा बुद्धिपूर्वक। चेतनता हरएक प्राणीमें विद्यमान रहती है और कभी सर्वांशमें नाश या नेस्त नहीं होजाती है गो उसका अङ्कुर बाज समयो पर केवल स्पर्श शक्तिपर सीमित हो जाता है। स्वाभाविक चेतनता (Instinct) और बुद्धि (Intellect) के लिये खास २ अवस्थाओंकी आवश्यकता होती है। केवल एक कलके पुतले की भांतिके जीवनसे उन्नति करनेकेलिये एक ऐसे यत्रकी जरूरत पडती है जिससे जीवन अर्थात् इंद्रियक्रियाओंको रोका जावे। यहां आपका भेजा उपयुक्त होता है जो एक छींकेकी भांति ज्ञान और कार्य्येन्द्रियोंसे संबंधित नसोंके जालपर इसलिये फैला हुआ है कि जीवको बाहरी पदार्थोंका बोध करावे या आवश्यकतानुसार शारीरिक हरकत (क्रिया) पर काबू रक्खे।

परन्तु यह विचार करना कि चेतनता भेजेसे निकली है, गलती है क्योंकि बिदून भेजेके पशुओंमें भी जो कलके पुतलेकी भांतिकी क्रिया होती है वह चेतनताका अभाव साबित नहीं करती है इस कारणसे कि इन पशुओंको भी दुख सुखका अनुभव होता है। दुख सुखका अनुभव केवल प्राकृतिक कार-रवाई नहीं है उनका सम्बंध मनसे है यद्यपि भान करनेवाली बुद्धि उनमें न पाई जाय। मैं खयाल करता हूं कि यह कहना

असम्भव है कि ज्ञान-इन्द्रियोके तन्तुओके कर्म ही हर हालतमें स्वयं स्वाभाविक कार्योंके करानेको पर्याप्त हैं। ऐसा कहनेसे तो कुल कार्य्यालय केवल पौद्गलिक कार्योंपर सीमित हो जावेगा जहां चेतनताकी कोई आवश्यक्ता न रहेगी। इससे अधिक यह भी सिद्ध नहीं है कि ज्ञान-इन्द्रियोके तन्तुओं या नाड़ियोंके कर्तव्यमें और शरीरकी क्रियामें सदैव कोई मुनासिबत पाई जाती है सुई जैसे छोटे पदार्थका चुभना हाथी जैसे बड़े शरीरवाले जीवके अपने पैर हटालेनेका कारण होता है। और मच्छड़का काटना एक बड़े शरीरधारीके सोनेमें करवट बदल लेनेका। ऐसे स्थलपर जो वास्तविक बात है वह यह जान पड़ती है कि ज्ञान-इन्द्रियोका कर्म केवल ज्ञान करा देना है और उसके बादकी व्यक्तिक जवाबी तहरीक (Reaction) का कर्तव्य शरीरकी क्रियाका कारण होता है जो उस सूरतमें, जहां विचारशक्ति मौजूद नहीं है स्वाभाविक कार्य्यकी भांति होता है और जहां वह उपस्थित है वहां शारीरिक अंगोके इरादेसे हिलने जुलनेसे। अतः क्या ऐसा नही हो सकता है कि जीवके कलके पुतलेकी भांतिके कर्म एक सोये हुए पुरुषकी भांति हो न कि एक ऐसी प्रारंभिक दशा किसी ऐसे पदार्थकी हों जो मुद्दतो शनैः २ बढ कर अन्ततः बुद्धि-बन जावे। और क्या ऐसा भी नहीं हो सकता है कि मेजेका बनना एक ऐसे व्यक्तिकी आवश्यक्ताओकेलिये होता हो जिसने अपने मनको किसो कद्र काबूमें कर लिया है न कि

व्यक्तिको गढनेका एक कार्य्यालय हो। यह विचारनेकी बात है कि मनका उत्तम दर्जेका काम अर्थात् मुकाविला करना इमतियाज व तजवीज केवल ऐसे ही प्राणी कर सकते हैं जो अपनी कलके पुतलेकोसी प्रवृत्तिको रोक सकते हैं अर्थात् जो इंद्रियोके सदैव जारी रहनेवाले व्यवहारको रोककर विचारकेलिये समय निकाल सकते हैं। अतः भेजेकी आवश्यक्ता केवल उन्हीं प्राणियोंके लिये है जो कार्योंके कारण अर्थात् इच्छाओ पर कम या ज्यादा प्रभावित हो गये हो। जैसा साधारणतया ज्ञात है वहुतसे ऐसे बुद्धिमान स्त्री पुरुष संसारमे पाये जाते हैं जो वाज २ मौकों पर अपनी बुद्धिको काममें नहीं ला सकते हैं विशेषतया जब कोई वलिष्ठ प्रलोभन उनके सामने मौजूद हो। ऐसी सूरतमें वह वहुतसे ऐसे कर्मोको कर वैठते है जिनके लिये वह समय पाकर विचार करने पर शरमिंदा होते हैं। मुझे यह ज्ञात होता है कि इन मौकोपर बुद्धि और मनकी प्रवृत्तिमे विरोध हो जाता है और मनकी जीत थोडी देरकेलिये हो जाती है। यदि बुद्धिका कारण भेजेको माना जाय तो ज्ञानशक्तिका इस प्रकार नीचा देखना कठिनतासे विचारमें आता है जब कि भेजा वरावर मौजूद हो और वरावर अपना कर्तव्य करता रहे और व्यक्तिको बनाता रहे। इसके विरुद्ध सव हाल प्रत्यक्ष हो जाता है यदि यह स्वीकार करलिया जाय कि प्राणी अपने साथ वर्तमान जीवनसे पहलेकी शक्तियां और मन जिन्होने और कहीं निर्मिति

प्राप्त की है, लाता है और यह कि उसका यह शरीर उन शक्तियों और मनोवृत्तियोंके कारण बनता है। ऐसी सूरतमें भेजा ज्ञानका यंत्र ठहरता है जो एक ऐसे प्राणीके प्रयोगकेलिये निर्मित हुआ है जिसने अपनी इन्द्रियोको किसी हद्दतक वशमें करलिया है और उसका प्रयोग स्वयं 'उसकी दशाओं और प्राणीके मनोविकार (जजवों) पर निर्भर होगा। नये पैदा हुये बच्चेका अपनी सत्ताको अपने या दूसरेकेलिये समझने या कहनेमें असमर्थ रहना उन कठिनाइयोंके बाइस होगा जो एक नये और बेहद नाज़ुक औज़ारको प्रयोगमें लानेके समय पाई जाती हैं जब कि एक स्वस्थ अपकारीका अपनी दमागी शक्तिका प्रयोग न करना इस कारणसे होगा कि वह अपनी इन्द्रियोंको जीत नहीं सका है।

परन्तु हमको उचित है कि अब हम आत्माके गुणोको विशेष रीतिसे निश्चित करे। पहली बात जो चेतनताके लिये अन्वेषणीय है, वह यह है कि उसमें व्यक्तिपन है। यह ऐसा कहनेके बराबर है कि हर व्यक्ति अपनेको मिस्ल खुदके जानता है और अपनेको कोई और व्यक्ति नहीं समझता है, यद्यपि वह तारीफ जो उसके मनमें उसकी सत्ताकी है विविध समयों पर विविध कारणोंसे कितनी ही विरुद्ध क्यो न हो? इसीतरह पर कोई व्यक्ति अपनेको एकसे ज्यादा या गिरोहके समान नहीं जानता है। हमारी इच्छाओं और मानसिक वृत्तियोमें एक ओर बुद्धि और

दूर अंदेशीमें दूसरी ओर कितना ही विरोध क्यों न हो लेकिन कोई व्यक्ति कभी अपनेको आदमियोंके समूह या कम्पनीकी भांति नहीं जानता है कि जहां वहु पक्षका प्रश्न हो। अनुसंधानसे प्रतीत होता है कि हमारी जानकारीका ज्ञान जिसको हम चेतनता कहते हैं जीवकी एक आन्तरिक ज्ञाता दशा है जिसको जानकारीका अनुभव कहना युक्तियुक्त विशेषण होगा, यहां तक कि मेरा किसी पदार्थका ज्ञान उस पदार्थकी समीपता और सत्ताकी जानकारीका अनुभव (feeling) है। इस प्रकार मेरे पदार्थोंके ज्ञानमें मेरी अपनी और ज्ञेय पदार्थ दोनोंकी सत्ताका युगपत् ज्ञान शामिल है। जिस किन्हीने ज्ञान या आगाहीको एक प्रकार अनुभव समझ पाया है उसको यह बात साफ मालूम होगी क्योंकि प्राणी केवल अपनी ही सत्ता या उस सत्ताकी दशाओंको उन परिवर्तनोंके साथ जो उनमें दूसरोंकी समीपतासे अथवा मौजूदगीसे उत्पन्न होती हैं, ज्ञात कर सकता है। यह कहना निरर्थक होगा कि मैं दूसरेकी सत्ताको तो ज्ञात कर सकता हूं किन्तु अपनीको नहीं। वास्तवमें दूसरेकी सत्ताका ज्ञान स्वयम् अपने परिवर्तनोंके ज्ञान पर निर्भर है अतः यह कहना कि किसी वस्तुका ज्ञाता केवल उसी वस्तुको जानता है, अपनेको नहीं, गलत है। सत्य यह है कि मेरा किसी दूसरे पदार्थकी सत्ताका ज्ञान खुद मुझे मेरे अस्तित्वको ज्ञात करानेवाली शक्ति पर निर्भर है (यानी उस शक्ति पर जो मुझे मेरी निजी दशाओंका

अनुभव कराती है)। यह स्पष्ट है कि केवल उसी वस्तुका ज्ञान आत्माको हो सकता है जिसकी कोई वास्तविक सत्ता है और इस वजहसे कि चेतनाकी दशाओं और परिवर्तनोकी अर्थात् दूसरे शब्दोमें आत्मद्रव्यकी दशाओ और परिवर्तनोकी कोई सत्ता आत्मद्रव्यसे पृथक् नहीं है (अतएव) आत्माकी सत्ताके साथ ही उसके परिवर्तनोका ज्ञान भी सम्भव है । यही बात दुख सुखके ज्ञानमें भी पाई जाती है जिनसे हम विज्ञ हैं। जब मैं कहता हूं कि मुझे दुख हो रहा है या मैं सुखी हूं तो मेरा भाव यह नहीं होता है कि दुख और सुख मेरी सत्तासे पृथक् स्थूल पदार्थ हैं जिनको मैंने किसी अनोखे तरीक़ेसे ग्रहण किया हो । जो मेरा भाव है वह यह है कि मैं अपनी ही सत्ताकी एक हालत या तबदीलीको ज्ञात करता हूं जो एक सूरतमें दुःख और दूसरी सूरतमें सुखका रूप रखती है। इसलिये दुख सुख मेरी चेतनाकी अर्थात् उस साधारण अनुभवकी जो मुझे अपनी सत्ताका है दशायें हैं। नया पैदा हुआ बच्चा जो पैदा होते समय चिल्लाता है निःसन्देह प्रसव होनेके कष्टको अपनी चेतनताकी अवस्थाके तौर पर ज्ञात करता है यद्यपि उससमय वह अपने बुद्धिरूपी दर्पणके साफ़ न होनेसे अपनी छोटीसी सत्ताका साफ़ चित्र अपने ख़्यालमें क़ायम नहीं कर सकता है । वर्तमान समयके विद्वान लोग इसके विरुद्ध चाहे जो कुछ भी कहें परन्तु वास्तव्य यह है कि दुख या सुखका अनुभव सिवाय उत्तम पुरुष (सर्व

नाम)के और किसी तौरसे नहीं हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति दुख सुखका ज्ञान प्रथम पुरुष (Third person) में कर सके तो वह अतिशय अलौकिक घटना होगी क्योंकि जिस वस्तुको मनुष्य अपनेसे पृथक् दूसरेमें देखता है वह दृश्य हो सकता है कभी दुःख सुख या अनुभव नहीं। प्रेयर साहबके बच्चेने भी यदि प्रेयर साहबने उसको कभी वाक् शक्तिके प्राप्त होनेके प्रथम मूककी दशामे देखा होगा तो मूकको उत्तम पुरुष first person में ही अनुभव किया होगा और इसीप्रकार उसने उससमय उस संतोषका अनुभव किया होगा जो भोजनसे प्राप्त होता है। इसलिये हम नतीजा निकालते हैं कि चेतनाका प्रथम चिन्ह व्यक्तिपन है जो नीचेसे नीचे दर्जेमें भी कभी उससे पृथक् नहीं हो सकता अर्थात् वहां भी नहीं जहां चेतना केवल स्पर्श शक्ति रूप रह गयी हो। निःसंदेह इस नीचे दर्जेकी चेतनाका एक प्राकृतिक परमाणुके सम्बन्धमें खयाल करना सम्भव है किन्तु विज्ञानवेत्ता ही स्वयं बहुपक्षसे इसके विपरीत हैं और यह नितांत गलत साबित होता है जैसा कि पहले जाहर हो चुका है और जैसा आगे चल कर भी दिखाया जायेगा। परन्तु चेतना यदि प्राकृतिक परमाणुकी खासियत नहीं है तो वह भेजेसे भी उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि व्यक्तिपनका मानुषिक या पाशविक भेजेमेंसे जो खुद अखण्ड नहीं है और इसलिये व्यक्तिपन नहीं रखता है, पैदा होना समझमें नहीं आता है क्योंकि

भेजा प्रकृतिके परमाणुओंसे बना है और एक कम्पनीकी भांतिके व्यक्तिपनके सिवाय और किसी व्यक्तिपनका धारण करनेवाला नहीं हो सकता है अर्थात् उसमें व्यक्तिपन अगर हो सकता है तो केवल मनुष्योंके एक समूहकी भांति जो किसी बातके फैसलेके लिये एकत्र किये जायें, हो सकता है। यह मैं स्वीकार करता हूं कि हमारे खयालात हमारी सत्ताकी निसबत विविध कारणों जैसे बीमारी मस्मेरेज़म इत्यादिसे बदल सकते है। परन्तु यह कहना वह ही बात नहीं है कि हमारी चेतनता म्यूनीसिपल कमिश्नरोंकी जमायतकी* भांति है जो किसी मीटिंगमें एकत्र हों।

---

* आत्माके व्यक्तिपनके गुणपर इस बातका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है कि बाज २ जीवित शरीरोंमें एकसे ज्यादा प्राणी पाये जाते हैं। जैसा कि जैनमत बताता है कुदरत (संसार) में दो प्रकारके शरीर होते हैं एक वह जिनमें एक ही आत्मा पाई जावै और दूसरे वह, जो जत्थेकी भांति हों। इनमेंसे अनन्तके साधारणतः पेट या शरीरका कोई अन्य अंग एक होता है परंतु और सब बातोंमें वह एक दूसरेसे नितांत पृथक् होते हैं। इस पर भी वह आपसमें मिल कर वास्तवमें एक व्यक्तिरूप जीव किसीतरह पर नहीं बनाते हैं और न उनमेंसे एक या ज्यादाका नाश होना सबका नाश होना है। वह हंगरी देशकी रहनेवाली जोड़िया लड़कियोंकी भांति होते हैं। जिनमेंसे एक प्रथम विदून किसी प्रकारकी हानि अपनी दूसरी बहनकी

अगर भेजे जैसी संयुक्त वस्तु किसी समयमें व्यक्तित्वको उत्पन्न कर सकी है तो वह केवल एक प्राकृतिक परमाणुका व्यक्तित्व हो सकता है क्योंकि भेजेके सम्बंधमें और किसी वस्तुमें व्यक्तिपन नही पाया जाता है। परन्तु हम परमाणुमें पहले ही आत्माकी सत्ताका अभाव देख चुके हैं। म्यूनीसिपल कमिश्नरोंकीसी जमायतकी चेतनताके खयालका पुनः खंडन तर्ककी आवश्यक्ताओंके लिहाजसे भी होता है क्योंकि तार्किक परिणाम उसी समय संभव हो सका है कि जब परिणाम निकालनेवाली चेतनता वह ही हो जो तर्कके दोनों पक्षोंसे जिनसे परिणाम निकाला जाता है विज्ञ हो। इसके विरुद्ध कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि अगर इस म्यूनिसिपल कमिश्नरोंके समूहमेंसे एक व्यक्ति तर्कके एक पक्षसे वाकिफ है और दूसरा दूसरे पक्षसे, तो न वह दोनों और न कोई तीसरा व्यक्ति उन पक्षोंसे कोई परिणाम निकाल सकेंगे इसीप्रकार यदि भेजेका एक हिस्सा केवल एक तार्किक पक्षसे विज्ञ है और दूसरा हिस्सा दूसरे पक्षसे, तो इन पक्षोंसे किसी परिणामका निकाला जाना असम्भव होगा। परन्तु आत्मा तार्किक परिणामके निकालनेमें योग्यता रखता है इसलिये यह साबित है कि वह

मृत्तकी पंहुचा हुए मरगई। यद्यपि यह आवश्यक है कि उसकी जीवित बहिनने अपने एक ऐसे निकट सम्बंधीकी मृत्युसे जोकि उसके साथ कमरसे जुडी हुई थी बहुत कुछ आत्मिक और शारीरिक दुख पाया होगा।

भेजेसे पृथक् किसी दूसरे प्रकारकी वस्तु है अर्थात् वह कोई संयुक्त वस्तु नहीं है किन्तु व्यक्तित्वका आधार एक असंयुक्त और अखंड पदार्थ है। स्मरणके लिहाजसे भी हम देख सकते हैं कि वह एक भेजे जैसे परिवर्तन और नाश होनेवाले पदार्थकी भांति नहीं हो सकता है क्योंकि जो भेजा कि आज किसी वस्तु को मालूम करता है वह किसी प्रकारसे वह भेजा नहीं होगा जो ५० वर्षके वाद उसको याद करेगा। इसलिये यदि भेजा ही स्मरण करनेवाली शक्ति है तो स्मरण अवश्य आश्चर्य्यजनक ठहरैगा क्योंकि उस सूरतमें हमारा आजके ज्ञात किये हुए घटना: को याद करना ऐसा होगा जैसा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके अनुभवको जो ५०-वर्ष हुए जीवित था, याद करे अर्थात् दूसरे शब्दोंमें अपने तईं दूसरेके तौर पर याद करना होगा जो एक झूठी वात है जैसा कि एक वडे रोमन केथोलिक पादरी मेहरने अपनी पुस्तक साइकोलोजी नामकमें देखाया है। इसलिये यह जाहर है कि स्मरण किसी एसे पदार्थका कर्तव्य नहीं है जो एक वहती नदीकी भांति हर घडी नया वनता हो, जैसा कि चेतनाको यदि उसको भेजेका उपज माना जाय तो स्वीकार करना पडैगा। यदि जीवन भरकी वातें किसी व्यक्तिको याद रह सकती है तो यह मानना आवश्यक होगा कि उसमे स्मरण शक्ति वरावर वनी रहती है। जो व्यक्ति पहलीवार किसी खास समय पर अस्तित्वमें आता है और जो उस समयके वाद

तत्काल ही नष्ट हो जाता है वह किसी तरकीबसे उन वातोंको जो उसके पूर्वजोने जानी थीं, नहीं जान सकता है और न उनके अनुभवोका अनुभव कर सकता है। इस वातकेलिये व्यक्तिपनकी एक ऐसी मूलकी आवश्यक्ता है जो जीवनपर्य्यन्त कायम रहती है और चेतनतासम्बंधी वातोंका अर्थात् कषायों स्मरण और सङ्कल्पका कर्तव्य (काम) प्राकृतिक भेजेसे हर समय पैदा होनेवाली समझके आधार पर असम्भव है चाहे उसको कितनी ही भाषाकी कितनीही उत्तमता और कितने ही वडे पुरुषके वाक्योके आधार पर कहा जावे।

दुसरा गुण चेतनाका उसका ज्ञातापन है जिसको प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थोंसे भिन्न जानना चाहिए। चेतनामें एक प्रकारकी भीतरी गुंजायश है जो असीम ज्ञान, उत्साह, नेकी इरादा इत्यादि इत्यादिका निवासस्थान हो सकती है परन्तु प्राकृतिक परमाणुमे कोई आन्तरिक जगह नहीं है कि जिसमें कोई वस्तु समा सके। प्रकृतिके सम्बंधमें संसारके सिलसिलेमें शनैः २ कुशलता हासिल करनेके सिद्धान्त (Evolution=विकाशवाद) का भाव शरीरोका परमाणुके सदैव संयोग और मेल द्वारा उत्तमता प्राप्त करना है। मनके सम्बंधमें उसका भाव चेतनाका आन्तरिक प्रकाश और उदार विचारोंकी दौलत से भरपूर होना है। चेतनता स्वयं एक सृष्टि है जो अनन्त विचारों और मालूमात इत्यादिसे आवाद की जा सकती है परन्तु

प्रकृतिके परमाणुओंके अंदर कोई आंगन नहीं है जिसमें एक खयालको भी स्थान दिया जा सके । समझकी पवित्रता किसी मनमानी प्रारम्भिक स्पर्शकी शक्तिको दोगुना चौगुना करनेसे नही हासिल होती है किन्तु मनके मन्दभाव अंधकार और धुंधलापनके हटानेसे । यह दशा विशेषतः अवधिज्ञान (साधुओं की रोशन जमीरी) की है जो कठिन तप उपवास और मनको मारनेसे प्राप्त होती है । साफ़ तौरसे यहां पर मामला एक दवा हुआ (पृथ्वीमें दवे हुवे) पोम्पीआई (यह एक शहरका नाम है जो एक ज्वालामुखी पहाडसे निकली हुई आलायशसे विलकुल दव गया था) की लाव (आलायश) को काटकर निकालनेका है, न कि किसी प्रकारकी मानसिक गणनाके इन्द्रजालकी सहायतासे केवल एक ही ईटमेंसे एक नये शहरके निर्माण करने और वसानेका । वास्तव्य यह है कि हर आत्मा या प्राणीमें सर्वज्ञताका गुण मौजूद है जिसको वह निज अपवित्रताके मैलको दूर करनेसे प्राप्त कर सकता है। यह वयान सामान्यतः आश्चर्य्यजनक प्रतीत होता है परन्तु विचार करनेसे उसपर हर एक पुरुष सरलतासे सहमत हो जावेगा । इसका कारण यह है कि ज्ञान कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो ज्ञातासे पृथक् हो क्योंकि ज्ञाताकी सत्ताकी ही अवस्थाओंका नाम ज्ञान है जिसको अंग्रेजीमें "States of Consciousness" अर्थात् चेतनाकी पर्याय कहते हैं । हमारे वाहर पदार्थ हैं ज्ञान

नहीं है। और उनके अस्तित्वकी निसबत हमारा आन्तरिक अनुभव उनका ज्ञान कहलाता है। उन वस्तुओंकी बावत जैसे समय, आकाश अनन्तपन कार्य्य कारणका नियम इत्यादि, कैंट (Kant) महोदयने साबित किया है कि उनका ज्ञान प्रारम्भसे ही नैसर्गिक रीतिसे होता है अर्थात् प्रत्यक्ष (दर्शन) पर उनका ज्ञान निर्भर नहीं है और जहां तक मुझे ज्ञात है एक भी प्राकृतिक वैज्ञानिक ऐसा नहीं है जो इस बडे जर्मन फिलासोफरसे इस बातमें विरुद्ध सम्मति रखता हो। यदि हमारी चेतनता एक बहुत ही निकृष्ट कक्षाकी प्रारम्भिक ज्ञान शक्तिसे शनैः २ कुशल होकर समझके दर्जेतक पहुंची है तो यह नैसर्गिक ज्ञान उस प्रारम्भिक अवस्थामें होना आवश्यक होगा। परन्तु इस नैसर्गिक ज्ञानको उस प्रारम्भिक अवस्थामें जो प्रकृतिके एक परमाणुमें मानी जाय क्योंकर क़ुयास करें? उस प्रारम्भिक दशामें उसका उपयोग (कर्तव्य) क्यो नहीं होता? क्या उन आकाशादिके ज्ञानकी भी कोई प्रारम्भिक अवस्था होती है? परन्तु कैंट महोदय इस सिद्धान्तको नहीं स्वीकार करते हैं क्योंकि यह नैसर्गिक खयालात इन्द्रिय-ज्ञानसे नहीं उपजते हैं। कार्य्य कारणका नियम निस्संदेह इस प्रकारका खयाल नहीं है कि जो शनैः २ किसी छोटी प्रारम्भिक अवस्थासे बढकर एक प्राकृतिक नियमके दर्जेपर पहुंचा हो और न अनन्तपनका खयाल किसी तारपर भेजेकी वृद्धिके साथ बढता हुआ समझमें आता है। मानुषिक बुद्धि इस

क़ुदरती खयालातकी कोई प्रारम्भिक अवस्था कि जिससे वह चढते २ पूर्णताको पहुंचते हो, विचार नहीं सकती है। यह क़ुदरती खयालात मनमें ही मौजूद हैं जहांसे कि वह समझकी शुद्धताके साथ जाहर होते हैं। चेतनतासे यह अलग न होने-वाले खयालात, उस समय जब कि समझका प्रकाश सबसे नीचे दर्जेकी ज्ञान-शक्तिकी पर्यायमें था, अवश्य चेतनताको ही गोदमें अचेत पडे सोते होंगे। इस तौरपर कुल खयालात अर्थात् कुल ज्ञान आत्माकी सत्तामें मौजूद है।

हमने ऊपर कहा है कि हर आत्मामें सर्वज्ञताकी योग्यता है। यह बात सरलतासे साबित हो सकती है। किञ्च आत्मा एक असत्तात्मक पदार्थ नहीं है किन्तु एक द्रव्य है इसलिये जीवोंके स्वाभाविक गुण, चाहे जहां कहीं भी वह हों, एकसां होंगे- इसका भाव यह है कि सब जीव अपने स्वाभाविक गुणोंके लिहाजसे एकसे हैं चाहे वह गुणोंके जाहर होनेके निमित्त एक दूसरेसे कितने ही विरुद्ध क्यों न हो? जैसे शुद्ध सुवर्णके गुण सदैव एकसां होते हैं चाहे हम भारतमें या चीनमें या इंगलैंडमें उसको देखें। इसी प्रकार खालिस द्रव्यके गुण भी एकसां हैं और जैसे सोनेकी पर्यायों (प्रकारो) का अन्तर खोटके विविध परिमाणोंके मिलापसे होता है इसी प्रकार जीवोंके अन्तर भी किसी विविध पदार्थके विविध तरीकोंके मिलनेसे पैदा होते हैं। इससे परिणाम यह निकलता है कि जो बात एक

आत्मा जान सकता है वह सब जीव जान सकते हैं। और यह एक सच्चा 'व्यावहारिक (अमली) नियम है जो विद्यासम्बंधी कार्यालयों की जड है। क्योंकि यदि विविध जीवोंकेलिये विविध सीमाएं विद्याकी कायम होतीं तो पाठशालाओ और महाविद्यालयोंका हर एक देश व शहरमें स्थापन करना निरर्थक होता। किंच जो बात एक व्यक्ति को ज्ञात होती है वह हर एक व्यक्तिको ज्ञात हो सकती है। इससे यह परिणाम निकलता है कि हर व्यक्तिमें उन सब बातोंको, जिनको भूत कालमें किसी व्यक्तिने जाना हो और उन सब बातोंको जिनको कोई और व्यक्ति वर्तमान कालमें जानता है और उन सब बातोंको, भी, जिनको भविष्यतमें कभी कोई व्यक्ति जानेगा, जाननेकी कुदरती योग्यता है। दूसरे शब्दोंमें हर जीव कुदरती तौरसे सर्वज्ञ होनेकी योग्यता रखता है। यद्यपि वह वास्तविक ज्ञान जो उसको किसी खास समयमें प्राप्त हो बवजह किसी ज्ञान और उसम समझके रोकनेवाले कारणके जो प्रकृति (पुद्गल) या खोटकी सूरतमें उसके साथ मिला हुआ हो इतना कम हो जिसका उल्लेख करते हुए भी हम लज्जित हो।

सर्वज्ञताके गुणके विषयमें यह ध्यान रखना चाहिये कि इस शब्दका भाव पूरा २ ज्ञान है। कुछ लेखकोंका खयाल है कि ज्ञान एक ऐसे पदार्थके अस्तित्वके कारण जिसको वह कुछ भयभीत आवाजमें अनजान ('The Unknown) कहते हैं

सीमावद्ध पाया जाता है। परन्तु यह झूठ बात है। वास्तवमें संसारमें अनजान कोई वस्तु नहीं हो सक्ती है। क्योंकि हम इस बातके प्रश्न करनेके अधिकारी हैं कि अनजानका जिक्र करनेमें क्या आप एक ऐसी वस्तुका उल्लेख करते हैं कि जिसे आप जानते हैं या नहीं। अब यदि आप उसका उत्तर यह देते हैं कि मैं जानता हूं कि एक ऐसी अनजान वस्तु संसारमें मौजूद है जिसको कभी कोई पुरुष नहीं जान पायेगा तो मेरे मित्र आप का यह मानना कि आप जानते हैं कि ऐसी वस्तु मौजूद है स्वयम् आपके पक्षको खंडन करता है यदि आप यह कहते हैं कि मैं नहीं जानता हूं कि कोई ऐसी वस्तु संसारमें है, तो आपको मेरे परामर्श पर कर्तव्यपरायण होना चाहिये और उसका ध्यान छोड़ देना चाहिये। क्योंकि उस सूरतमें आप बच्चोंकी भांति उन पदार्थोंका उल्लेख करते हुये पाये जाते है कि जिनसे किञ्चित मात्र भी आपको जानकारी नहीं है और न जिनकी सत्ताके स्वीकारार्थ आपके पास कोई युक्ति है।

अब आप केवल इस युक्तिकी शरण ले सकते हैं कि हमारा "अनजान" बहुतसे गुणोंका समुदाय है, जिनमेंसे कुछको कोई व्यक्ति कभी भी नहीं जान पावेगा। परन्तु यह आप अपनी प्रथम त्रुटिमें पड़ते हैं। क्या आपके पास उन गुणोंकी सत्ताको कि जिनको कोई कभी नहीं जान पायेगा, माननेके लिये कोई कारण है या केवल शास्त्रार्थकेलिये तर्क कर रहे है। पहली

सूरतमें तो आप उन गुणोंको जानते ही हैं क्योंकि आपके पास उनकी सत्ताका आनुमानिक सबूत मौजूद है परंतु दूसरी सूरतमें आपका वाद निरर्थक है। पदार्थोंका ज्ञान प्रत्यक्षसे अतिरिक्त तार्किक युक्तिसे भी होता है। जैसे आकाश और ईथर (Ether) का। और यह ज्ञान (जो बुद्धिपूर्वक है) ठीक ज्ञान होता है। इसलिये जिस अनजानको कोई न प्रत्यक्ष द्वारा और न बुद्धिसे कभी जान पावेगा उसकी सत्ता कभी कोई साबित नहीं कर पावेगा। और जिसकी सत्ता कभी कोई साबित नहीं कर सकेगा वह सत्तावान् नहीं हो सकता। यह युक्ति कि पदार्थोंका पूरा ज्ञान प्राप्त होनेके पहले ही सब जाननेवाले नष्ट हो जायें तो उनका ज्ञान कभी प्राप्त न होगा, निरर्थक है। क्योंकि इससे वह न जाननेके योग्य नहीं बन सक्ते हैं। यह विचारणीय बात है कि अनजान शब्द (The Unknowable जाननेके अयोग्य) अज्ञातका पर्यायवाची नहीं है। परंच उसमें एक विशेष गुण पाया जाता है जिसका भाव यह है कि उस वस्तुको जिस पर उसका प्रयोग हो कभी कोई पुरुष जान नहीं सकेगा, यद्यपि योग्य बुद्धिमान मौजूद हों और सत्यके अन्वेषण और विज्ञानकी खोजमें अनुरक्त हों। इसलिये यदि रेडियम बेतारके तार ग्रेमोफोन और इसी प्रकारकी अन्य १९ वीं शताब्दीके आविष्कार १८ वीं शताब्दीके अन्तमें कुल जाननेवालोंके नाश हो जानेके कारण अज्ञात रह जाते तो वह दशा केवल जाननेयोग्य पदार्थोंके छिदून जाने हुए

रह जानेकी होती; न कि किसी ऐसी वस्तुकी जिसको कभी कोई जान ही नहीं सकता। असलियत यह है कि विना किसी वलिष्ठ हेतुके, किसी वस्तुकी सत्ता स्वीकार नहीं की जा सकती है और इसलिये जिस पदार्थको कभी कोई जान ही नहीं पावेगा उसकी सत्ता कभी सिद्ध न होगी। इसलिये आपका 'अनजान' (जाननेके अयोग्य) चाहै उसको छोटे अक्षरोंमें लिखिये या वडोंमें, एक भद्दी फिलासोफीका हववा है जिसने कच्ची बुद्धिवाले नौसीखियों को भयभीत वना रक्खा है। प्राकृतिक संसारमें भी यह ज़ाहर है कि पदार्थोंका प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है और वह इस प्रभावसे जाने जाते हैं कि उससमय भी जव वह इन्द्रियो द्वारा नहीं जाने जा सकते जैसे ईथर (Ether) जो दृष्टिगत नहीं होता है परन्तु अपने गुणोंके कारण जाना जाता है। इसलिये यह कहना कि कोई वस्तु ऐसी है जो कभी नहीं जानी जायेगी ऐसा कहनेके वरावर है कि वह उस अनन्त समयमें जो भूत भविष्यत् वर्तमानका भावार्थक है कभी किसी दूसरे पदार्थसे किसी प्रकारका सम्वंध पैदा नहीं करती। परन्तु यह केवल उन्हीं पदार्थोंके लिये सम्भव है जो संसार अर्थात् सत्ताकी सीमाके वाहर है। इस हेतु जिस पदार्थका कभी किसी दूसरे पदार्थसे सम्वंध नहीं हुआ और न हो सकता है वह अवश्य असत्तात्मक है।

इस प्रकार हम अपने पुराने परिणाम पर वापस आते हैं जिसके अनुसार सव पदार्थ जाने जा सक्ते हैं और जो जीवकी

ज्ञान शक्तिको अपरिमित साबित करता है। अतः हर एक जीवात्मा स्वभावतः सर्वज्ञ है।

यदि यहां तक आपने मेरे व्याख्यानको समझ लिया है तो आप इस बातको भली प्रकार जान जायेंगे कि प्रकृतिवादियोंका विचार जो एक प्रकृतिके परमाणुमें कल्पित चेतनाके प्रारम्भिक अंशसे मानुषिक चेतनताको गढ़ना चाहते हैं कितना झूठ है। हम जानते हैं कि बुद्धिकी तीव्रता, मनके धुंधलापन मैल और सुस्तीके हटानेसे होती है और यह धुंधलापन इत्यादि एकसे अधिक पदार्थोंके मिलनेसे उत्पन्न होनेवाले संयुक्त पदार्थोंमें ही सम्भव हो सकते हैं कि जहां एक वस्तु दूसरी वस्तुके गुणोंको गन्दा और खराब कर देती है। परन्तु प्राकृतिक परमाणुमें मानी हुई चेतनाके साथ कोई धुंधला करनेवाला कारण लगा नहीं हो सकता है क्योंकि परमाणु एक असंयुक्त अखण्ड पदार्थ है। इसलिये यदि चेतनाको परमाणुका गुण माना जाय तो परमाणुमें रहनेवाली आत्माको तीव्र बुद्धिवाला होना चाहिये यह युक्ति प्राकृतिक परमाणुओंकी चेतनाको नितांत झूठा साबित करती है। भेजेकी चेतनताका खयाल भी जीवकी समझ और ज्ञानकी शक्ति पर लिहाज करते हुये इससे अच्छा नहीं ठहरता यदि कोई पुरुष इस बात पर ज़रा रुक कर विचार करेगा कि ज्ञान अर्थात् प्रत्यक्ष (दर्शन) अन्वेषण वर्गीकरण (किस्म बंदी) मुकाबला (तुलना) अनुमान, अर्थ, विचार इत्यादि इत्यादि और

असहमत-

स्मृतिका भाव क्या है तो मैं आशा करता हूं कि वह प्रोफेसर वाउन (Bowne) की निम्नलिखित युक्तियुक्त सम्मति पर सहमत होनेसे इनकार न करेगा (Bowne's Metaphysics पृष्ठ ४०७-४१०)—

'मनको एक मोमकी तख्तीकी भांति मान लेनेसे, और पदार्थोंको उस पर अङ्कित होते हुये खयाल करनेसे सामान्यतः प्रतीत होता है कि हमको बड़ी जानकारी प्राप्त होती है। किन्तु उसी समय तक जब तक कि हम यह प्रश्न नहीं करते हैं कि यह तख्ती कहां है और उस पर पदार्थ क्यों कर अङ्कित होते हैं और यदि ऐसा हो भी तो उनका ज्ञान क्यों कर प्राप्त होता है? अनुभव और इन्द्रिय ज्ञानके तात्कालिक पूर्वज भेजेकी नाडियोंके परिवर्तन हैं। वाह्य जगत्का जो कुछ हाल हमें ज्ञात है वह सब इन नाड़ियोंकी तवदीलियोंसे है परन्तु यह तवदीलियां, उन पदार्थोंसे जो इनका कारण माने गये हैं नितान्त दूसरे ही भांतिकी हैं। यदि हम मनको प्रकाशमें और वाह्य पदार्थों पर बैठे हुये सोचें तो खयालको कुछ संतोष सकेगा। परन्तु जब हम जानते हैं कि मन खोपडीकी अंधेरी कोठरीमें ही वाह्य जगत्से साक्षात् करता है और तिस पर भी पदार्थोंके पास नहीं आता किन्तु कुछ नाडियोंकी तवदीलियोंके समीप आता है जिनकी सत्तासे विशेषतः वह नितान्त अनभिज्ञ है।

तो यह विदित है कि वाह्य पदार्थ बहुत दूर हैं । चित्रों और मानसिक अङ्कों इत्यादिका कथन यहां सब निरर्थक हो जाता है। क्योंकि जिन पदार्थोंमें चित्रोंका प्रश्न उठा करता है उनकी सत्ता ही यहां असम्भव है। यह भी साफ नहीं है कि हम अंधकारमेंसे किसी भांति प्रकाश और सत्य संसारमें पुनः प्रवेश कर सकेंगे । हम प्राकृतिक विज्ञान और इन्द्रियों पर पूरा २ भरोसा रख कर अन्वेषणमें संलग्न होते हैं और तत्काल वाह्य पदार्थसे एक नसोंके चक्करमें पड़ जाते हैं कि जहां पर बाहरी पदार्थके स्थान पर नाड़ियोंके परिवर्तन रह जाते हैं जो अपनी सत्ताके अतिरिक्त और किसी पदार्थके सदृश नहीं हैं। अन्ततः हम अपने तई खोपडीकी अंधेरी कोठरीमें पाते हैं। अब वाह्य पदार्थ नितान्त अदृष्ट हो गया और ज्ञान अभी प्राप्त नहीं हुआ है। कट्टरसे कट्टर प्रकृतिवादियोंके खयालसे भी वाह्य पदार्थोंकी जानकारीका यन्त्र केवल नाडियोंका परिवर्तन है । परन्तु इन परिवर्तनोंको बाहरी संसारके ज्ञान रूपमें बदल देनेकेलिये यह आवश्यक है कि हम एक अनुवादक नियत करें जो इन परिवर्तनोंके भावको समझ सके । परन्तु वह अनुवादक भी स्वयम् ऐसा हो जो संसारका भाव अपनेमें रखता हो । और यह परिवर्तन अथवा चिन्ह वास्तवमें एक प्रकारकी क्रिया है जो जीवके आन्तरिक ज्ञानका प्रकाश कराती है। चूंकि सर्व-

सम्मतिसे जीवात्मा वाह्य जगत्से केवल इन्हीं चिन्हों (नाडियोंके परिवर्तनके) द्वारा सम्बंध पैदा करता है और किसी पदार्थसे इन चिन्होंकी निसवत अत्यन्त निकट नहीं आता है अतः यह परिणाम निकलता है कि अनुवादके नियम भी सव मनमें मौजूद हैं और यह कि पैदा होनेवाला ज्ञान प्रारम्भमें मनके गुणोंको ही दर्शाता है । क्रियासे पैदा होनेवाले सव कर्म्म इसी प्रकारके होते हैं और ज्ञान भी इसी कोटिमें आता है।"

ऊपर वाले लेखमें खास २ जुमलो पर जोर देनेके निमित्त मैंने उनके नीचे लकीरें खींच दी हैं। अव हम देख सक्ते हैं कि सव ज्ञान मनमें भरा हुआ है और विद्याका भाव केवल उसको वाहर निकालना है। अव थोडी देरके लिये हमको पुनः उस खयालकी ओर आकर्षित होना चाहिए जिसके अनूकूल भेजा चेतनताका उत्पत्तिकर्त्ता है । आप जानते हैं कि भेजा सदैव स्थिर रहनेवाली वस्तु नहीं है । जिस पौद्गलिक सामिग्रीका वह वना हुआ है वह हर समय परिवर्तित होती रहती है। आप इस वातको भी जानते हैं और यह वादकी सीमासे वाहर है कि यह परिवर्तनशील और नाशवान भेजा केवल ऐसे पदार्थोंकी उत्पत्ति कर सकता है जो एक क्षण भर ही सत्तावान रहें और उतनी ही शीघ्र नष्ट हो जावें जितनी शीघ्र कि वह उत्पन्न होते हैं।

ऐसे भेजेसे पैदा होनेवाली चेतनता एक नदी या वहावकी

भांति होगी, जिसमें कोई जलविंदुओंका समूह किसी स्थान पर एकक्षणसे ज्यादा नहीं ठहर सकता। या आप उसका उदाहरण रोशनीकी किरणोंसे दें जो स्वयम् स्थिर रहनेवाली नहीं हैं। अब आप जानते हैं कि कितनी शिक्षा और कितने वर्षोंके परिश्रम से एक कैंट या शोपेन होअर या ल्वायड जार्जका मन बनता है और अभी आपने प्रोफेसर वाउनकी पुस्तकसे ज्ञात किया है कि ज्ञान और नाडियोंके परिवर्तनोके अनुवादका क्या भाव है। अब मैं आपसे जो इन सब बातोंके ज्ञाता हैं यह पूछता हूं कि क्या आप कोई ऐसा तरीका जानते हैं या किसी प्रकारसे खयाल कर सकते हैं कि जिससे चेतनताको एक भागती हुई किरणके मनका आन्तरिक कोष कुलका कुल ज्योंका त्यों एक इसीप्रकार दुसरी किरण पर जो उसके पीछे लगी हुई चली आ रही है और जिसको पीछेसे एक और उसी प्रकारकी किरण ढकेल रही है तत्काल मुन्तकिल हो सकता है। केवल यही नहीं किंतु क्या आप इस बातका भी विचार कर सकते हैं कि पेचीदा बुद्धिसम्बंधी कारवाई क्यो कर घंटों तक विदून किसी रुकावट के टूटते हुवे तारोंकी भांति इन शीघ्र नाशवान् और स्वयम् शिक्षा पानेवाले आश्चर्य्यवान भेजेके बालकोंकी सहायतासे और किसी स्थिर रहनेवाली बुद्धिकी अनुपस्थितिमें जारी रह सकती है मुझको तो यह सबकी सब घढन्त और करामात प्रतीत होती है और इस कारण मैं इसको असिद्ध मानता हूं।

तीसरा व्याख्यान।

(ख)

तो भेजेके जखमोंका स्मरण शक्तिपर प्रभाव क्यों पड़ता है? हां! उसका कारण इस प्रकार है कि चैतन्य व्यक्तिका जीवन विविध प्रकारकी इच्छाओं, कामनाओं व कषायोंका एक तारतम्य है जो सांसारिक पदार्थोंके स्पर्श वा सांसारिक अनुभवके कारण परिवर्तनशील रहता है। यह इच्छाएं, कामनाएं इत्यादि केवल हरकत (क्रिया) पैदा करनेवाली शक्तियां हैं जिनका कार्य्य विचारकी शक्तिसे अगर रोका या वंद न किया जाय तो वह सदैव शरीरमें हरकत पैदा करने और इन्द्रिय भोगोंकी लिप्ततामें व्यस्त रहें, उस समयके अतिरिक्त जब वह किसी कारणवश ऐसा करनेसे मजवूर हों। परन्तु विचारके लिये जो चेतनताका दूसरा कार्य्य है यह आवश्यक है कि इसमें नित्यकी हरकत (क्रिया) की थोड़ी वहुत रुकावट हो, बुद्धिमत्ताका भाव जीवनकी इच्छाओं और कामनाओंकी नदीके प्रवाहको रोकना है और विचारका अर्थ इस प्रवाहको स्वयम् उसी पर उलटा देनेका है जिससे कि भूत कालके अनुभवमेंसे वर्तमानकी पथप्रदर्शकताकेलिये कोई हेतु मिल जावे। यह बात अवधान (तवज्जे या ध्यान) के देनेसे प्राप्त हो जाती है अर्थात्

अवधानके वर्तमान समयके साथ न दौड़ने और उसके व्यतीत होते हुये समयपर क्षण भर रुक जाने या भूत कालकी ओर आकर्षित होनेसे प्राप्त होती है। अब यह जानना उचित है कि स्मरण शक्ति बनी बनाई तसवीरों या फोटूके चित्रोंकी भांति नहीं है क्योंकि न तो भेजे हीमें और न शरीरके किसी और अङ्गमे किसी स्थान पर कोई तसवीरखाना या फोटूकी एलबम (चित्रोंके रखनेकी किताब) नहीं है वह स्वाभाविक शक्तियोंकी भांति है जिनसे ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष पुनः नवीन बन सकता है इस लिये ऐन्द्रिय प्रत्यक्षके गुणों (चिन्हों) से ही स्मरणके विशेषणोंका भी पता चल सकता है। किन्तु ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष तो वह आन्तरिक अनुभव है जो वाह्य उत्तेजकके द्रष्टाकी चेतना पर पड़नेवाले प्रभावसे उत्पन्न होता है। इसलिये स्मरण भी पूर्व अनुभूत ऐन्द्रिय प्रत्यक्षका पुनः निर्माण-कर्ता है, यद्यपि वह इस समय आन्तरिक उत्तेजन क्रियासे उत्पन्न होता है। शरीरके वह भाग जो ऐन्द्रिय दर्शनमें क्रियावान होते हैं नाडियोंके जाल वा भेजेके दर्शनसम्बन्धी स्थान है जहां कि अनुभव शक्ति विशेषतया तीव्र होती है। भेजेके इन दर्शनसम्बन्धी स्थानोंके समझके सम्बन्धमें दो प्रकारके कार्य्य हैं।

१- ऐन्द्रिय ज्ञानमें वह वाह्य उत्तेजक क्रियाको आत्मा तक पहुंचाते हैं।

२- स्मरणमें वह आन्तरिक ज्ञातव्य क्रियाको ज्ञानेन्द्रिय

दर्शनका वस्त्र पहनाते हैं जिससे स्मरण प्रत्यक्षकी सदृशता प्राप्त करके उसको याद करासके। किन्च स्मरण की हुई गत घटनायें चित्र या फोटू नहीं हैं। अतः जबतक कि वह किसी आन्तरिक (शारीरिक) या वाह्य ऐन्द्रिय दर्शनरूपी शरीरमें प्रवेश न करलें तब तक ज्ञान रूपमें परिवर्तित नहीं हो सकती हैं इस कारण यदि उनको कोई ऐसा शरीर प्रवेश करनेके लिये नहीं मिलता है तो वह ऐन्द्रिय प्रत्यक्षकी सूरत सम्पन्न नहीं कर सकती हैं। अब भेजेके ज्ञानसम्बन्धी स्थानोंके घावोंका कार्य्य केवल इतना ही है कि प्रत्यक्षमें वह वाह्य उत्तेजक क्रिया को काट देते हैं और स्मरणमें आन्तरिकको; वह अन्य किसी प्रकारसे जीव पर प्रभाव नहीं डालते और न जीवकी सत्ताको ही किन्हीं अंशोमें कम करते है। यदि आप मुझसे पूछें कि स्मरण शक्तिका निवासस्थान कहां है? तो मैं यह उत्तर दूंगा कि आप उसको मनकी उस गुप्त शक्तिमें जिसको ध्यान (अवधान) कहते हैं ढूंढें। जीवनका प्रवर्तित क्रियारूपी प्रवाह, जिसका उल्लेख किया जा चुका है हमारे भूत कालके अनुभवोंसे लदा हुआ है जो उसके परिवर्तनोकी अवस्थामें उसमें उपस्थित हैं और इसका सिरा अवधान (ध्यान) है जो कभी एक और कभी दूसरी ज्ञान या कर्मेन्द्रियसे संयुक्त होता रहता है। ध्यानके खिंचाव या प्रवृत्तिके कारण मन वर्तमान कालकी ओर लगा रहता है। और यह भी ध्यानकी इसी प्रवृत्तिके कारणसे है

कि जब मन एक इन्द्रियसे जुडा होता है तो दूसरी इन्द्रियोंका ज्ञानोत्तेजक आस्रव (Sensory stimulus) उस तक नहीं पहुंच पाता है। परन्तु जब यह खिंचाव या तनाव ढीला पड़ जाता है तो जीवन क्रियाके वहावका समय अथवा ताल बदल जाता है और मन्द २ क्रियाएं व वक़्फ़े (अन्तर-Rest) उपस्थित हो जाते हैं यह क्रियांए और आन्दोलन भेजेके दर्शन-सम्बंधी स्थानोंकी सहायतासे स्मरणको पुनर्जीवित करते हैं जो ऐङ्गिलभाषामें Reproduction (शब्दार्थ, फिर निर्माण करना) कहलाता है। दूसरे शब्दोंमें यह कहना उचित होगा कि स्मरणमें उत्तेजक और आन्दोलन क्रियांए मनके अन्दरसे आती हैं और ऐन्द्रिय प्रत्यक्षमें वाह्य पदार्थोंसे। दोनों अवस्थाओंमें भेजेके स्थान केवल ऐन्द्रिय दर्शनका वस्ता संचरित करते हैं जैसा कि पहिले कहा गया है। अतः स्मरणके रोग दो प्रकारके हो सकते हैं। या तो वह अवधान (ध्यान) के अमुक २ आन्दोलनों अथवा क्रियाओंको स्वीकार करनेमें असमर्थ रहनेसे उत्पन्न होंगे या भेजेके घाव इन क्रियाओंको दर्शनरूपी वस्त्रोंसे वंचित रक्खेंगे। परन्तु इसका भाव यह नहीं है कि स्मरणका प्रकृति (पुद्गल) से नितान्त कोई सम्बंध ही नहीं है। यह विचार कि स्मरण और प्रकृतिमें कोई सम्बंध नहीं है इतना ही मिथ्या होगा जितना यह कहना कि स्मरण केवल प्राकृतिक मस्तिककी उपज है। सब संस्कार (स्मरणके आन्तरिक

चिन्ह) प्राकृतिक हैं अर्थात् वह भी जो आंखके अतिरिक्त और शेष इन्द्रियोंके द्वारा बनते है। इन्द्रियोंसे बराबर बाह्य आस्रव (उत्तेजक क्रियाओं) की नदियां टकराया करती हैं। और इसमें कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है यदि इन क्रियाओंकी सूक्ष्म प्रकृतिका कुछ भाग स्मरणके बननेमें काममें आवै। निश्चय ही आश्चर्य्य इसमें होगा कि संस्कारोंको नितान्त ही अप्राकृतिक कहा जावे जैसा मैंने 'की ओफ नोलेज' (ज्ञानकी कुञ्जी) में कहा है स्मरण एक शक्ति है जो न विशुद्ध जीवमें और न पुद्गल (प्रकृति) हीमें हो सकती है किन्तु उस जीवमें होती है जो प्रकृतिके संयोगसे अपवित्र दशामें होता है। क्योंकि शुद्ध जीव सर्वज्ञ होता है जो स्मरण जैसे परिमित शक्तिके विरुद्ध है और प्रकृति चेतनारहित है और इस कारणसे स्मरणसे वञ्चित है।

अब मैं जीवके विशेष गुणोंकी ओर आकर्षित हूंगा। यह बात आपमेंसे बहुतोंके विचारमें आई होगी कि हमारे अन्वेषणसे चेतन द्रव्य नित्य अर्थात् नाश न होनेवाला साबित होता है, क्योंकि वह अपने स्वरूपमें बिदून हिस्सोंके और अखंड है। और इन कारणोंसे नाश होनेके अयोग्य और मृत्युका विरोधी है। वह ही युक्ति कि जिससे प्रकृतिका छोटेसे छोटा टुकडा नित्य साबित होता है, जीवकी नित्यताको भी साबित करती है। क्योंकि जिसके हिस्से या टुकडे ही नहीं है जो टूट सकें

वह लाजमी तौरसे नाश और मृत्युसे सुरक्षित है। जीव इसलिये अपनी सत्तामें नित्य भी है।

जीवके अन्यान्य विशेषणोंमेंसे वह गुण जिसके लिहाजसे उसके वास्तविक स्वरूप पर हम यहां और विचार करेंगे सुख या आनन्द है, जिसको हम सब किसी न किसी रूपमें अपने इधर उधरकी वस्तुओंसे प्राप्त करनेमें रक्त हैं। परन्तु अभाग्य-वश हमारे बाहर संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो सुख कहा जा सके। निस्संदेह संसारमें पदार्थ और घटनाएं हैं परन्तु पदार्थ और घटनाओंके स्वभावमें आनन्दका कोष होना नहीं होता है। हम देखते हैं कि एक व्यक्ति तो पुत्रोत्पत्तिमें हर्ष मनाता है परन्तु दूसरा व्यक्ति उसी बच्चेके पैदा होनेसे शोकान्वित है, क्योंकि उस बच्चेने उत्पन्न होकर इसको पहले व्यक्तिके धनसे, जिसको उसके पुत्रहीनकी दशामें वह रोनेवाला पाता, सदैवके लिये विहीन कर दिया है। बच्चा तो केवल एक पदार्थ या घटना है और स्वयम् न खुशी है और न अभाग्य ही है। ऐसी ही दशा और वस्तुओंकी भी है जैसे पान, जो भारतीयको कितना रोचक प्रतीत होता है अंग्रेजोंको अरोचक मालूम होता है। इसके अतिरिक्त यदि मेरेसे बाहर किसी वस्तुमें आनन्द होता तो वह मुझ तक मेरी इन्द्रियों द्वारा ही पहुंच सकता था। परन्तु मैं उनके द्वारा केवल प्रकृतिके परमाणुओंको आते देखता हूं, कभी सुख या आनन्दको नहीं। हम इस प्रकार देखते हैं कि हमारे

आनन्दका अनुभव हमारी सत्ता (जीव द्रव्य) की रोचक तवदीलियां ही हैं जो इसमें वाह्य या मानसिक उत्तेजक क्रियासे उत्पन्न होती हैं। और दुःखका अनुभव इसीप्रकारकी किन्तु कष्टदायक तवदीलियां हैं। सुख दुःख दोनों ही अनित्य हैं। इसमेंसे अंतिम अर्थात् दुःख, इस दुखसे भरे हुए संसारमें जिसका नाम किसीने अत्यन्त ही उचित रीतिसे 'अश्रुओंकी घाटी' रक्खा है, जीवनधारियोंके भाग्यमें वहुतायतसे पाया जाता है, क्योंकि थोड़ा सा सुख भी जो यहां मिलता है वह इतने परिश्रम और कष्टसे प्राप्त होता है और उपलब्धि और वादकी दशाओ दोनों ही में इतना कष्टदायक है कि यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि वह कष्टमें उत्पन्न होता है और आंसुओंमें समाप्त होता है। सौभाग्यसे एक और प्रकारका आनन्द हमको प्राप्त हो सकता है परन्तु हम इससे करीव २ नितान्त ही अनभिज्ञ हैं। यह आनन्द वास्तविक आनन्दकी झलक है जिसका भाव अंग्रेजी शब्द Delight के शाब्दिक अर्थानुकूल जीवमें आत्माकी स्वाभाविक स्वतन्त्रता (निर्मलताके अत्यन्त हलकेपन) का अनुभव होना है जो इस कारणसे कि वह जीवका स्वाभाविक गुण है पूरी रीतिसे होनेपर मुन्तकिल न होनेवाली दौलतकी भांति उसकी सम्पत्ति हो जाता है। हम सव इस खुशी और स्वतन्त्रताके हलकेपनसे जो हमारी मर्जी पर पड़े हुए किसी भार या फर्जके पृथक् होजानेसे प्राप्त होता है, कुछ न कुछ

विक्षता रखते हैं। उदाहरणके लिये यूनीवर्सिटीकी परीक्षासे उत्तीर्ण होनेसे। अब प्रश्न यह है कि यह आनन्द कहांसे उत्पन्न होता है?

यह विदित है कि यह आनंद सांसारिक भोगसे पैदा होने-वाली खुशीकी भांति नहीं है क्योंकि वह तो सांसारिक पदार्थों और ज्ञानेन्द्रियोंके असली या ख्याली तौरसे मिलनेसे पैदा होती है।

परीक्षोत्तीर्ण होनेसे जो हर्ष होता है उसमें जीवका किसी बाह्य पदार्थसे संयोग या वियोग नहीं पाया जाता है यद्यपि दृष्टि एक गुलाबी कागजके टुकडे पर जिस पर तारकी सूचना परीक्षोत्तीर्ण होनेकी लिखी हुई है अलबत्ता पडी है। विचारसे प्रगट होता है कि न तो इस कागजका, न उसके गुलाबी रङ्गका, और न उसकी इबारतका ही कुछ सम्बंध इस आनंदसे है जो उसके पढ़नेसे पैदा होता है। यदि आप मुझसे इस बातमें सहमत न हों तो आपको उचित है कि आप इस सूचनाके शब्दोंको उस ही या वैसे ही काग़ज पर लिख लेवें और उनको यथारुचि जितनी दफा चाहें पढ़ा करें। इससे आपको विश्वास हो जावेगा कि इस लेख या काग़ज़में जिस पर कि वह लिखा हुआ है कोई हर्ष पैदा करनेका गुण नहीं है। तत् विरुद्ध इसके गौरसे यह बात साबित होती है कि आनन्दकी झलक अंदर ही से पैदा होती है जिसका निमित्त तारकी सूचना होती है मगर कारण

नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे समयों पर यदि सूचनाको सत्य स्वीकार किया जाये तो इससे यह कष्टों और परिश्रमका भार जिससे जीव दबा हुआ था कुछ हलका हो जाता है और उसके हलका होनेसे एक हद तक जीवका वास्तविक आनन्द अपनेको प्रगट करता है। अतः यह प्रगट है कि बाह्य पदार्थोंका भोग जीवके स्वाभाविक आनंदका कारण नहीं है प्रत्युत किसी रुकावट या आन्तरिक डाटका निकाल डालना है जिसके हट जानेसे आंतरिक लहर, चमकनेवाली मदिराकी भांति जो बोतल के अंदर ही से झलकती हुई निकलती है, उमड़ आती है॥ संसारके भोगोंसे पैदा होनेवाली खुशीका उदाहरण यहां पर लाभदायक नहीं है क्योंकि उस समय जब कि वास्तविक आनन्द एक प्रकारके बोझ या कारागारसे छुटकारा पाने पर स्वतंत्रता का अनुभव है सांसारिक भोगसे पैदा होनेवाली खुशी इंद्रियोंसे पदार्थोंके मिलने या संयोगसे उत्पन्न होती है और स्वतंत्रताके ख्यालोंसे नितान्त पृथक् है।

यह भी ध्यान देनेसे प्रतीत होगा कि स्वतंत्रताके अनुभवसे उत्पन्न होनेवाला आनंद सांसारिक भोगोंकी खुशीकी भांति क्षणस्थायी नहीं होता है प्रत्युत उस समय तक कायम रहता है जब तक कि जीवपर कोई बंध या भार न डाला जावे या जब तक दुख या परेशानी किसी और सूरतसे न आजावे।

यह भी हम देखते हैं कि एकसे ज्यादा कार्य्यों या इरादोंमें

सफलता होनेसे हमारी स्वतंत्रताका अनुभव बढ़ता जाता है और हर्ष अधिक अधिक होता है। इसलिये ऐसा कहनेमें कोई सन्देह नहीं है कि जितना स्वतंत्रताका अनुभव ज्यादा होगा उतनी ही आनन्दकी लहर अधिक बढ़ेगी। यहां तक कि सब प्रकार के बंधनों, भारो और इरादोंसे पूरी स्वतंत्रताका प्राप्त होना सबसे अधिक कभी कम न होनेवाले और कभी न बदलनेवाले समाधिरूपी आत्मिक सुखका कारण होगी। अतः हम यह परिणाम निकालते हैं कि जीव स्वयं आनन्द और कल्याणका सोता (निवास व निवासस्थान) है और उसके आनन्दका श्रोत कभी नहीं सूख सका है। इसका कारण यह है कि वह हर्ष जो हमारे अंदरसे पैदा होता है खुद हमारी ही सत्ताका गुण है। क्योंकि आत्मा जैसे अखंड और असंयुक्त द्रव्यके सम्बंधमें 'अंदर'का भाव और कुछ हो ही नहीं सकता है। अब चूंकि द्रव्य और उसके स्वाभाविक गुण या विशेषण नित्य होते हैं इसलिये यह असम्भव है कि वह आनन्द जो आत्माका गुण है एकबार सम्पूर्णतया अपने रोकनेवाले कारणोंके नाश होनेपर प्राप्त होनेके पश्चात् कभी कम हो सके।

अब हम इस बातको समझ सके हैं कि इच्छाओ और कषायोंके कम होनेपर, जिनके कारणसे मनकी शांति और संतोष नष्ट हो जाते हैं, क्यों प्रत्येक प्राणी हर्षित होता है। क्लेश और दुखके निमित्त यह कहना है कि वह आत्मासे बाह्य कार-

णोंसे उत्पन्न होते हैं और इस कारण हमारे जीवनकी नाशवान दशायें हैं। यदि इसके विपरीत होता अर्थात् दुःख और कष्ट हमारी सत्ताके गुण होते तो वह हमारी आत्मासे हमारी इच्छाओं और कषायोंके हलका और मंद पड़जाने पर उत्पन्न होते। क्योंकि जो पदार्थ किसी वस्तुका गुण है वह स्वयं विना किसी कारणके ही अपने रोकनेवाले कारणोंके हटजाने पर पैदा हो जाता है। रंज और कष्ट दोनों बाह्य कारणोंसे, जो संक्षेपसे निम्नलिखित दो प्रकारके हैं, पैदा होते हैं।

(१) अनिष्टसंयोग अर्थात् मिलाप ऐसी वस्तुसे जो हृदय-ग्राही नहीं है।

(२) इष्टवियोग अर्थात् पृथक्ता ऐसे पदार्थसे जो हृदय-ग्राही और रोचक है।

दुःख और रंज किसी दशामें उस समय नहीं पैदा होते जब हम अपनी सत्तामें स्थिर हों अर्थात् इन कारणोंमेंसे एक या दूसरेके निमित्तके विना नहीं उत्पन्न होते। वास्तवमें जहांतक कि शारीरिक दुखका सम्बन्ध है वह प्राकृतिक क्रियाओं व विविध प्रकारकी वस्तुओं व प्राकृतिक तत्त्वोंके बाहमी (आपसके) कीमियाई कर्म्मका जो शरीरमें होता रहता है प्रभाव है, न कि जीवके अन्दरसे कोई स्वयं उत्पन्न होनेवाला पदार्थ।

उपरोक्त व्याख्यासे हम यह कहनेके अधिकारी हैं कि जीव

स्वयं आनंदका कोष है जिसको वह बाह्य पदार्थोंसे प्राप्त करनेका निरर्थक प्रयत्न करता है।

फिर क्या कारण है कि जीव अपने इस स्वाभाविक आनंदका अनुभव नहीं कर सकता है? इस जटिल प्रश्नका उत्तर यह है कि हमारी त्रुटियों और मूढ़ताके कारणसे जीवात्माके स्वाभाविक गुण कार्यहीन हो गये हैं।

जिस हद तक - कि इन त्रुटियों, मूढ़ता या कषायमद्यकी जीवमें हानि होती है उस हदतक जीवके स्वाभाविक गुण प्रकट होते हैं। वास्तवमें जीवात्मा पूर्णानन्द और सर्वज्ञताका अनुभव करेगा जब कि वह शक्तियां जो इससमय इन गुणोंको रोके हुये हैं नितान्त नष्ट हो जावेंगी। और अमरत्व भी जीवके उन वैरियो पर विजयी होने का पारितोषिक होगा।

जीवको सर्वज्ञ, सुख और अमरत्वका स्वामी कहना उसको स्वयं खुदा या ईश्वर (ब्रह्म) कहना है क्योंकि ईश्वरकी सत्तामें भी वडे गुण यही पाये गये हैं इससे पवित्र इंजीलके इस वाक्यका कि "वह पत्थर जिसको मेमारोंने रद्दी समझकर फेंक दिया शिखरका सरताज हुआ है" (देखो जवूर ११८ आयत २२ व मत्तीकी इंजिल वाव २१ आयत ४२) पूरा समर्थन होता है।

वास्तवमें वही पत्थर (आत्मा) जिसको मेमारों (प्राकृतिक विज्ञान वेत्ताओं) ने फेंक दिया था सच्चे विज्ञानका छत्र साबित

होता है जिसमें कुल ईश्वरीय गुण व शक्तियां पाई जाती हैं। यह गुण हमारी आत्मामें इस समय इस कारणसे नहीं पाए जाते हैं कि उनका प्रादुर्भाव ऐसी शक्तियोंके कारण जो जीवको अपवित्र और बलहीन बनाये हुये हैं, ढका हुआ है। और जबतक कि अपवित्रता और बलहीनताके वह सबकारण हट न जायंगे उस समय तक प्राप्त न हो सकेगा। जैसा कि जैनमतकी फिलासोफीके निमित्त (देखो इंडियन फिलासोफिकल रिव्यू जि २ पृ १५२) में कहागया है जीव एक बार जन्म लेनेवाला पदार्थ है जो निर्वाण प्राप्त करनेतक एक योनिसे दूसरी योनिमें बराबर भ्रमण किया करता है। यह इस बातसे साबित है कि जीव वास्तवमें नित्य है इसलिये इसकी पिछली जीवनी होना आवश्यक है चाहे वह वर्तमान समयमें उस पिछली जीवनीसे कितना ही बेखबर क्यों न हो। स्मरणका स्वरूप और उसके घातक कारणों और उस नियमका जिससे भूतका ज्ञान हो सके इन सबका उल्लेख "की ओफ् नोलेज" में किया गया है। वहां आप उसको देखे लें। परन्तु जब चंद ही मिनटोंकी बातें याद नहीं आती हैं तो ऐसे भूत समयके हालका जिसके बाद जन्म मरणके बड़े बड़े प्रलयसदृश काया पलट हो चुके हैं, याद न आना कौनसे आश्चर्यकी बात हो सकती है। अपनी सत्तामें अविनाशी जीव उस समस्त अपरिमित कालमें जिसको भूत कहते हैं निश्चय ही विद्यमान रहा होगा जैसे कि वह आगामी कालमें विद्यमान रहेगा।

परन्तु भूतकालमें जीव एक पवित्र प्रकाशके तरहपर कभी नहीं रहा होगा क्योंकि शुद्ध द्रव्य स्वरूपको प्राप्त करनेके बाद वह फिर कभी आवागमनके चक्करमें नहीं गिरसकता। इसका कारण यह है कि जीव अपनी शुद्ध दशामें सर्वज्ञाता, सर्वदर्शी अपरिमित सुखका भोगनेवाला और तमाम ईश्वरीय गुणोंका कोष होता है जिनका किसी प्रकारके आवरणोंके न होनेके कारण पूरा २ प्रादुर्भाव उसकी सत्तामें होना आवश्यक है। ऐसे परम सम्पूर्ण जीवका एक पौद्गलिक शरीरमें प्रवेश करनेके लिये अपने परमोत्तम स्थानसे गिरने और इस प्रकार अपनी पूर्णताको विविध भांतिसे सीमित करनेका खयाल एक ऐसी झूठी बात है कि इसको बुद्धि एक क्षण भरकेलिये भी नहीं स्वीकार कर सक्ती है। इससे यह परिणाम निकलता है कि इस जन्मसे पहले भूतकालमें जीव कभी सिद्धत्वको नहीं प्राप्त हुआ था। और यह भी प्रकट है कि जीवोंके विविध व्यवस्थाओंमें पैदा होनेकेलिये यह आवश्यक है कि ऐसी कोई शक्ति या शक्तियां हों कि जो उनका विविध प्रकारके गर्भाशयोंमें खींच कर ले जा सकें। परंतु ऐसी शक्तियोंका जो जीवको खींचकर एक शरीरसे दुसरे शरीरमें ले जावें हम किसी प्रकार खयाल करैं अगर इस प्रकार नहीं कि वह एक प्रकारके द्रव्यका कार्य हो। इसलिये यह स्पष्ट है कि शरीरमें जन्म लेनेके पूर्व जीवके साथ प्रकृति (पुद्गल) का लगाव होना आवश्यक है।

तब यह प्रकृतिके लगावका प्रभाव है जो जीवोंकी इन तमाम अवस्थाओंका जिम्मेवार है जो एक पवित्र आत्मामें नहीं होतीं क्योंकि विविध द्रव्यों या तत्त्वोंके आपसमें मिल कर एक हो जानेका परिणाम उनके असली गुणोंका सीमित हो जाना या दब जाना ही हुआ करता है जैसे हाइड्रोजेन और आक्सीजेन जो नैसर्गिक दो प्रकारकी वायु हैं परन्तु जब संयुक्त होकर एक हो जाती हैं तो इनके स्वाभाविक गुण सीमित होकर जलरूप में परिवर्तित हो जाते हैं। परंतु इस प्रकार गुण कभी नितांत नष्ट नहीं हो सक्ते हैं। पदार्थोंके पृथक् होने पर वह पुनः पूरे तौरसे समर्थताको प्राप्त हो जाते हैं (देखो इंडियन फिलोसोफिकल रिव्यू पत्र १५५)। गौर करनेसे ज्ञात होता है कि अपवित्र जीव अपने ज्ञान, दर्शन व आनन्दके असीमित गुणोंका पूरा लाभ नहीं उठा सक्ता है जिससे प्रकट है कि इन गुणोंको रोकनेवाली शक्तियां उसके साथ लगी हुई हैं। इस प्रकार हमको तीन किसकी शक्तियोका पता चलता है। अर्थात्

१-वह शक्ति जो ज्ञानको रोकती है (यह ज्ञानावरणीय कहलाती है)।

२-वह जो दर्शनको रोकती है (दर्शनावरणीय) और

३-वह शक्तियां जिनके कारण वास्तविक आनंदके स्थानपर सांसारिक दुख सुखका अनुभव हुआ करता है (वेदनीय)।

इनके अतिरिक्त विचार करने पर एक और शक्तिका पता

चलता है जिसके प्रभावसे सच्चा धर्म्म (अर्थात् साइन्टिफिक यथार्थ सत्य) हृदयग्राही नहीं हो सकता। यह दो प्रकारकी है। एक तो सत्यको हमें स्वीकार ही नहीं करने देती और दूसरी वह जो सत्यके स्वीकार होने पर भी हमें उस पर कर्तव्यपरायण होनेसे रोकती है। इनमेंसे प्रथम प्रकारकी शक्तियोंका भाव पक्षपात, हठधर्मी, मिथ्यात्व और उन तमाम बुरेसे बुरे (अनंतानुबंधी) कषायो (क्रोध मान माया लोभ) से है जिनकी तीव्रता व उन्मत्तताके कारण बुद्धिको, जो एक ही यन्त्र सत्यान्वेपणका है, सत्यताके खोजका अवसर ही नहीं प्राप्त होता है। और दूसरे प्रकारकी शक्तियोंमें अनंतानुबंधी प्रकारके अतिरिक्त और अन्य प्रकारके बुरे कषाय (क्रोध मान माया लोभ) सम्मिलित हैं जो धैर्य्य और वीर्यके नाश करनेवाले हैं और उन पदार्थोंके ग्रहण करनेमें बाधक होते हैं जिनको हम लाभकारक और उत्तम जानते हैं और कुछ छोटे २ दोष (नोकषाय) जैसे हँसी रति इत्यादि व शारीरिक आदतें व कामनाएं भी जो मनको काबूमें लानेमें बाधक होते हैं। यह सब मोहनीय कर्म्म कहलाते हैं इनके दो प्रकार हैं।

१—दर्शनमोहनीय, जिनकी उपस्थितिमें सत्य धर्म (दर्शन) प्राप्त नही हो सकता है। और

२—चारित्रमोहनीय, जो सत्य धर्मको तो प्राप्त हो जाने देते हैं किंतु उस पर कर्तव्य परायण नहीं होने देते हैं।

इनके अतिरिक्त एक प्रकारकी और भी शक्ति है जो अच्छे और हृदयग्राही कार्यको नहीं होने देती और जो सामान्यतः हमारे इरादोके पूर्ण होनेमें वाधक होती है। इसका नाम अन्तराय है। यह शक्तियां वह हैं जो हमारे जीवके नैसर्गिक परमात्मापनके गुणों जैसे सर्वज्ञता इत्यादिके प्राप्त होनेमें बाधा डालती हैं। अतः यह परिणाम प्रतीत होता है कि वाधक शक्तियोंके नाश होने पर जीवके असली स्वाभाविक गुण और परमात्मभावकी सिद्धियां तत्काल प्राप्त हो जाती हैं। क्योंकि यह तो सब आत्मा ही में मौजूद हैं, कहीं बाहरसे थोड़े ही प्राप्त करनी हैं। धर्मका दावा है कि वह वह नियम है जो जीवको परमात्मपनका वैभव प्राप्त करा देता है। इस उद्देश्यको वह जीवके असली गुणो और विशेषणो, और उन गुणों व विशेषणोंके वाधक होनेवाली शक्तियो और वाधक शक्तियोंके नाश करनेवाले कारणोके ज्ञानसे प्राप्त करता है। मुझे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि यह सब अनुसंधान बहुत ही सावधानीके साथ वैज्ञानिक रीति पर बड़ी होशियारीसे करना पड़ता है क्योंकि केवल विज्ञान पर ही तात्कालिक विश्वस्त और कभी न बदलनेवाले प्रभाव उत्पन्न करनेके लिये विश्वास किया जा सक्ता है, अतः धर्मका लक्षण इस प्रकार कहना समुचित है कि वह आनंदकी प्राप्तिका विज्ञान है जो बुद्धिविपरीत नियमों और उक्तियोंसे किंचित्मात्र भी सम्बन्ध नहीं रखता है। वह कार्य कारणके नियम पर निर्भर है

और जीवनके साथ लगे हुये दुख और कष्टका पूरा २ प्रतिपादन करता है और साथ ही साथ हर प्रकारके मानुषिक दुख दर्द हटानेका साधन भी है। अनुसंधानका क्षेत्र सात तत्वों (वैज्ञानिक नियमों) पर विभाजित है जिनका स्पष्टतासे समझना अत्यंतावश्यक है। यह तत्त्व वैज्ञानिक नियमों पर अनुसंधान करनेसे प्राप्त होते हैं और सरलतासे समझमे आ सकते हैं। चूंकि जीवको मिथ्यात्त्व और पापके फंदोसे छुड़ाना आवश्यक है इस लिए सबसे पहली बात जो जानने योग्य है वह यह है कि जिसकी मुक्तिकी फिक्र की जाती है वह क्या वस्तु है? आया वह ऐसी है कि मुक्ति पा सके या नहीं। इसलिये सबसे पहली बात जीवका विषय है अतः जीव हमारा प्रथम तत्त्व हुआ। दूसरी बात जो ज्ञातव्य है यह है, कि वह शक्तियां जो जीवके गुणोंकी घातक हैं किस द्रव्यसे बनी हैं या कौनसा द्रव्य उनका आधार है। यह द्रव्य (अजीव=पुद्गल) हमारा दूसरा तत्त्व ठहरा। यह अजीव (पुद्गल) जीव तक कैसे पहुंचता है फिर किस प्रकार इसकी घातक शक्तियां बनती हैं, इसके आगामी आगमनको कैसे रोका जावे और उपस्थित घातक शक्तियो (प्रकृतियो) को कैसे तोड़ा जाय? यह नये अनुसंधानसे पैदा होते है अतः तीसरा तत्त्व आस्रव (पुद्गलका जीवकी ओर आना) चौथा बंध (बाधक शक्तियोका बनना) पाचवां संवर (पुद्गलके आस्रवका रुकना) और छठा निर्जरा (उपस्थित घातक कर्मोंका नाश

करना) है। अंतिम तत्त्व मोक्ष (नजात) कहलाती है । एक संक्षेप रीतिसे अनुसंधानका परिणाम नीचेके जुमलेसे कहा जा सकता है जिसमें छोटे अंको द्वारा तत्त्वोंका दिखाया गया है । जीव[1] पुद्गल (अजीव[2]) के मेलसे जो इसमें आकर मिलता है (आस्रव[3]) और जिसके मेलसे बाधक शक्तियां बनती हैं (बंध[4]) बंधनमें है । आस्रवका रुकना (संवर[5]) और मौजूदा बाधक शक्तियोंका तोडना (निर्जरा[6]) मोक्ष[7]का कारण है जिसकी प्राप्ति पर जीव पूर्ण परमात्मा बन जाता है ।

सब प्रकारके आचरण और कर्तव्य व पुण्य पापका विपाक वास्तवमें तीसरे और चौथे तत्त्वोंमें सम्मिलित हैं । परन्तु अगर इनको पृथक् गिना जावे तो सात तत्त्वोंके साथ मिलनेसे (७+२=९) नौ पदार्थ कहे जाते हैं जिनको आनंदके विज्ञानके स्तम्भ भी कह सक्ते हैं ।

मोक्ष शब्दका धार्मिक भाव पूरे तौरसे समझनेके लिये यह आवश्यक है कि आप तीसरे और चौथे तत्त्वों अर्थात् आस्रव और बंधको भली भांति जान लें । आस्रवका भाव जीव और प्रकृतिका एक साथ होना (मिलना) है । और उसका नियम यह है कि संसारी जीवके सब कर्मोंके साथ चाहे वह शारीरिक हो या वाचिक या मानसिक एक प्रकारका सूक्ष्म माद्दा (पुद्गल) जीवात्माकी ओर बहता रहता है । सूक्ष्म परमाणुओंकी सदैव बहनेवाली लहरें या नदियां बराबर इंद्रियों

से टकराया करती हैं, जिनको इन्द्रियां सदैव जीवतक पहुंचानेमें संलग्न रहती है। चाहे मैं किसी पदार्थको देखूं या सुनूं अथवा सूंघूं, वा खाऊं या स्पर्श करूं हर दशामें केवल एक ऐन्द्रियोत्तेजक माद्देको अपनी ओर खींचता हूं। और जब कि मैं बाहरके व्योपारको छोड़ कर मनके अंदर ही अपनेको बंद कर लेता हूं तब भी अनुभव (Sensation) बराबर होते रहते हैं। जिसका भाव यह है कि जीवका व्यवहार भेजेके दर्शनसंबंधी स्थानोंसे बराबर जारी रहता है। यदि मैं बोलता हूं तो मुझे अपनी आवाज़ का कर्णेन्द्रिय द्वारा अनुभव होता है और शरीरके उन भागोंकी हलन चलन रूप क्रियाका ज्ञान होता है कि जो शब्दोंके बनानेमें भाग लेते हैं यहां भी अनुभव-उत्तेजक सामिग्रीका आस्रव बराबर जारी रहता है। इन्द्रियोंमें घुस पड़नेवाले यह बाह्य चोर न कभी विश्राम लेते हैं और न रुकते हैं और न कभी अवकाश ही लेते हैं। निस्संदेह चक्षु कुछ विश्राम पा जाती है यदि उसको बंद कर लिया जावे। और इसी प्रकार रसना इंद्रियकी भी बहुत कुछ रक्षा की जा सकी है परन्तु त्वचा, नासिका, श्रोत्रकी दशा तो शोचनीय है। यह तो वेश्याके घरके खुले द्वारकी भांति हैं और जो कोई अन्दर जाना चाहे उसको अन्दर जाने देनेके लिये बाध्य हैं।

यह संक्षेपतया आस्रवका वर्णन है जो हमारा तीसरा तत्व है। बंधका नियम आस्रवके कार्यसे निकाला जा सका है। अब

हम देखते हैं कि अनुभव सदैव वाह्य उत्तेजना (आस्रव) पर जो हम अभी देखचुके हैं वरावर जारी रहती है, नहीं होता है। यदि मन उस समय कहीं और लगा हो तो वास्तवमें जिह्वापर रक्खे हुये कौरका स्वाद प्रतीत नहीं होता है। इससमय कान रागके लिये वहरे होते हैं, नासिका गंधके लिये अचेतन होती है और त्वचा स्पर्शकेलिये। अनुभवका ऐसा नियम मालूम होता है कि मनका प्रभाव उस इंद्रियको छोड़कर कि जिसकी ओर वह किसी समयमें लगा होता है और सव इंद्रियो पर रुकावटके रूपमें पड़ता है। तद्विरुद्ध मंद और निर्वल इन्द्रियोत्तेजना मनके आकर्षणसे तीव्र और साफ हो जाती है। ज़वानपर रक्खे हुये कौरके उससमय जव कि मन किसी अन्य ओर लगा हुआ है स्वाद न देनेका कारण यह है कि वह किसी नवीन चेतनाके परिवर्तन (State of consciousness) का कारण नहीं हुआ है। रसविज्ञान ऐसा वताता मालूम होता है कि जिस समय खानेका ज्यादा (स्थूल) हिस्सा हलकमेंसे होकर मेदेमें पहुंच जाता है उसके ज़ायकेके कुछ सूक्ष्म परमाणु रसनेंद्रियसंवन्धी नाड़ियों और चक्रोंमेंसे होकर जीवतक पहुंचते हैं और उससे मिलकर इसकी दशामें एक प्रकारका रसायनिक परिवर्तन पैदा करते हैं। इस परिवर्तनका नाम चेतनाकी दशा (State of consciousness) है। इसको जीव अनुभव करता है और यह ही नवीन चेतनाकी दशा रसका अनुभव है। परन्तु वह रसके

परमाणु दोनो दशाओंमें मौजूद रहते हैं चाहे जीव उनकी ओर ध्यान देवे या न देवे। इससे यह परिणाम निकलता है कि वह जीवसे उससमय तक नहीं मिलते जबतक कि द्वार खुला हुआ न हो और ध्यानकी दासी उनको अपनी गृहस्वामिनीके पास न पहुंचावे। परन्तु ध्यानसे सदैव हृदयग्राह्यतासे प्रयोजन है चाहे वह केवल जानकारी प्राप्त करनेकी गरजको जाहिर करे या आलिंगन होनेकी तीव्र इच्छाको। अत एव हम यह कह सक्ते हैं कि जीव और पुद्गलका मेल उसी समय हो सक्ता है कि जब जीवपर किसी प्रकारकी इच्छाका प्रभाव हो। अर्थात् जब वह बाह्य पदार्थसे आलिंगन करनेकी इच्छा रखता हो। इससे जीव और प्रकृतिके मेलका दूसरा नियम या क़ायदा प्राप्त होता है जो इस प्रकार कहा जा सका है कि जीव और प्रकृति (पुद्गल) का मेल उससमय तक नहीं हो सक्ता है जबतक कि जीव इच्छाके कारण पहले निर्बल न हो गया हो। अपवित्रताकी दशामें जीवका ज्ञान बहुत कम हो जाता है और हिम्मत करीब २ गायब हो जाती है। सबसे बुरी दशाओंमें वह बाह्य "आशनाओं" (पदार्थों) का स्वरूप भी नहीं समझ सक्ता है जो रूसी पिशाच ड्रैकुलाकी भांति पहली बार तो निमंत्रित किये जानेके मोहताज हैं परन्तु बादमें वह अपने निमंत्रणकर्तामें इतनी शक्ति नहीं छोड़ते कि वह फिर उसको रोक सकें।

अब हम इस बातको समझ सक्ते हैं कि जैन सिद्धान्तमें इन

जीव और प्रकृतिके मेलसे पैदा होनेवाली घातिय शक्तियोंको कर्म प्रकृतिके नामसे क्यों विख्यात किया है? चूंकि इनका प्रारम्भ जीवकी इच्छापर निर्भर है जो जीवका कार्य है इसलिये वह कर्मको ज़ाहिर करती हैं और वलिष्ठ होनेके कारण प्रकृति (शक्ति) कहलाती हैं।

जीव और प्रकृतिके मिलनेसे बननेवाला संयुक्त वस्तु कार्मण (कर्मरूप) शरीर कहलाता है। यह आन्तरिक सूक्ष्म शरीर, जो एक दूसरे आंतरिक शरीरके साथ, जिसको तैजस शरीर कहते हैं केवल जीवके मोक्ष प्राप्तिके समय नष्ट होता है, उसके क्लेशोंका कारण है। यह दूसरा सूक्ष्म शरीर एक प्रकारके वैद्युत या आकर्षण शक्तिवाले माद्दे (पुद्गल) का बना हुआ होता है। और वह अत्यंत सूक्ष्म कार्मण शरीर और वाह्य स्थूल शरीरमें संवन्ध करानेवाला दर्म्यियानी है, कार्माण शरीरकी हालत व वनावटमें वरावर आवागमनके चक्करमें परिवर्तन होते रहते हैं और जीवके सदासे चक्करमें पड़े हुये वटोहीकी परिवर्तन-शील जीवनीकी विविध दशायें सव इसी कार्माण शरीरके भीतरी कारणो और शक्तियोंसे उत्पन्न होती हैं। एक स्थानपर मृत्यु होते ही तैजस शरीरकी वलिष्ठ शक्तियोंके कारण जीव एक नये गर्भाशयमें खिंच जाता है और तत्काल ही वहां पर उसके कार्माण शरीरकी उपस्थित शक्तियां उसकेलिये दूसरा स्थूल शरीर वनानेमें लग जाती हैं। इसप्रकार शरीर, आयुकी माप,

शारीरिक आंगोपांगकी बनावट, गोत्र (सांसारिक उच्चता नीचता) जो वास्तवमें घरानेपर निर्भर होता है जीवके भूतकालके जीवनके कर्मोंसे सीधे सादे तौरसे पैदा होनेवाले परिणाम हैं। और हमारा अपनी त्रुटियों, दोषों और कुरूपताके लिये एक ऐसी सत्ताको जिसको हम नेकी, उच्चता और ऐश्वर्यकी सबसे उत्कृष्ट मूर्तिकी भांति पूजा करनेके लिये प्रस्तुत हैं, दोषी ठहराना बावलेपनका कार्य है।

अतः कार्माण शरीर पुनर्जन्मका बीज है जिसकी अनुपस्थितिमें जीवके लिये शरीरधारी होना असम्भव है क्योंकि जो जीव प्रकृतिके निर्बल करनेवाले सम्बंधसे स्वतंत्र है वह वास्तवमें स्वयं परमात्मा है और संसारमें कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो एक वास्तविक परमात्माको बंधन और आवागमनके चक्रमें पुनः खींचकर डालदे। इसी अर्थमें शुद्ध जीव (परमात्मा) को सर्व-शक्तिमान कहा जाता है, क्योंकि निर्वाणके शुभ स्थानके बाहर कर्म सब जगह प्रबल हैं। यहां तक कि बड़ेसे बड़े इन्द्र (देवलोकके राजा) देव (स्वर्गके निवासी) असुर और मनुष्य सब इसके सामने हारे हैं। संसारमें कोई ऐसी शक्ति नहीं है कि जो निर्वाण क्षेत्रमें विराजमान परमात्माओंसे विरोध कर सके। उनका आनंद तीनोलोकोंमें सबसे ज्यादा है। उनकी पूर्णताका वास्तवमें कोई उदाहरण नहीं है। और उन परम पूज्य आत्माओंके बलको कि जो एक निगाहहीमें सब व्यवस्थाको

जो इस समय गुजर रही है वा जो गत समयमें हुई है या जो भविष्यत्में होनेवाली है विदून किसी प्रकारकी स्थान व काल संबंधी सीमाओंके जानते है, कौन वर्णन कर सक्ता है ? फिर हम कैसे उस उच्च पदवाले पाप और मिथ्यात्वकी शक्तियोंके विजयीके वैभवका परिमाण लगा सके हैं कि जिसके परमानंदमें कोई पदार्थ बाधा नहीं डाल सक्ता है, न जिसके अचल ध्यानको कोई एक क्षणके १० लाखवें हिस्सेके बराबर भी हिला सक्ता है। शुद्ध आत्माको नींद, गशी और प्रमाद नहीं आता है मृत्यु रोग और बुढ़ापा उसके समीप नहीं आसक्ते हैं और काल इसकी सेवामें केवल इसी हेतु उपस्थित रहता है कि उसके पूजनीय चरणोंमें अक्षय जीवन और अजर तरुणताके पुष्प सदा चढ़ाया करे। यदि सर्व शक्तिमान होनेका यही भाव है तो केवल ऐसा ही शुद्ध आत्मा सर्वशक्तिमान होता है अन्य कोई नहीं।

आवागमनके विषयपर पुनः विचार करते हुये मैं यह कहूँगा कि इसकी स्थिति जीवोंके अमरत्व व नित्यतापर निर्भर है। अतः नित्य व अनुमानतः अनुत्पन्न होनेके कारण जीव भूतकालमें भी अवश्यमेव उपस्थित रहे होंगे। इसके अतिरिक्त चूंकि विज्ञानमें आश्चर्य कर्म (अलौकिक कार्य) नहीं माना जा सक्ता है अर्थात् उसके माननेसे काम नहीं चलता है अतएव यह नहीं कहा जा सक्ता है कि सब जीवोंके वर्तमान शरीर

अलौकिक रीतिसे बन गये है। किंतु यह स्वीकार करना पड़ता है कि कोई ऐसा नियम इन जन्मोसे संबंधित है जो जीवोंकी प्रारब्धोंका निर्माण करनेवाला है। अब उन विविध प्रकारकी पर्य्यायोपर ध्यान दो जो जीवनके विविध योनियोंमें विविध गतियोंमें पाई जाती हैं। विचार करो कि बुद्धि (Natuie) उस दुख और कष्टका जो हर स्थानमें पाये जाते हैं क्या कारण बताती है? सत्य यह है कि वह सब कष्ट जो कोई जीवधारी उठाता है, वह सब अच्छी और बुरी अवस्थायें जिनको वह अनुभव करता है और वह सब बातें भी जिनका वह भोक्ता होता है उसके पूर्व जन्मोके कर्मोका फल हैं। परंतु इसपर अब अधिक विवादकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसका उल्लेख पर्याप्त हो गया है।

अब केवल यह रह गया है कि हम उन जरियो और कारणों का उल्लेख करें जिससे मिथ्यात्व और बदीकी शक्तियोका जो हमारी बाधक हैं नाश किया जावे। यह एक सरल प्रश्न है और थोडे शब्दोमें इसका उत्तर दिया जा सक्ता है। हमारे कष्ट हमारी इच्छाओंसे पैदा होते हैं। अतः हमको अपनी इच्छाओको नाश करना चाहिये। चाहे जो अवस्था आपकी हो अपनी इच्छाओं और कषाओंको छोडो। जब कभी तुमको समय मिले, चाहे जहां तुम हो कामनाओसे मुंह मोड़ो। इस प्राणके वैरी अर्थात् इच्छाके उसकी गर्दन दबानेको भिड़ जाओ और अपनी पकडको

बराबर कठिन करते जाओ। कभी हलका न होने दो। इसमें ढील डालनेसे लाभ नहीं है क्योंकि सम्भव है कि बादमें तुमको ऐसा करनेके लिये समय ही न मिले। चाहे वह तपस्या या उपवास या कोई और नियम मनके मारनेका हो, तुमको उन सबके शत्रुके परास्त करनेकेलिये अपनी ओर भरती करना चाहिये। आराम कुर्सी पर लेट कर मुक्तिकी प्राप्तिका प्रयत्न करनेकी आशा निरर्थक है। इस प्रकार कर्मोंके बन्धन नहीं टूट सक्ते हैं। अभीसे अपने तईं सरगरमीके साथ अपने वैरीके नाश करनेके लिये तैयारी करना प्रारम्भ करो। अन्यथा कुत्ते बिल्ली या कीडे मकोड़ेकी भांति आगामी जन्म पाने या नरकके कठिनसे कठिन दुख भोगनेके लिये कि जो सांसारिक भोग और कषायोंमें लगनेके विपाक हैं तैयार हो जाओ।

अतः जब कोई चौड़ा राजमार्ग सिद्धत्वकी चोटी पर पहुंचनेके लिये नहीं है, एक तंग विज्ञानका मार्ग इस आंसुओंकी घाटी (आवागमन) से बाहर निकल जानेका है। यह सब मनुष्योंके लिये एक ही है जिससे किनारा करनेवाले नीचे खड्डोंमें गिर कर मिथ्यात्व और कषायोंकी कड़ी चट्टानों पर पडते और नष्ट होते हैं। यहां किसीकी दिल्ली या जाती रुचिका भी प्रश्न नहीं है। विज्ञानके मार्ग पर चलनेवालेको नियमोंके चुननेका समय नहीं होता है और न हो सक्ता है। हम रंगरूटको यह अधिकार नहीं देते हैं कि वह अपने लिये सोचे कि वह फ़ौजी क़वायद

सीखेगा या नहीं। यदि वह फ़ौजमें आना चाहता है तो क़वायद करनां उसको ज़रूरी होता है।

कड़े विज्ञानका यह तंग रास्ता सम्यग्दर्शन (सत्य विश्वास) सम्यग्ज्ञान (सत्य ज्ञान) और सम्यक् चारित्र (सत्य कर्तव्य) का सम्मिलन है। इनमें सम्यग्दर्शन, अपनी दृष्टिको बराबर पूर्णता और आनन्दकी ओर लगाये रहता है और क्षणभरके लिये भी इसकी ओरसे दृष्टिको नहीं हटाता है। इसका कार्य कर्मोंको सत्यताकी ओर रखनेका है जिससे कि वह तो हमको नाश न कर सकें। नावके पथ प्रदर्शककी भांति सत्य विश्वासका कर्तव्य, जीवनरूपी नौकाको तूफ़ान इत्यादिसे बचाकर अमन व स्वतंत्रता के बंदरगाहसे पहुंचा देना है। जिसका अंतःकरण सत्य विश्वास से पवित्र नहीं हुआ है वह पतवारहीन जहाज़की भांति है जो पथप्रदर्शकके न होनेके कारण जल्द चट्टानोसे टकरा कर डूब जाता है, सत्य विश्वासकी आवश्यकता इस बातसे प्रत्यक्ष है कि लोग अपने विश्वासके अनुसार ही कार्य्य करते हैं कभी उनके विरुद्ध नहीं।

सम्यग्ज्ञान परमात्मापनकी प्राप्तिका ठीक २ ज्ञान है। वह उस नक़शेकी भांति है जो मार्गको और उसमें आगे आनेवाली कठिनाइयोंको स्पष्टतया दिखाने और उनसे बचनेके साधन बतानेके लिये बनाया जाता है जिससे वह मल्लाह जिसके पास ऐसा चित्र नहीं है कभी अपने जहाज़को सागरसे पार नहीं

ले जा सक्ता है। इसी प्रकार यह जीव जिसके पास सम्यग्ज्ञान का संसार सागरके मार्गका नकुशा नहीं है, कभी निर्वाण तक नहीं पहुंच सक्ता है।

सम्यक्चारित्र तीसरा आवश्यक भाग कार्य साधनका है क्योंकि ठीक समयमें ठीक कर्मके किये विना कोई व्यक्ति अपने हार्दिक उद्देशको प्राप्त नहीं कर सक्ता है।

यदि सम्यग्दर्शन ठीक रीतिपर पथ प्रदर्शन किये हुये जहाज का पतवार (रुख) है और सम्यग्ज्ञान आवागमनके सागरका नकशा है तो सम्यक्चारित्र वास्तवमें वह शक्ति है जो जीवनरूपी नौकाको आराम व आनंदके बंदरगाहकी ओर लेजाती है।

पृथक् २ विचार करनेसे सम्यग्दर्शन जीवनके उद्देश्य अर्थात् परमात्मापनको जाहर करता है। सम्यग्ज्ञान आवश्यक कर्मका नकशा है जब कि सम्यक चारित्र सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानके विना ध्यानमें भी नहीं आसक्ता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस तंग कड़े मार्गका भाव इच्छाओंका मारना है जिससे वह वलिष्ठ वाधक शक्तियां जो इच्छाओंसे पैदा होती हैं, नष्ट हो जावें और जीव अपनी असली हालतमें खालिस नूर ही नूर (शुद्ध जीव द्रव्य) रह जावे जो सर्वज्ञ अविनाशी आनंदका भोक्ता और हर प्रकारसे सर्वोत्तम परमात्मा है।

जो व्यक्ति इस अंतर पर, जो पापके बोझसे लदे हुए जीव और परमात्मापनके इस सर्वोच्च उद्देश्यके बीच जिसको वह प्राप्त करना चाहता है विचार करेगा तो वह शीघ्रही मुझसे इस बात पर सहमत हो जावेगा। कि तपस्याके अतिरिक्त और किसी चीजसे इच्छाओंके समूहोंको काटनेमें कोई मनुष्य कामयाव नहीं हो सक्ता है। एक सर्वज्ञ सदैव आनंदमें पूर्ण रहने वाला परमात्मा बनाना कोई सरल बात नहीं है। इस प्रकारका तीव्र वैराग्य कि जो अंतिम स्थानोंमें शारीरिक व निजी सब प्रकारके आरम्भोंको यहां तक कि लंगोटीको भी त्याग करादे हमारेलिये आवश्यक है यदि हमें आत्मिक पूर्णता प्राप्त करनी है। परन्तु प्रारम्भ ऐसा कठिन नहीं है क्योंकि क्रमसे उन्नति करनेवाली सीढ़ियोंका एक जीना मौजूद है जिसपर चढ़नेसे बराबर उन्नति होती है और जो धीरे २ और आसानीसे शिखर तक पहुंचा देता है।

सबसे प्रथम सत्य विश्वासकी प्राप्ति है जिसका भाव तत्त्वोंकी अचल श्रद्धा, और उन पवित्र महात्माओंकी पूजासे है जो तत्त्वोंके ज्ञानसे परमात्मा हो गये हैं। जैसे एक कानूनमें बड़ाईका दर्जा पानेका इच्छुक किसी बड़े कानून जाननेवालेको अपना आदर्श बनाकर अपने जीवनको उसके अनुकूल चरितार्थ करता है इसी प्रकारसे उस व्यक्तिको भी जो जीवनके शिखर पर पहुंचना चाहता है उन महात्माओंके पूज्य चरण चिन्हो पर चलना

चाहिये जो खुद परमात्मा हो गये हैं। मनमें निम्नलिखित परि-वर्तन होनेसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है।

१-कर्मकी शक्तियोंका सामान्यतः निर्बल या ढीला पड़ना।

२-बुद्धिकी तीव्रता।

३-मनका विज्ञानकी ओर आकर्षण, जिसके द्वारा सत्यकी शिक्षामें रुचि हो सके और वह ग्रहण हो सके।

४-बलिष्ठ कषायोंका हलका या मंद हो जाना, और

५-जीवके स्वरूप या गुणो पर बार २ विचार होना[१]।

मैंने इन कारणोंका बयान यहां पर इसलिये किया है जिससे कि आपके दिल पर इस बातको अंकित कर दूं कि विज्ञानकी ओर आकर्षित होना कितनी लाभदायक बात है। यह आकर्षण कुदरती मंतक (न्याय) से होता है और विशेषतया पदार्थोंके असली कारणोंके अन्वेषणसे।

सत्य विश्वास प्राप्त होते ही सत्य विश्वासीका ज्ञान सम्यग्ज्ञानमें बदल जाता है क्योंकि सम्यग्दर्शनका भाव ही तत्त्वोंमें दृढ़ श्रद्धा का होना अर्थात् उनकी सत्यताका पक्का २ यकीन होना है.

१-भाव यह है कि सम्यग्ज्ञानसे तत्त्वज्ञानका ग्रहण है और चूंकि तत्वोंको विचारने पर उनके सम्बंधी संदेहोंके समाधान होने पर ही उनमें विश्वास पैदा हो सका है अतः सम्यग्दर्शन (तत्वोंके विश्वास) में तत्त्वोंका ठीक ठीक ज्ञान गर्भित है।

सम्यग्दर्शनके-प्राप्त होते ही सम्यक् चारित्रका प्रारम्भ सबसे बुरी आदतों (लतों) व इच्छाओंके त्याग करनेसे होता है। निरर्थक अदया (हिंसा) मांसका खाना, मादक पदार्थोंका प्रयोग एवं मृगया सबसे पहले छोड़ना चाहिये। इन अत्यन्त बुरे व कठोर स्वभाववाले व्यसनोंको छोड़े बिना मोक्ष मार्ग पर चलनेका प्रयत्न निरर्थक है।

१--यह बात जानने योग्य है कि यहूदियोंके मतमें जीवित प्राणियोंका मासखाना मना था (इ० रि० ऐ० जि० ४ पृ. २४५) पारसियोंके यहां भी ऐसा कहा है (दी टीचिंग आफ ज़ोरोअस्टर पृ. ४३)

"सब प्रकारके पापोंमेंसे जो मैंने आसमानके सम्बंधमें फ़रिश्ते वह-मनके विरुद्ध और ससार संबन्धमें मवेशी और विविध प्रकारके पशुओंके विरुद्ध किये हैं यदि मैंने उनको मारा है सताया है निरपराध मारा है यदि समय पर भोजन और जल नहीं दिया है यदि मैंने उनको वधिया किया है यदि मैंने उनको लुटेरे या भेड़ियोंसे नहीं बचाया है यदि मैंने उनको गरमी व सर्दीसे रक्षित नहीं रक्खा है यदि मैंने लाभदायक पशुओंको मारा है या काम करनेवाले मवेशियों या जंगी घोड़ोंको या बकरोंको या मुर्गोंको या मुर्गियोंको। अतः यदि इन उत्तम जानवरों और उनके रक्षक वहमन दोनोंको मुझसे हानि पहुंची है और मुझसे संतुष्ट नहीं हैं तो मैं तोवा करता हूं।"

शायस्त लाशायस्त (वाव १० आयत ७--८) में ऐसा लिखा है कि "नियम यह है कि पशुओंके मारनेसे चाहे वह किसी प्रकारके हों, बचना

जिसके पांवने जीनेकी पहली सीढीको नहीं छुआ है वह छतपर कैसे पहुंचेगा ? वह परमात्मा कि जिनकी संगतिमें हम बैठना चाहते है, सब जीवोंका भला चाहते हैं। वह न किसी प्राणीको खाते हैं और न किसीको मारते हैं। फिर वह व्यक्ति जो ज़रा सी देरके जिह्वास्वादके लिये प्राणियोंको मारता और कष्ट देता है परमात्मा कैसे वन सकता है ? इसलिये सर्वदाके जीवन और आनन्दके अन्वेषीको इन बुरी आदतोंको सम्यग्दर्शन के प्राप्त होते ही छोड़ देना चाहिये। ऐसे ही कारणोंसे द्यूत व्यभिचार चोरी और झूठको भी छोड देना चाहिये। इन अत्यन्त बुरी आदतोंके छोड़ने पर सत्यके जानकारको शनैः २ अपने तईं सन्यासकी कठिनताके जीवनके लिये तैयार करना चाहिये। मुमुक्षु अन्य पुरुषोंकी भांति संसारमें रहता है और अपना विवाह एक योग्य स्त्रीसे करके जीवन व्यतीत करता है इस बातका प्रयत्न करते हुये कि उसकी हार्दिक पवित्रता, नेकी और वैराग्यमें बराबर उन्नति होती रही। गृहस्थकी आत्मोन्नतिके ११ दर्जे हैं

धार्मिक विनयकी हदतक पहुंचना चाहिये। क्योंकि सितदगरनाशकमें ऐसा आया है कि जिन मनुष्योंने बुरीतरहसे पशुओंको क़त्ल किया है उनकी सज़ा ऐसी कही है कि प्रत्येक पशुओंका हर एक बाल तलवार होकर मारनेवालेको कत्ल करता है। पशुओंमेंसे वरें बकरे हलमें चलनेवाले बैल कढाईके घोडे खरगोश मुर्गे... के मारनेसे सबसे ज्यादा परहेज करना चाहिये (से० बु० ई० जि० ५ पृ० ३१९)।

जिनको ११ प्रतिमायें कहते हैं जिनमेसे गुजर कर वह सन्यास तक पहुंचता है। वह निम्न भांति हैं-

१-मांसभक्षण इत्यादि २ निकृष्ट रुचियोंको जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है छोड़ देना।

२-निम्नलिखित ५ व्रतोंको पालना

(क) अहिंसा अर्थात् किसीको दुख न देना।

(ख) झूठ न बोलना

(ग) चोरी न करना।

(घ) व्यभिचार न करना। और

(ङ) सांसारिक पदार्थोंसे प्रीति न रखना (अपरिग्रह)।

३-दिनमें तीन दफा अर्थात् प्रातः काल दोपहर और सन्ध्या समय ध्यान (सामायिक) करना।

४-हर एक मासके कमसे कम ४ खास दिनोंमें व्रत रखना।

५-हरी (सचित्त) भाजी इत्यादिका छोड़ना।

६-सूर्यास्तके पश्चात् और सूर्योदयके पहले कुछ न खाना।

१—मैं अत्यन्त हर्षके साथ यहा पर पारसियोंकी पवित्र पुस्तकका निम्नलिखित वाक्य जो इससे अनुकूलता रखता है लिखता हू। "यह भी कहा है कि जब अंधेरा हो तो खाना उचित नहीं है क्योंकि ऐसे पुरुषकी जो ऐसा करता है एक तिहाई बुद्धि व वैभवको पिशाच और खबीस छीन लेते हैं" (सें० बु० ई० जि० ५ पृष्ठ ३१०)।

७-ब्रह्मचर्य अर्थात् अपनी स्त्रीसे भी पृथक्कता करना।

८-आरम्भ त्याग अर्थात् सब प्रकारके धन्धों और सांसारिक व्योपारसे सम्बन्ध त्यागना।

९-धनका छोड़ना अर्थात् अपनी सब सांसारिक सम्पत्ति, स्त्री पुत्रों इत्यादिको दे डालना।

१०-सांसारिक मामलातमें सम्मति देना भी बंद कर देना। (अनुमतित्याग)।

११--भोजनके निमित्त अपने ऊपर और भी क़ैद लगाना। अर्थात् केवल एक वार भोजन करना और वह भी यदि कोई आदरके साथ विना न्योता दिये हुये और खानेके समय बुलाये और कपड़ोंमें केवल लंगोटीका रखना।

ग्यारहवें प्रतिमाके पूर्ण होनेपर मुमुक्षु सन्यास अवस्थाको पहुंच जाता है और घरवाररहित तपस्वी साधु हो जाता है। यह दर्जे क़रीब २ बुढ़ापेके प्रारम्भ तक पूर्ण होते हैं जो ४५ और ५५ वर्षकी आयुके दरमियान (आज कलके समयके लिहाज़से)

महाभारतमें भी लिखा है "चढावा चढाना, स्नान श्राद्ध करना, पूजा करना, दान देना और विशेषतः भोजन रातको नहीं करना चाहिये"।

यह बात भी जानने योग्य है जैसा प्रोफेसर विरूपाक्ष बडियरने बताया है कि 'वस्त्रपूतं जलं पिबेत्' (पानीको छानकर पीना चाहिये) जैनधर्म और महाभारत दोनोंकी आज्ञा है।

समझना चाहिये। अबतक मुमुक्षु अपने जीवनका उत्तमसे उत्तम लाभ संसारको सेवा उपदेश दान इत्यादिके रूपमें देता रहा है। परन्तु वह अब अपना परलोक सुधारनेके लिये इससे किनारा करता है। साधुकी अवस्थामें इसका अब अपने बड़े वैरियो अर्थात् इच्छा और कषायोके नाशके अतिरिक्त और किसी पदार्थसे संबंध नहीं है जो व्रत कि अब वह पालन करता है वह वही हैं जिनको वह गृहस्थ दशामें भी पालता था परन्तु वह अब पूरी कठिनतासे पाले जाते हैं। उनके अतिरिक्त वह

१-चलने फिरने

२-बात चीत करने

३-खाने पीने

४-उठाने धरने

५-पाखाना पेशाब आदिके करनेमें बडी सावधानीसे कार्य्य करता है कि किसी प्राणीको कष्ट न पहुंचे। वह अपने मन वचन और शरीरको वशमें लाता है जिससे वह सांसारिक व्यवहारमें न लगे और १० प्रकारके उत्तम धर्मोपर कर्तव्यपरायण होता है जो निम्न प्रकारके हैं।

१-क्षमा २-मार्दव (इन्कसारी) ३-आर्जव (ईमानदारी) ४-शौच (मनसे लालचको निकालना) ५-सत्य, ६-संयम ७-तप, ८-त्याग, ९-आकिंचन (उदासीनता) १०-ब्रह्मचर्य इन सबके साथ 'उत्तम' शब्द जिसका अर्थ उत्तम या सर्वोत्तम

है विशेषणकी भांति लगा हुआ है। साधु आन्तरिक और वाह्य दोनों प्रकारके तप करता है और उनकी कठिनताको प्रति दिन बढ़ाता रहता है। इसका मन जीवके गुण और संसार और सांसारिक परिवर्तनो और उसकी मनोरम इच्छाओं और अनित्य दिखावे (ठाठ बाठ) पर विचार करनेमें बराबर लगा रहता है।

यह सब कठिन पहाड़की चढ़ाईकासा काम है परन्तु जैसा मैंने पहले कहा है आप किसी कार्यमें कृतकृत्यता नहीं पा सकते हैं जब तक उसकी प्राप्तिके नियम पर्याप्त न हो। निस्संदेह सम्यक् चारित्र अपनी आत्माके अनुभवका ही नाम है। अर्थात् अपनी आत्मा हीके ऐश्वर्य और वैभवके अनुभव करनेका, जो एक बहुत सरल बात जान पड़ती है। परन्तु जरा बैठकर तो देखो कि क्या तुम वास्तवमें एक क्षणके लिये भी ऐसा कर सके हो ज्यों ही तुम अपनी आत्माकी ओर ध्यान लगाकर बैठनेका इरादा करोगे त्यों ही तुम्हारी तमाम इच्छाएं, रुचियें, कामनाएं, मानसिक प्रवृत्ति, शारीरिक आवश्यकताएं, इत्यादि एक दम बगावतमें तुम्हारे विरुद्ध उठ खड़ी होगी। इन वागियोंमेंसे प्रत्येक वलिष्ठ शक्ति है। इनके नाश किये विना ये तुमको चैनसे नहीं बैठने देंगी। क्षमा इन जीवनके वैरियोंके लिये नहीं है, वे स्वयं क्षमासे परे हैं और अंत तक लड़ते हैं।

क्या इतनी कड़ी चढ़ाईके विचारसे तुमको भय मालूम होता

है ? संसारमें कोई ऐसा कार्य्य नहीं है जिसको मनुष्य नहीं कर सक्ता है यदि वह एक वार अपनी हिम्मत उसके करनेकेलिये बांधले। यदि पूर्ण कृतकृत्यता हमको तत्काल नहीं भी मिले तो भी मृत्यु हो जानेसे परिश्रम निरर्थक नहीं जाता है। ज्ञान और चारित्रका उत्तम फल जीवके साथ एक जन्मसे दूसरे जन्म पर्यन्त कार्माण शरीरके उत्तम प्रकारके परिवर्तनोंके रूपमें जाता है और आगामी जीवनके शरीर संवन्धोके निर्माणमें पूरा भाग लेता है। तव मनका उत्साह और प्रसन्नता ही आवश्यक पदार्थ, सत्य ज्ञानके प्राप्त होनेपर कृतकृत्यताके लिये हैं। यदि किसी कुशल कानूनवेत्ताको जव कि वह गोदके वच्चेकी दशामें था उन पुस्तकोंकी संख्या, जिनको उसे वादमें पढ़ना होगा, वताई जाती और उसको उसपर विचार करनेका समय दिया जाता तो निश्चय है कि वह भयसे मृत्युको प्राप्त होगया होता। परन्तु हमारे मध्य वहुतसे ऐसे पुरुष हैं जिन्होने केवल कानूनहीमें नहीं किंतु और विषयों और शिल्पोंमें भी ख्याति प्राप्त की है। और यह भी नहीं है कि मोक्षके पथिकके मार्गमें केवल कष्ट और दुख ही हों। यह सत्य है कि कुदरतमें गुलावका फूल विना कांटेके नहीं मिलता है, परन्तु यह भी इतना ही सत्य है कि कोई असली कांटा भी कुदरतमें ऐसा नहीं है जो फूल तक हमको नहीं पहुंचनेदेता यदि हमको उसके अन्वेषणका ढंग हुआवे और हम उसकी तलाशमें कर्त्तव्यपरायण हो। यदि आप कांटेको

भूलकर फूल तक पहुंचना चाहते हैं तो आपको उसके कष्टके पूरे वेगको सहन करना पड़ेगा। परन्तु यदि आप पहले कांटेसे निबटलें तो फिर फूल आपका है चाहे जहां उसको लेजावें। मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं यहांपर मोक्षमार्गके स्थानोका पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करसकूं। परन्तु इस विषयमें इतना अवश्य कहूंगा कि चंद ही दिनोंमें साधु ऐसे आनन्दका अनुभव करने लगता है जो बड़े २ करोड़पती और राजाओंके भी ध्यानमें नहीं आसकता है। गृहस्थको भी वाज़ समय उसके परिश्रमका फल अपने जीवके आन्तरिक आनंदके अनुभवसे मिल जाता है। परन्तु उसके जीवनमें वहुत कम ऐसे समय होते हैं और वे उसके कषायोंकी शांति और हार्दिक वैराग्यकी उत्तमता पर निर्भर है। साधु निर्वाण प्राप्त करनेसे पहले सर्वज्ञ-ताको प्राप्त करता है यद्यपि समयके फेरसे आजकल संसारके इस भागमें जिसमें हम सब निवास करते हैं ऐसे कोई सर्वज्ञ साधु नहीं हैं। इसका कारण यह है कि हमलोग अपने पूर्वजोंकी निसवत वहुत छोटे दर्जेके मनुष्य हैं। चूंकि हमने उनके वज्रके ऐसे हाड़ नहीं पाये हैं इसलिये उनकी भांति हम अचल ध्यान भी नहीं लगा सक्ते हैं। यद्यपि हमको आत्माका शुद्ध अचल ध्यान नहीं प्राप्त हो सका है तौ भी हम शेष और प्रकारके ध्यानोंके लाभसे वंचित नहीं है। और हमें अपने मनको इनमें अपनी दशाओं और शक्तियोके मुताविक लगाना चाहिये। परन्तु इस

बातको कभी नहीं विस्मरण करना चाहिये कि सत्य आत्मज्ञान व चारित्रका मूल अर्थात् नित्य जीवनके सदैव हरे रहनेवाले पौदेका असली बीज सम्यग्दर्शन है, जिसके निमित्त रत्नकरंड-श्रावकाचारमें जो एक बहुत प्राचीन शास्त्र है ऐसा कहा है:—

"तीनों लोक और तीनों युगोंमें जीवोंका सम्यग्दर्शनके बराबर कल्याणकारी कोई दूसरा नहीं है और न मिथ्यात्वके सदृश कोई अकल्याणकारी है। शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव, कान्ति, प्रताप, विद्या, वीर्य, कीर्ति, कुल, वृद्धि, विजय और विभवके स्वामी, कुलवान, धर्म अर्थ काम मोक्षके साधक और मनुष्योंमें शिरोमणि होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्गोंमें तीर्थंकर भगवानके भक्त होते हैं, और आठ प्रकारकी ऋद्धियोंसे तुष्टायमान और अतिशय शोभायुक्त होकर देवों और देवांगनाओंकी सभामें बहुत समय तक आनंद भोगते हैं। निर्मल सम्यग्दृष्टि पुरुष सम्यक्त्वके प्रभावसे चक्रवर्ती राजा होते हैं जिनके चरणोपर सब राजा मस्तक झुकाते हैं, और जो नौ निधियों चौदह रत्नो और ६ खंडोके स्वामी होते है। सम्यक्दर्शन ही है शरण जिनकी ऐसे जीव जरा-रहित, रोगरहित, क्षयरहित, बाधारहित, शोक भय शंकारहित परम प्रकर्षताको प्राप्त हुवा है सुख और ज्ञानका विभव जिसमें ऐसे और कर्ममलरहित मोक्ष पदको प्राप्त होते हैं। जिनेंद्रकी है भक्ति जिसके ऐसा भव्य (मोक्षगामी)

असहमत-

जीव अपरिमित देवेंद्र समूहकी महिमाको और राजाओंके मस्तकसे पूजनीय चक्रवर्तीके चक्रको तथा नीचा किया है तमाम लोक जिसने ऐसे तीर्थंकर पदको पाकर मोक्षको पाता है।"

अतः केवल यह कहना शेष रह गया है कि जो परिणाम आजके व्याख्यानमे हमने निकाले हैं वह सब जैनसिद्धांतमें सम्मिलित हैं जो विज्ञानसे नितांत सहमत पायाजाता है। इनमेंसे बहुतसे परिणामोंको हम अन्य धर्म्मोंमें भी पायेंगे जब उनके अन्वेषणका समय आवेगा।

चतुर्थ व्याख्यान ।

दार्शनिक सिद्धांत ।

आजके व्याख्यानका विषय दार्शनिक सिद्धान्त (Metaphysics) है । इसमें कुछ संशय है कि इस शब्दका यथार्थ अर्थ क्या है परन्तु प्रारम्भमें वह अरस्तुके सैद्धान्तिक विषयमें व्यवहृत किया गया था जो उसकी लिखित पुस्तकोंके संग्रहमें पदार्थ ज्ञान (Physics)की पुस्तकके पश्चात् व्यवस्थित था। परन्तु इस शब्दका भाव कुछ भी क्यों न हो मेरे विचारमें, हम विना किसी संशयके उसका संबंध उस ज्ञानसे कर सक्ते हैं जो पदार्थ ज्ञान (Physics)से उपरान्त है । अस्तु । फिजिक्स तो सत्तात्मक (विशेष) पदार्थोंके ज्ञान से सम्बन्ध रखता है और मेटाफिजिक्स उनके भेद और संबंध स्थापित करता है एवं अन्ततः उनको एक व्यवस्थित योग्य ज्ञानके तौर पर तरतीव देता है । जैसा हम पहले कह चुके हैं सिद्धान्त और विज्ञानका जोड़ा है अर्थात् उनका आपसका वियोग दोनोंका संहारक है । कारण कि विज्ञान (Science) को जीवनकी ओछी समस्याओंसे बचनेके हेतु यह आवश्यक है कि वह ज्ञानकी समस्त शाखाओंका पूर्ण रूपमें समान करनेका प्रयत्न करे और सिद्धान्तको चाहिये कि

यह प्रकृतिके नियमोंका रंचमात्र भी साथ न छोड़े ताके वह उस विरुद्धतासे जो विचारावतरण और यथार्थ प्राकृतिक क्रियाओंके मध्य पाई जाती है बच सके। अतः मेटाफिजिक्स वह विद्या है जो अनुभूत घटनाओं पर विचार करनेकी कार्रवाई या उसका फल है जो अपने अन्तिम स्वरूपमें एक सम्पूर्णरूपेण व्यवस्थित ज्ञान है जो समस्त पदार्थोंका बोध करानेको समर्थ हो और जो इस कारणवश उच्चतम उद्देशके हेतु व्यवहृत किया जा सके। यह व्याख्या हमारे अर्थ अत्यन्तावश्यक है कारण कि हमको इस समय हर प्रकारके मानसिक विचारावतरणसे कोई संबंध नहीं है। हमको सुतरां केवल उस विचारसे ग़रज है जिसका सम्बन्ध किसी न किसी प्रकारसे धर्म हो। हमारा कोई प्रयोजन मानुषिक विचारावलीके इतिहास लिखने अथवा धर्मके सम्बन्ध में विविध देशो और भाषाओंके विद्वानोकी सम्मतियोंको एकत्रित करनेसे भी नहीं है। और न हमें इतना अवकाश ही प्राप्त है। इस प्रकारका प्रयत्न केवल हमारी वर्तमानकी आवश्यक्ताओंसे असंबंधित ही नहीं होगा वल्कि उसके लिए इतना दर्कार समय और श्रम होगा जो इस व्याख्यानके विषय और व्याख्यानदाताकी योग्यताके बाहर है।

अतः हम अपनी खोजको व्यावहारिक (अमली) समस्याओं तक मर्यादित रक्खेंगे अर्थात् उन दर्शनोंतक जो प्रचलित धर्मोंसे सम्बंधित हैं। और इनमेंसे भी हम किसीका

विस्तारके साथ विवेचन नहीं करेंगे, सिवाय उस स्थानके जहां उनके वास्तविक तत्त्वोको समझनेके लिए सूक्ष्म विवेचन यथार्थ में आवश्यक प्रतीत होवे।

हम अपनी खोज अद्वैत वेदान्तसे प्रारम्भ करेंगे जिसकी यह शिक्षा है कि इस विराट् रूप (दृश्य)के पीछे जिसको पौद्गलिक संसार कहते हैं केवल एक ही सत्ता है । यह एक सत्ता ब्रह्मके नामसे अंकित है। और चूंकि यह ही एक स्थित सत्ता अथवा पदार्थ है इसलिये अन्य समस्त पदार्थोंकी सत्ता केवल तुमायशी (मायारूप) है । इसलिए संसार नाम और रूपके वण्डलके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अथवा साफ शब्दोंमें यो कहो कि वह माया है। तब प्रत्येक व्यक्तिकी आत्मा क्या है? स्वयं 'ब्रह्म'! और ब्रह्म होनेके कारणसे सर्व व्यापक, सर्वज्ञ, और सर्व शक्तिमान है परंतु न तो कार्य्योंका कर्त्ता और न उनके फलोंका भोक्ता है। (ड्यिुस्सेनका सिस्टेम ओफ दी वेदात पृ० ४६८) अतः उद्देश्य 'ब्रह्म' होना नहीं है। कारण कि आत्मा तो सदैव ही ब्रह्म है उस अवस्थामें भी है जब कि उसे इस बातका ज्ञान भी नहीं है। आत्माकी मुक्ति उसको अपने 'सत्-चित्-आनन्द'के ज्ञान होनेसे होती है जो ब्रह्मके गुणोका वाचक है। यद्यपि ब्रह्मकी व्याख्या साधारणतया 'नेति नेति' (यह नहीं, यह नहीं) है। मैं केवल इस निषेध रूप वर्णनको इस व्याख्या पर जोर देनेके लिए कि ब्रह्म मूर्तिक गुणोंसे रहित है समझता यदि यह बात न होती

कि वेदांती लोग उसका शब्दार्थ लगाते हैं। आत्माको अपने ब्रह्म होनेका अनुभव होते ही मुक्ति तुरन्त प्राप्त होती है (क्योंकि वेदान्तका सिद्धान्त "वह तू है" है न कि "वह तू हो जावेगा"। ब्रह्म ज्ञानकी प्राप्तिके साथ ही साथ जीवात्मा विश्वात्मा हो जाता है (Deussen)।

वेदान्तकी मुख्य शिक्षा निम्नप्रकार है:—

(क) संसारका मायारूप होना।

(ख) केवल एक पदार्थ या आत्माका सत्तात्मक होना

(ग) ज्ञानद्वारा मुक्तिका प्राप्त होना।

इनमेंसे प्रथम विषयके वारेमें यह लिखना उपयुक्त प्रतीत होता है कि अनुमान या न्याय (Logic) में कुछ स्वयं सिद्ध नियम मानने पडते हैं और हमारे लिये दार्शनिक नींव डालनेका प्रयत्न करना जब तक कि हम उनको स्वीकार न करें, व्यर्थ है। यह सिद्धांत एस० एन० बनर्जीद्वारा रचित न्यायकी एक छोटी सी पुस्तिकामें जिसका नाम "ऐ हेंड बुक ओफ डिडक्टिव लोजिक" है, योग्यताके साथ वर्णित हैं, और इसप्रकार हैं:—

(१) यह कि हमारे मनसे पृथक् एक पौद्गलिक (सत्तात्मक) संसार है।

(२) यह कि हमारा मन पदार्थोंका ठीक २ फोटू खींच सका है। अतः पदार्थ यथार्थमें वैसे ही हैं जैसे वह हमको प्रतीत होते हैं।

(३) यह कि संसारके निरंतर छोटे छोटे परिवर्तनोंमें क्रम और नियम विद्यमान हैं। अतः संसार सर्व कालो अर्थात् भूत भविष्यत और वर्तमानमें सब दर्शकोंकेलिए एकसा बना रहता है।

(४) यह कि सत्यको झूठसे पृथक करनेके हेतु कुछ सदैव सिद्ध (सर्व तंत्र) नियम हैं और अवश्य होने चाहिये। अर्थात् ऐसे नियम जो खोज करनेवालेको असत्य प्रमाणोंके फन्दोसे बचाते हुए सत्य तक पहुंचा सकें।

यह स्वयं प्रमाणस्वरूप सिद्धांत हैं जो आपको न्यायमें स्वीकार करने पड़ते हैं और इनसे इन्कार करना व्यर्थ है। यह न्याय 'व्याप्ति'की जड़ हैं जो उनके अभावमें नहीं बन सकी है।

अब अद्वैत वेदांतकी प्रथम व्याख्या यह है कि संसार माया है परन्तु यह उपर्युक्त नियमोंमेंसे प्रथम और तृतीयके विपरीत पडती है जिनके बमूजिब हमारे मनसे पृथक् भी एक संसारकी सत्ता है जो सर्व कालोमें अर्थात् भूत् भविष्यत् और वर्तमानमें सत्ता रूपमें रहता है। क्रम और नियमके सिलसिले भी संसारमें प्रचलित पाए जाते हैं। और निश्चयसे यह मायाके मुख्य चिन्ह नहीं है। अतः वेदांत इस क्रमशील संसारको माया माननेके कारण बुद्धिकी सभामें उपस्थित होनेका अधिकारी नहीं है।

वेदांतके दूसरे सिद्धांत अर्थात् इस विषयके संबंधमें कि इस संसारमें एक ही पदार्थ (आत्मा) सत्तात्मक है हम सांख्य दर्शनके सूत्र उसके विपरीत उपस्थित करेंगे। "यदि एक ही

'पुरुष' संसारमें होता जैसा कि वेदान्तियोका मत है तो एक मनुष्यको आनंद प्राप्त होनेसे सबको आनंद प्राप्त हो जाता और एकको दुःख होनेसे सबको दुख होता। और यही हालत क्लेश व जातिकी अवनति तथा जातिकी शुद्धता व आरोग्यता एवं जन्म व मरणके हेतुसे लोगोंकी होती। इस कारण वश संसारमें एक ही पुरुष नहीं है। बल्कि रूप, जन्म निवासस्थान, भाग, संगति वा एकांतकी अनेकताके कारण अनेक पुरुष हैं।" (सि० सि० फि० प० २५६) मेरे विचारमें सांख्यदर्शनको इस विरोधावलीकी प्रबलताको अस्वीकार करना सम्भव नहीं है।

वेदांतके तृतीय सिद्धांतके विषयमें कि मुक्ति ब्रह्मज्ञान होनेसे प्राप्त होती है मुझे ऐसा विदित होता है कि यहां भी बंध और मोक्षके संबंधमें एक बड़ा भ्रम उपस्थित है। हमसे कहा गया है कि संसारमें केवल एक ही आत्मा है और वह एक अचल एवं अमिट सत्ता है। तब फिर भला किसकी मुक्ति होगी? और किसके लिए यह सब शिक्षा और प्रचारकाण्ड रचा गया है? और उनके विषयमें जिनकी मुक्ति भूतकालमें हो चुकी है (यदि ऐसे कोई हों) क्या कहा जाए? क्या वह अब भी विद्यमान हैं अथवा नष्ट भ्रष्ट हो गए? यह भ्रम आवागमनके सिद्धांतसे जिसको वेदान्त स्वीकार करता है और भी बढ़ जाता है। आवागमन करनेवाली असंख्यात आत्माओंको केवल एक ही आत्मामेंसे अर्थात् दूसरे शब्दोंमें एक ही अखण्ड व्यक्तित्वमेंसे

निकालनेका प्रयत्न करना व्यर्थ है। यदि मोक्षको प्राप्त हुई आत्मायें एक ही सत्ताके विभाग, हालतें या सूरतें हैं तो क्या हमको यह विवशतया कहना नहीं पड़ेगा कि एक ही विभागहीन सत्ताके कुछ विभाग तो मोक्ष पा गए हैं और कुछ अन्य विभाग अनेकानेक जन्म मरणके दुःख और क्लेश भोग रहे हैं। और मोक्षका अर्थ ही कुछ नहीं ठहरता है यदि मोक्षप्राप्त आत्मा वैसा ही बना रहेगा जैसा वह इस समय है (शिक्षा यह नहीं है कि 'तू वह हो जावेगा' बल्कि यह है कि 'तू वह ही है'।)

यह विरोध व्याख्यायें मुसलमानोंके सूफीमतसे संबंधित हैं जो वेदांतके निकटतर पहुंचता है। दृष्टांतके तौर पर कि:— शहूदियोंके फिर्केका यह मत है कि आलम (संसार) ईश्वरकी छाया है।

"एक मनुष्य शीशेके मकानमें आता है और सैकड़ों ओरसे अपनी छाया शीशोंमें पड़ते हुए देखता है। इन छायाओंकी स्वयं कोई सत्ता नहीं है सुतरा उनका अस्तित्व उस मनुष्य पर ही निर्भर है इसीप्रकारसे मनुष्यके गुण और आत्मा ईश्वरके स्वाभाविक गुणोंकी छाया हैं। आलम (संसार) बाजीगरका सिक्का है जो वास्तवमें एक कपड़ेका टुकड़ा है (अर्थात् कुछ नहीं है) परंतु बाजीगरकी कारीगरीके कारणसे वह चांदीका रुपया विदित होता है। इसी प्रकार हर चीज उससे है।"

हम अपने पिछले व्याख्यानमें देख चुके हैं कि आत्मा नित्य है। कारण कि वह अपने स्वभावसे अखण्ड अर्थात् अविनाशी

है। अस्तु; वह किसीकी छाया नहीं हो सक्ती। अभाग्यवश इस सांसारिक इन्द्रजालकी व्याख्याके व्याख्याताको यह नहीं सूझा कि इस बातके साबित करनेके लिए रंचमात्र भी सार्थकता नहीं है कि केवल छायामें चेतनता, भाव, इच्छा, स्मरणशक्ति और बुद्धि हो सक्ते हैं। सूर्य्य और उसकी एक आतशी शीशेके द्वारा प्राप्तकी हुई छायाका दृष्टांत यहां असम्बंधित है क्योंकि प्रथम तो वह यथार्थ छाया ही नहीं है कारण कि सूर्य्यकी छाया वास्तवमें आतशी शीशेके द्वारा सूर्य्यकी किरणोंका एक बिन्दु पर एकत्रित करना ही है और दूसरे स्वयं सूर्य्यकी एक अखण्ड अमिट (ना बदलनेवाली) आत्मासे कि जिसमेंसे किसी प्रकार की भी किरणें नहीं निकलती हैं, तुलना नहीं की जा सक्ती है। और तीसरे इस कारणसे कि भाव, बुद्धि और इच्छा एवं चेतनताके अन्य विभाग किसी प्रकारसे भी एक पदार्थसे दूसरे पदार्थ पर मुंतकिल नहीं है जैसा कि पिछले व्याख्यानमें सिद्ध किया जा चुका है। छायासिद्धांतकी पुष्टि किसी न्यायकी व्याप्तिसे भी नहीं होती है (द्वितीय व्याख्यान देखिए) और उसको हमें विवश छोड़ना पड़ता है।

अब हम सांख्यदर्शनकी ओर, जो सर्व प्रकारके पूर्वीय और पाश्चात्य शास्त्रोंसे अनोखा है, दृष्टिपात करते हैं। इस हिन्दु सिद्धांतके विख्यात दर्शनकी पुष्टि एवं विरोधमें बहुतसे महानुभावोंने पुस्तकें लिखीं है परन्तु अभाग्यवश एक भी महानुभाव

उसके रचयिताके यथार्थ उद्देश्य तक नहीं पहुंच पाया। आपको इस दर्शनके स्थापक कपिल मुनिके बताए हुए तत्त्वोका स्मरण होगा। तो भी आपकी सुगमताके लिए मैं उनको यहांपर पुनः लिखे देता हूं:—
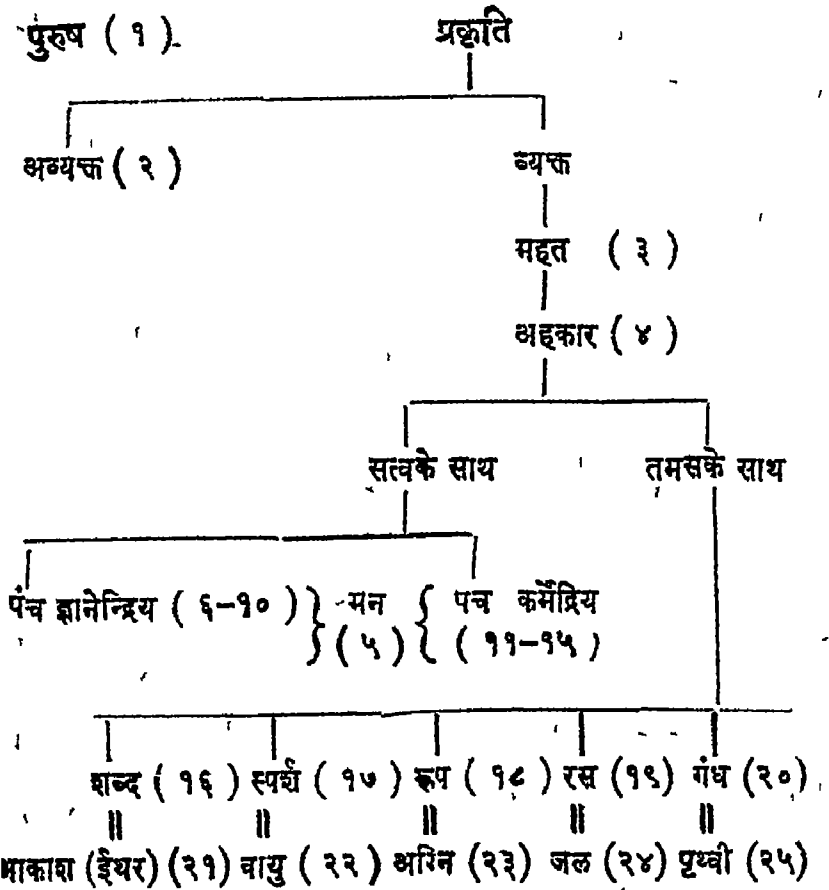
आपके सामने यह नकशा उपस्थित है जिसमें तत्त्वों और उनके स्वरूपोंका क्रम लिखित है जो महत (३) से प्रारंभ होता है, क्योंकि पहिले दो तत्त्व अनादि हैं। कपिल मुनिके मतानुसार

पुरुष केवल एक दर्शक है। न वह कर्मोंका कर्त्ता और न उनके फलोंका भोक्ता है। इस कारणसे परिवर्तनोंका संबंध केवल इस खेल अथवा दृश्य मात्रसे ही है जो फलतः सत्त्व (बुद्धि) रज (हरकत) और तम (स्थिति) इन तीनो गुणोंसे पूरित पाया जाता है। जिस समय यह तीन मुख्य गुण सत, रज, और तम समताको प्राप्त होते हैं तो यह दृश्य बन्द हो जाता है और पुरुषके देखनेके लिए कोई पदार्थ नही रहते हैं। जब फिर कुछ समयके पश्चात् प्रकृतिकी किसी अनजान शक्तिसे यह समता भंग हो जाती है तो परदा फिर उठजाता है और दृश्य पूर्वकथित रीतियोंसे पुनः प्रारंभ हो जाता है। इस प्रकार संसारकी सृष्टि और नाश क्रमवार होते रहते हैं। और सृष्टिका क्रम नाश होनेके क्रमसे नितान्त विपरीत होता है। अर्थात् जो पदार्थ सृष्टिके समय सबसे अन्तमें विकासमें आता है वह ही नाशके समय सबसे प्रथम लुप्त हो जाता है।

यह क्रम सांख्यदर्शनका अत्यन्तावश्यक भाग है और हमारेलिए भी यह बहुत आवश्यक है। कारण कि यह प्रत्यक्षतया सिद्ध करदेता है कि सांख्यकी संसारकी क्रमव्याख्या एक सुप्त मनुष्यके जागृतावस्थामें आनेकी समानता पर निर्भर है। साधारणतया सोकर उठनेवाले मनुष्यके मन पर जागृत संसारका प्रकाश करा देनेकेलिये निम्नलिखित परिवर्तनोंका अवस्थित होना संभव माना जा सक्ता है:—

अस्तु, इस प्रकार प्रत्यक्ष हो जाता है कि कपिल मुनिका दार्शनिक सिद्धान्त एक सोकर उठते हुए मनुष्यके दृष्टान्त पर अवलम्बित है। एवं यह भी अब प्रकट होगया होगा कि कपिल मुनि किसी वाह्य संसारकी सत्ताको नहीं मानते हैं सुतरां उसको अपने ही स्पर्श, गंध आदि ऐंद्रियज्ञानका मूर्तीक गुणोंमें परिवर्तित हो जाना मानते हैं। अभाग्यवश इस संवंधमें कपिलमुनिके यह ध्यानमें न आया कि ऐन्द्रिय चेतनता विलकुल मनमें ही उत्पन्न नहीं होती वलिक एक पदार्थ वाह्य उत्तेजना नामक भी है जो हमारी ऐन्द्रिय चेतनतामें बहुत बड़ा भाग लेता है। यदि उनको ऐन्द्रिय चेतनताका यह मुख्य चिन्ह विदित होता तो वे अग्नि व जल जैसे स्थूल पदार्थोंको ज्ञानसंवंधी सूक्ष्मतनमात्राओंका रूपान्तर नहीं मान लेते।

समयाभावके कारण सांख्य दर्शनकी अन्य त्रुटिका उल्लेख मैं नहीं कर सक्ता हूं जो पंच भूतो और रस रूप आदिकी समानता और भूतोंके आपसी संवंधके विषयमें उसमें पाई जाती है। इनमेंसे कुछका विवेचन तो आपको मेरी किताव 'दि की ओफ नोलेज'में मिलेगा। मैं केवल उसका हवाला देने पर ही यहां पर संतोष करूंगा।

परन्तु, यद्यपि वेदांत और सांख्य दर्शन सैद्धांतिक दृष्टिसे भ्रमात्मक हैं तो भी वे दोनो हमारे लिए विशेष मूल्यवान है क्यों कि वे हमारे हिन्दु भाइयोंके प्राचीन वैदिक विश्वास पर एक

प्रकारका प्रकाश डालते हैं। कारण कि वह दोनों वेदके प्रमाण को मानते हैं। और हिन्दू सिद्धांतके अन्य दर्शनोंके सदृश वेदकी ईश्वरीय वाणीका युक्तिद्वारा समर्थन करनेका दावा करते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि हिन्दू मत कभी न कभी इन नये किल्लोंको यदि उनमें विश्वासकी स्वीकृत व्याख्याओंके लिए सैद्धांतिक समर्थन न होता अथवा कमसे कम उनके समर्थनका दावा न होता तो अवश्य उखाड़ डालता। यह निश्चित है कि वह कभी हिन्दू मतके संबंधी नहीं माने जाते। और जो बात कि हिंदू धर्म और हिंदू सिद्धांतके विभिन्न दर्शनोंके संबंधमें यथार्थ पाई जाती हैं वह ही सूफीमत और इसलामके आपसी संबंधमें भी ठीक हैं। अस्तु, हमारे लिए विशेष जानने योग्य बात यह है कि इन तीनों दर्शनोंमें मनुष्यकी आत्माको गुण और स्वभावमें नितांत परमात्मा माना है।

अब मैं न्यायका विवेचन करूंगा। हम पहले ही देख चुके हैं कि इसकी अनोखी व्याप्ति जो एक सहधर्मी उदाहरण पर स्थापित की जाती है यथार्थ न्यायसिद्धांतके विपरीत है। परंतु इस दर्शनके संस्थापक गोतमकी व्याख्या जिसके द्वारा वह अपनी सनातनी पूर्व पक्षीका, जिसका मत है कि वाह्य संसारमें कोई सत्ता नहीं है, खण्डन करता है, अत्यंत उल्लासोत्पादक है। गौतम अपने प्रतिपक्षीके सिद्धांतको इसप्रकार काट करता है कि "प्रथम यदि किसी वाह्य पदार्थकी सत्ताका प्रमाणित

(१) बुद्धिका प्रकाश होना।

(२) उस बुद्धिमें अहंकार अर्थात् 'मैं' के संकल्पका उठना।

(३) 'मैं' अर्थात् मन, व ज्ञान व कर्म इन्द्रियोकी कृतियो और गुणोका विकसित होना।

(४) इन्द्रियोंका उत्तेजित होना अर्थात् ऐन्द्रिय दर्शन या चेतनता रस गंध आदि।

(५) ऐन्द्रिय चेतनताकी सामग्री रस गंध इत्यादिके सूक्ष्म तनमात्राओंका पंच स्थूल भूतरूप जिनके पदार्थ बने हुए हैं परिवर्तित होकर बाहरकी ओर डाले जाना।

यदि आप मायावादियोंके इस मतको अपनी दृष्टिमें रक्खें कि यह संसार देखनेवालेके मनमें है और उसके पदार्थ ऐन्द्रिय चेतनता ही हैं जिनको हम मनद्वारा जानते हैं तो आपको कपिल मुनिका सिद्धान्त समझनेमें कोई दिक्कत ज्ञात नहीं होगी। हम सांख्यके तत्त्वोकी क्रमावलीकी तुलना साथसाथ लिखकर उस क्रमसे करेंगे जिसके मूजिब विदित होता है कि कपिलमुनिने सोकर उठते हुए मनुष्यको संसारका ज्ञान होना माना है:—

सोकर उठता हुआ मन	संसारका कौतुक
(१) जागृत और सुप्तावस्थाका क्रमवार प्रगट होना।	(१) संसारकी सृष्टि और नाशका क्रमवार प्रकट होना।
(२) सुप्तावस्थामें चेतनाका नाश नहीं होता है सुतरां वहां कोई	(२) प्रलयमें पुरुषका नाश नहीं होता है बल्कि संसारका

दर्शनीय पदार्थ नहीं होता है।

कौतुक बन्द हो जाता है। अतः कोई दर्शनीय पदार्थ नहीं रहता है।

(३) जागने पर पहिले पहिल बुद्धिका प्रकाश होता है

(३) संसार क्रममें सर्व प्रथम महत (बुद्धि) प्रकाशमान होती है।

(४) बुद्धिसे अहंकारकी उत्पत्ति होती है।

(४) फिर महत् अहंकारमें रूपान्तरित हो जाती है।

(५) अहंकारसे 'मैं' का कार्य्याजय अर्थात् मन व ज्ञान व कर्म इन्द्रियां विकसित होती हैं।

(५) अहंकारसे मन व पांच ज्ञानेन्द्रियां व पांच कर्मेन्द्रियां अर्थात् हाथ पैर आदि बनते हैं

(६) तब ऐन्द्रिय दर्शन (चेतनताका भान) होता है।

(६) अहंकार इन्द्रियज्ञान अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधमें परवर्तित हो जाता है।

(७) ऐन्द्रिय दर्शनकी सामग्री बाहिरी मूर्तिक संसाररूपमें परिवर्तित हो जाती है।

(७) इन्द्रियज्ञान अर्थात् गंध आदिके सूक्ष्मतनमात्राओंका पंच स्थूल भूत अर्थात् आकाश वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीमें परिवत हो जाता है जिनका यह संसार बना है।

सके"। कणादके दर्शनमे भी बंधन वा आवागमनका यथार्थ स्वरूप नहीं बताया गया है। और न वास्तविक तत्त्वो पर ही विचार किया गया है प्रमाण जो दिए गए हैं सब मनकल्पित हैं जब कि वैज्ञानिक (Science) भाव तो अनुमानतः सर्वत्र ही अभावरूप है।

वैशेषिक दर्शनकी कठिनाइयां योग दर्शनमें भी पाई जाती हैं। कुछ लेखकोकी सम्मति है कि शब्द 'योग' एक मूल (Root) से निकला है जिसका अर्थ जोडना है। इसी भावका समावेश जैनधर्ममें पाया जाता है जहां मन, वचन और कायको आश्रवके तीन योग (प्रणालियां) माना हैं। मि० रामप्रसाद एम ए योगशास्त्रके निपुण भाषाकार हिंदूधर्मकी पुस्तकों (सेक्रेड बुक्स ओफ दि हिंदूज) में इसका अर्थ "समाधिको प्राप्त होना-ध्यान करना" करते हैं। मोक्ष मूलर साहबके अनुसार योग शब्दका अर्थ अनुमानतः किसी कार्य्यके लिए अथवा कठिन श्रमके लिए अपनेको तैयार करना है और कल्पनाओंको उठने अथवा ध्यानको विचलित होनेसे रोकना है। यहां पर किसी दूसरेसे अपने तई जोड़ देनेका प्रश्न नहीं उठता है और न ईश्वरके साथ जोडनेका। क्योंकि 'परमेश्वरमें लय होनेका विचार' योग दर्शनका कोई अंग नहीं है। "पतञ्जलि ऋषि कपिल मुनिके सदृश आत्माको अन्य समस्त पदार्थोंसे पृथक् करके ही संतोष धारण कर लेते हैं। और इस बातका

निर्णय नहीं करते कि पृथक् होनेके पश्चात् वह आत्मा कहां और किस अवस्थामें रहेगी" (राजेंद्रलाल मित्रका वाक्य, देखो सि० सि० फि० पत्र ३१०)

वास्तवमें एक व्यक्तिका किसी दूसरे व्यक्तिमें लय हो जाना असम्भव है। आत्मा एक व्यक्ति है और व्यक्तित्वमें ही उसकी सत्ता रहेगी। पतञ्जलिका ईश्वर एक सृष्टिकर्त्ता अथवा संसारका अधिपति नहीं है बल्कि केवल एक 'शुद्धात्माके रूपमें है जिस पर कर्मों, अज्ञान, वा दुखका प्रभाव नहीं पडता है और जो सर्वज्ञताके विषयमें पूर्ण है और जिससे विशेष पूर्ण कोई नहीं हो सका है। वह मोक्ष या आनंद या किसी अन्य पदार्थका दाता नहीं है बल्कि केवल ध्यानका आदर्श है । यह सिद्धांत अनुमानतः जैन सिद्धांतके समान है जो एक शुद्धात्माके महत्त्वका ध्यान और उसकी संसारी अवस्थाके जीवन चरित्रका अध्ययन अपनी महत्व पूर्ण आत्माके ध्यानमें स्थित होनेका वास्तविक उपाय बताता है।

पतञ्जलिका यह वचन भी सत्य है कि जीव प्रकृतिमें लिप्त हैं और योग दर्शनका उद्देश्य उनको प्रकृति (पुद्गल)के फन्दोंसे छुड़ानेका है। (Int to SBH. Yoga Sutras of Patanjali) परन्तु पतञ्जलिको यथार्थ तत्त्वोका कोई भान नहीं है। और न वह पुद्गलसे छुटकारा दिलानेवाले मार्गोंका कारण ही बताता है। परन्तु हमको यह बात स्मरण रखना चाहिए कि वह अपनेको योग दर्शनका संस्थापक नहीं बताता, केवल

करना असंभव हो तो उतना ही असंभव उसकी असत्ताका प्रमाणित करना होगा। और यदि स्वप्न अथवा भ्रमका दृष्टांत दिया जावे जो मृगतृष्णा अथवा नटविद्या (इन्द्रजाल) से उत्पन्न हुआ हो तो यह मानना पड़ेगा कि स्मरण शक्तिके अनुसार स्वप्न भी पहिलीकी देखी हुई वस्तुओंके दृश्यके तर्क हैं और भ्रममें भी हम किसी वस्तुका भ्रम करते हैं। यहां तक कि भ्रमात्मक ज्ञान सत्यज्ञानसे सदैव दूर हो सक्ता है " (सि० सि० फि० पृ० ४२७)।

गौतमका वचन है कि ज्ञानका संबंध मन और इंद्रियोंसे नहीं है सुतरां आत्मासे है। वह आवागमनके सिद्धांतको स्वीकार करता है। और राग, द्वेष एवं मूढ़ताको प्रधान दोष समझता है। जिनमेंसे मूढ़ता निकृष्ट है। पुण्य पापके अभावमें शरीरसे जीव पृथक् हो सक्ता है। गौतमके सिद्धांतमें ईश्वरको व्याख्या गौणरूपमें है। उसकी सत्ताकी आवश्यक्ता केवल आवागमनमें पड़े हुए अनंत जीवोंको उनके कर्म्मोंका फल देनेके लिए है।

न्यायके तत्त्वोंमें ज्ञानके यथार्थ तत्त्व, जिनको हम धर्मकी वैज्ञानिक खोजमें स्थापित कर चुके हैं, नहीं पाए जाते हैं और न उनमें मोक्षके स्वरूपका ही वर्णन है जो यथार्थ उद्देश्य है।

कणादका वैशेषिक दर्शन भी विशेषतया न्यायकी बहिन है। उसमें कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है जो अन्य स्थान

पर न पाई जावे। कणादकी विशेष योग्यता अणुओंकी छानबीन से संबंध रखती है जिनका साधारण उल्लेख न्याय दर्शनमें भी मिलता है। वैशेषिक दर्शनमें निम्न लिखित पदार्थ माने गए हैं-

(१) द्रव्य

(२) गुण

(३) कर्म्म

(४) सामान्य

(५) विशेष

(६) समवाय

(७) अभाव

द्रव्योंमें आत्मा सम्मिलित है परन्तु गुण यह हैं-रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, अगलापन, पिछलापन, बुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न (कणाद सूत्र)

इनमें परम आनंदका उल्लेख नहीं है यदि उसको 'सुख'में सम्मिलित न समझा जावे। परंतु नैय्यायिक सुखको भी दुखका एक रूप मानते हैं (देखो एस० सी० विद्याभूषणका 'न्यायसूत्र' पत्र १०२—१२३) । मोक्षके संबंधमें भी कोई यथार्थ स्वरूप वर्णित नहीं है। केवल इस प्रकार व्याख्या है कि "शरीरके संयोगका अभाव और उसके साथ ही साथ किसी अंतरंग कारण शरीरका न रहना जिसके कारण फिर जन्म नहीं हो

विचारसे यह सिद्धान्त माननीय है यद्यपि इसके स्वीकार करनेमें एक हद तक चेतावनी अवश्य करनी पडेगी। इसके विपरीत यह एक और बात विशेष उल्लेखनीय है कि भारतमें महमूद गजनवीके आक्रमणोंके और पश्चात्के अन्य मुसलमान बादशाहोके आनेके समयके लगभग वर्तमान कालकी निसबत बहुत जयादा योगी और महात्मा पाए जाते थे। मैं इसको मान लेता हूं कि प्रारम्भिक मुसलमान आक्रमणकारोंसे हिन्दूओको हृदयसे ग्लानि थी। और यदि योगमें कोई नियम उनके विध्वंस करनेका होता तो मुसलमानोंकी सफाई करदी गई होती। परन्तु योग उससमय हर दफे कार्य्यहीन हुआ! उसके कुछ शताब्दियोंके पश्चात् जब कि गौ और सूअर दोनोका मांस खानेवाले ईसाई लोग भारतवर्षमें आए तब भी योगविद्या फलहीन रही! और इससमय अकेले नहीं बल्कि मुसलमान दरवेशोकी करामातके साथमें! मुझे स्वतः इसका अनुभव बहुत कम है परन्तु जो कुछ मैंने स्वयं देखा है और इसके संबंधमें पढ़ा है उससे मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि भूतकालीन कथाओंके एक विशाल विभागको संभवताकी सीमाके बाहर माननेकेलिये कोई विशेष कारण प्रतीत नहीं होते है। परन्तु; मैं इन शब्दोंके स्थानपर अन्य शब्द व्यवहृत भी नहीं करना चाहता हूं। मेरे विचारसे अद्भुत शक्तियो और करामातोंका स्वयं कोई प्रामाणिक विज्ञान नहीं है विशेषतः उस अवस्थामें जब उसे धर्मसे नितान्त पृथक् कर

लेवें। और यह भी विदित होता है कि अद्भुत शक्तियां नियत संन्याससे उत्पन्न होती हैं यद्यपि उन्मत्त उत्तापसे भी छोटे मोटे करशमोंका हो जाना कुछ अन्तरंगकी आत्मिक शक्तियोंके प्रकाशके कारण असंभव नहीं है। परन्तु इस प्रकारके करशमे विशेषतया आवश्यक्ता पड़ने पर धोखा देते हैं और नि.कृष्ट अवस्थाओ एवं दुर्गतियोंमें मनुष्यको पहुंचाते हैं। कारण कि धर्मका सांसारिक राज्य और तड़क भड़कसे कोई संबंध नहीं है। उदासीनता और वैराग्य (इच्छारहित होना व त्याग) धर्मके मार्गपर उन्नति प्राप्त करनेको अत्यन्तावश्यक है। इसलिए जो मनुष्य शक्तिका इच्छुक हो, चाहे सांसारिक हो अथवा किसी अन्य प्रकारकी, उसके संबंधमें यह नहीं कहा जासक्ता कि उसने अपने पग उस मार्ग पर रक्खे हैं। अस्तु; यदि यह अद्भुत शक्तियां योग शास्त्रमें वर्णित मार्गसे प्राप्त भी हो सक्तीं हों तो भी वह वैरागी साधुओंको प्राप्त हो सक्ती हैं जो उनकी इच्छा नहीं करते और जो किसी शत्रुको हानि पहुंचानेके लिये भी उनका उपयोग नहीं करते हैं । अन्य मनुष्योंकेलिए उनका विचार करना भी निरर्थक है ।

अब मैं इन जगद्विख्यात हिन्दु दर्शनोंकी खोजका अन्तिम निर्णय अंकित करनेके पहिले उसके छठे दर्शनका भी कुछ वर्णन करूंगा। इस छठे दर्शनका संस्थापक जैमिनि था और यह भी एक संग्रहकर्ता विदित होता है न कि संस्थापक। यह दर्शन

संग्रहकर्त्ता कहता है । यह प्रथम सूत्रसे ही स्पष्ट है जो 'अथ योगानुशासनम्' है। एवं जिसका अर्थ यह है कि "अब योगका शुद्ध किया हुआ विषय"। अतः हमें कोई अधिकार पतञ्जलि ऋषि पर उन विषयोंकी कमताईयोंके कारण दोषारोपण करनेका नहीं है जिनको उसने केवल संग्रह एवं संशोधन किया था । स्पष्टतया इस संग्रहमें बहुत कुछ विषयका अन्य स्थानोंसे समावेश किया गया है कारण कि योगदर्शनके पांच प्रकारके यम अक्षरशः जैनधर्मके पांच व्रत ही हैं। और उनका वर्णन भी उसी क्रमसे है जिस क्रमसे जैन शास्त्रोंमें पाया जाता है। इन यमोमेंसे 'अहिंसा' फिर वही नियम है जो जैनधर्मका मुख्य लक्षण है। जैनधर्मका मुख्य वाक्य 'अहिंसा परमो धर्मः' है अर्थात् किसीको दुःख न पहुंचना ही परम धर्म है।

समाधि पर योगदर्शनमें विशेष ज़ोर दिया गया है जो यथार्थ में आत्मध्यानकी पूर्णता है। परन्तु उसका वर्णन अनिश्चित और अपूर्ण है। एवं जो उसके साधन बताए गए हैं वे भी असलीतौर पर व्यवहृत नहीं किए जा सके हैं । कारण कि गृहस्थकेलिए शुद्ध आत्मध्यान संभव नहीं है समाधि गृहस्थाश्रम और उसके पश्चात् सन्यासाश्रमके कठिन तप तपनेसे प्राप्त होती है। प्राणायाम, जिसपर वर्तमानमें हिन्दूलोग विशेष ज़ोर देते हैं वास्तवमें एक साधारण बात है। स्वयं पतञ्जलिने उसका एक साधारण उल्लेख किया है । यह केवल मनकी

चंचलताको रोकनेका उपाय है। और वहुतसे अन्यदर्शनोंमें तो इसका रंचमात्र भी उल्लेख नहीं है। और जैनधर्ममें भी इसपर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है (देखो ज्ञानार्णवजी)। वास्तविक समाधि अंतरंगसे संबंधित है और इच्छाओं एवं कामनाओंका निरोध करनेसे प्राप्त होती है। पतञ्जलि ऋषिने ध्यानके रूपोंका भी वर्णन नहीं किया है जिनसे शुद्ध आत्मविचारकी प्राप्ति होती है। जिन महाशयोंको इस संबंधमें जाननेकी इच्छा हो उन्हें मेरी 'की ओफ नोलेज' नामक पुस्तकके १२ वें अध्यायका अवलोकन करना योग्य है कि जहांपर सम्पूर्ण विषय पूर्णरूपेण वर्णित है। अब मेरे पास इतना अवसर नहीं है कि मैं यहांपर ऐसे गूढ़ विषयका विस्तारसे वर्णन कर सकूं।

अब मैं 'योगदर्शन' के विशेष चित्ताकर्षक विषयमें प्रवेश करता हूं जिसका संबंध अद्भुत शक्तियोंकी प्राप्तिसे है। मेरा विचार है कि आपमेंसे कुछ महाशयोंको इस वातके जाननेकी उत्कट इच्छा होगी कि देखें इस विषयपर खोजका अन्तिम निर्णय क्या होता है? परन्तु, महाशयो! मैं कानूनका ज्ञाता हूं और कानूनके ज्ञाताओंका चित्त स्वभावतः सुनी सुनाई वातके मानलेनेके विपरीत होता है। तब भी 'विभिन्न धर्मों और सिद्धान्तोंकी कथाओंका एक विशाल ढेर है जो निःसंदेह इस वातको साबित करता है कि कुछ अद्भुत शक्तियां, शुद्धता शीलता एवं तपस्याका जीवन व्यतीत करनेसे प्राप्त होती हैं। मेरे

"इस बातको समझानेके लिए जैमिनि यह मानता है कि एक फल अर्थात् कोई अदृष्ट वस्तु या कर्मको एक प्रकारकी पश्चात् अवस्था अथवा फलको एक अदृष्ट पूर्व अवस्था थी जो एक अनोखी अपूर्व अवस्था है और जो शुभ कर्मोंमें विद्यमान् रहनेवाले फलको व्यक्त करती है और वह यह भी कहता है कि यदि हम परमेश्वरको स्वयं पुण्य पापके सुख दुःख देनेवाला मान भी लेवें तो हमको उसे विशेष कर अत्याचार और पक्षपातका दोषी ठहराना पडेगा। अस्तु, यह विशेष योग्य प्रतीत होता है कि यह मान लिया जावे कि शुभ वा अशुभ सब कर्म्म अपना अपना फल देते हैं अथवा अन्य शब्दोंमें संसारके नैतिक प्रबंधकेलिए किसी ईश्वरको आवश्यक्ता नहीं है (सि० सि० फि० पत्र २११)।

मोक्षमूलर कर्म्मोंकी स्वयं फलदायक व्याख्या पर विवेचन करते हुए लिखते हैं कि:—

"...... जैमिनि ईश्वरको संसारमें प्रत्यक्षरूप अन्यायका दोषी नहीं ठहराता है और इसलिए प्रत्येक वस्तुको कारण कार्य्यके सिद्धांत पर अवलम्बित करता है और संसारकी असमान अवस्थाओंको शुभ और अशुभ कर्म्मोंके क्रमका प्राकृतिक फल पाता है। यह वास्तवमें नास्तिकत्व नहीं है बल्कि एक प्रकारका प्रयत्न ईश्वरको अन्याय और पक्षपातके दोषसे बचानेका है जो उसके ऊपर बारम्बार लगाया

जाता है। यह एक दूसरा प्रयत्न केवल ईश्वरकी बुद्धिको निर्दोष ठहरानेके लिए है और यह नास्तिक कहलानेका वास्तवमें अधिकारी न था चाहे हमारी उसके संबंधमें कुछ भी सम्मति हो।" सि० सि० फि० पत्र २११, २१२)।

इस कदर जैमिनिके इस मतके संबंधमें कि कर्म्मोंमें फल देनेकी शक्ति विद्यमान है, कहा गया। बलिदानके संबंधमें इस समय हम केवल महाभारतके निम्न श्लोक पर संतोष धारण करेंगे—

'अहिंसा सर्वभूतानामेतत् कृत्यतमं मतम्।
एतत्पदमनुद्विग्नं वरिष्ठं धर्मलक्षणम्॥
हिंसापराश्च ये केचिद्ये च नास्तिकवृत्तयः।
लोभमोहसमा युक्तास्ते वै निरयगामिनः॥'

[अर्थः- सबसे उत्तम धर्मका यथार्थ लक्षण अहिंसा (किसीको दुःख न पहुंचाना) है। नास्तिकत्व, दुःख पहुंचानेकी भावना, लालच आदि करनेवाले नरकगामी हैं।—अश्वमेध पर्व (प० हि० भ० भाग २ पत्र ६३७, ६३८)]।

हिन्दू दर्शनोंके संबमे हमारी खोज इस प्रकार पूर्ण हो जाती है। हम विशेषतया उन्हें आपसमें ही विरोधित देखते हैं। और यथार्थ बुद्धिके विपरीत पाते हैं। उनमें यथार्थ तत्त्वोंका अभाव है। परमोत्कृष्ट उद्देश्य जिसे वे प्राप्त करना चाहते हैं, अस्पष्ट और भ्रमात्मक है। यद्यपि वे सब वेदोंकी मान्यता करनेमें

पूर्वमीमांसाके नामसे प्रसिद्ध है और वेदान्त उत्तर मीमांसाके नामसे, जिसके अर्थ एक पश्चात्के सिद्धान्तके हैं। परन्तु इस शब्दार्थसे यह न समझ लेना चाहिये कि जैमिनिका दर्शन इन दोनोमें प्राचीन है (सि० सि० फि० पत्र १९७) बल्कि उसके विपरीत यह व्याख्या नितान्त सभव है कि जैमिनिके दर्शनका पूर्वपन कर्मकाण्डके कारण हो जिसको कुछ सज्जनोने ज्ञानकाण्डका अगवान माना है।

पूर्व मीमांसाके विषयका पता पूर्णरूपेण उसके प्रथम श्लोक से मिलता है जो 'अथातो धर्मजिज्ञासा' है और जिसका अर्थ यह हैं कि "अब धर्मके सिद्धान्तोकी खोज प्रारंभ होती है'। यह श्लोक उत्तर मीमांसाके जो वेदान्तके नामसे विशेष विख्यात हैं प्रथम श्लोकसे तुलना करने योग्य है जो 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' है और जिसका भाव है कि अब ब्रह्मकी खोज (जिज्ञासा) प्रारंभ होती है। हिन्दूधर्ममें कर्मकाण्डका विचार बलिदानके सिद्धान्त पर अवलम्बित है जिससे स्वर्ग और अन्य प्रकारके सुख और सम्पत्ति प्राप्त होते हैं। जैमिनि दर्शनमें बलिदान सिद्धांतका उल्लेख है। उसका आशय उसकी विषय सूचीसे प्रगट है जिसे हम नीचे प्रगट करते हैं —

(१) आज्ञा, वर्णन आदि आदिके प्रमाण।

(२) भजन और बलिदानसंबंधी मंत्रोंका अपूर्व फल।

(३) दैवी वाणी, वाक्य प्रबंध आदि एवं बलिदान कर्त्ताके कर्तव्य।

(४) मुख्य और गौण रीतियोंका अन्य रीतियों पर प्रभाव।

(५) बलिदान करनेका क्रम।

(६) बलिदानकारकके लक्षण, बलिदानोंके बदले आदि आदि।

(७) एक बलिदानकी रीतियोंका अन्य बलिदानके साथ व्यवहृत होना।

(८) रीतियोंके बदलनेके विषयका विशेष वर्णन।

(९) मंत्रों आदिका ठीक करना।

(१०) रीतियोंका न करना इत्यादि।

(११) क्रियाओंका दुहराना और संयोग।

(१२) बलिदान आदि करनेके मुख्य और साधारण कारण।

पूर्व मीमांसाकी उपर्युक्त विषयसूची आपको उसका ज्ञान करानेके लिए काफी होगी। मैं इस विषय पर यहां विवेचन नहीं करूंगा। हां! केवल इतना कहूंगा कि जैमिनि किसी ईश्वर या सृष्टिकर्त्ता अथवा संसारके व्यवस्थापक परमात्माको नहीं मानता है। बल्कि उसका मत है कि हमारे कर्म्मोंके फलोंका परिमाण लगाने और उनके अनुसार सुख दुख देनेके हेतु किसी धर्मराज अर्थात् ईश्वरीय न्याय कर्त्ताकी आवश्यकता नहीं है। कारण कि इनका फल प्राकृतिक रूपमें स्वयं मिल जाता है।

एकमत हैं। जैसा मोक्षमूलर साहब जो हिन्दू दर्शनोंके साथ विशेष सहानुभूति एवं प्रेम रखते हैं, कथन करते हैं:—

"....यद्यपि हम समझ सके हैं कि उन षट् दर्शनोंमें प्रत्येक, दुःखको हटानेमें सिद्धहस्त हो सका है तो भी इस बातको ज्ञात करना विशेष कठिनसाध्य है कि वह वास्तविक आनन्द जो दुःखके दूर होनेके पश्चात् रहता है क्या है? वेदान्त उस परम सुखका उल्लेख करता है जो परम ब्रह्मको प्राप्त है। परन्तु वह आनन्द जो जीवोंको ब्रह्मके आसनके निकट अर्थात् एक प्रकारके स्वर्गमें प्राप्त है वह ब्रह्म आनन्द नहीं माना जा सका है बल्कि एक अधम श्रेणीका माना गया है। उन जीवोंके लिए जिन्होंने परम ब्रह्मको जान लिया है इस स्वर्गमें कोई मनमोहक अथवा संतोषप्रद वस्तु नहीं है। उसका आनन्दमय ज्ञान ब्रह्ममें लय हो जाना है। परन्तु उसका वर्णन नहीं किया गया है। सांख्यमतका आनन्द भी अनिश्चित और अस्पष्ट है। वह आनन्द पुरुषमें ही उत्पन्न हो सका है जब वह प्रकृतिके कार्यों और जालोंसे नितान्त पृथक् हो जाता है। अन्ततः न्याय और वैशेषिक दर्शनोंका अपवर्ग (आनन्द) नितांत निषेधात्मक है जो मिथ्याज्ञानके दूर होनेसे उत्पन्न होता है। उन विभिन्न नामोंसे भी जिनको विविध दार्शनिकोंने व्यवहृत किये हैं हमको उस आनन्दका बहुत थोड़ा पता

चलता है। मुक्ति और मोक्षका अर्थ छुटकारा है, कैवल्य, का एकान्त अथवा पृथक्त्व……अमृतका अमरत्व और अपवर्गका स्वतंत्रता है।… मुझे इसमें भी संशय है कि उपनिषद् अपनी परम मुक्ति अथवा पूर्ण स्वतंत्रताका वर्णन कर सके हैं! वास्तवमें वे स्वयं स्वीकार करते हैं (तै० उप० २ ४/१, कि 'ब्रह्मके परम आनन्दके वर्णन करनेमें जिह्वा असमर्थ है। वह वहां तक पहुंच नहीं सकी।' और जब जिह्वा असमर्थ है तब विचार कुछ विशेष उत्तीर्णता प्राप्त नहीं कर सका है।" सि० थि० फि० पत्र ३७२-३७३

केवल योरोपीय शास्त्रकारोंने ही वेदोंकी शिक्षाको सैद्धान्तिक दृष्टिसे अलंकृत करनेवाले इन दर्शनोंको दूषित प्रगट नहीं किया है बल्कि हिन्दू दार्शनिक भी विशेषतया इसी ढंग पर लिखनेको वाध्य हुए हैं। हिन्दुओंकी पवित्र पुस्तकोंके नवें भाग (से० बु० हिं० ९ जिल्द) की भूमिकामें (जो एक विशेष विद्वान हिन्दू सम्पादकसमुदाय द्वारा सम्पादित हुए हैं) प्रत्यक्षरूपमें स्वीकार किया गया है कि "जैसे कि कई दफे पहिले हम कह चुके हैं…… इन षट्दर्शनोमेंसे एक भी पश्चिमीय विचारके सदृश पूर्ण सैद्धान्तिक ढंगका दर्शन न था बल्कि केवल एक प्रश्नोत्तरकी पुस्तकके सदृश है जिनमें कि वेदों और उपनिषदोंके किसी किसी सिद्धान्तको तर्क वितर्करूपमें एक विशेष प्रकारके शिष्योंको वताया है……उनको संसारके गूढ़

विषयोंको समझाये बिना ही कि जिनको वे अपनी मानसिक और आध्यात्मिक कमिताइयोंके कारण समझनेकी योग्यता नहीं रखते थे।"

इस ढंग पर दर्शनोंकी कमिताइयोंको पूर्ण करनेके प्रयत्नसे कर्त्ताओंके विश्वासकी दृढ़ता ही प्रगट होती है। परन्तु हिन्दुधर्ममें किसी स्थानपर भी उसकी पुष्टि नहीं होती है। जैसे हम पहिले कह चुके हैं ये दर्शन हिन्दू आदर्श और विश्वासोंकी जिनको कि उन्होने सैद्धान्तिक नियमो पर स्थापित करनेका व्यर्थ प्रयत्न किया, मूल्यवान साक्षी देते हैं।

चूंकि हमारा उद्देश्य हिन्दूधर्मके यथार्थ तत्त्वोंको स्पष्टीकरण करनेका है इसलिए अब मैं आपको वे व्याख्याएं बताता हूँ जिन पर यह सर्वदर्शन सहमत हैं:—

(१) आत्माकी जीव अथवा ब्रह्मरूपमें नित्यता (अमरपना)

(२) जीव कर्म बंधन और आवागमनमें फंसा हुआ है।

(३) आवागमन दुःख और क्लेशमय है।

(४) इस संसारके दुःखो और कष्टोसे निकलनेका एक मार्ग है।

इन सर्व दर्शनोका एक और विशेष लक्षण है जिसको प्रो० मोक्षमूलर निम्नलिखित शब्दोंमे अंकित करते हैं:—

" यद्यपि इन छओ यथार्थ कहलानेवाले दर्शनोमें एक विशाल दृढता पाई जाती है तो भी वह उस कालके हैं

जब कि केवल बहुतसे वैदिक देवताओंके स्थानपर एक परमेश्वरका विश्वास भी बहुत समय पहिले स्थापित ही नहीं हो चुका था वल्कि उस ईश्वरके स्थानपर भी लोग एक उच्चतम शक्ति अथवा परमात्मपने को मानने लगे थें जिसका कोई नाम सिवाय ब्रह्म वा सत्के अथवा 'मैं हूं जो मैं हूं' के नहीं था" (सि० सि० फि० पत्र ४४९-४५०)

हमको मेक्समूलर साहब यह भी बतलाते हैं—

"भारतीय दार्शनिकोंके निकट नास्तिकत्वका अर्थ हम योरूपवासियोके भावसे नितान्त विपरीत है। इसका साधारण अर्थ एक क्रियावान, व्यस्त और व्यक्तित्वधारी मनुष्यकी तरहके परमेश्वरके अस्तित्वको अस्वीकार करना है जिसको ईश्वर या प्रभु कहते हैं। परंतु हिन्दू दार्शनिकोंने उसके पीछे और उससे ऊपर एक उच्च शक्ति मानी है। चाहे वे उसे ब्रह्म या परमात्मा अथवा पुरुषके नामसे पुकारें। इस सत्ताके अस्तित्वको अस्वीकार करना था कि जिसके कारण नास्तिक यथार्थ नास्तिक समझा जाता था।"

हिन्दू सिद्धांतके विषयको पूर्ण करनेके पहिले मुझे महाभारतके अत्यन्त उपयोगी उपदेशको बताना नही विसरण करना चाहिः—ये

" नाना प्रकारके आचार्योंने अनेकानेक सिद्धांत मत चलाए है। परन्तु तुम्हें उसीको ग्रहण करना चाहिये जो न्याय,

वेद, और अच्छे सज्जनोंके विचारसे पुष्ट किया गया हो।"

('सि० सि० फि० पत्र ४५५)

अब मैं शेष समयमें बौद्ध धर्मके सिद्धान्तोंका संक्षेप वर्णन करूंगा और आगामी व्याख्यानमें वेदोंके रहस्यकी व्याख्या और इन्जील एवं अन्य पौराणिक मतोंके गूढ़ अर्थोंका वर्णन करूंगा।

यह विदित होता है कि प्रारम्भमें सैद्धान्तिक ज्ञान बुद्धकी शिक्षाका कोई आवश्यक भाग नहीं था। सच्चा धर्म एक असली शिक्षाके सिवा और कुछ न था। दु.खसे छुटकारा, मनकी शुद्धता (साधुत्व) द्वारा प्राप्त होता है। मनकी शुद्धता इच्छारहित होनेसे होती है इच्छासे निवृत्ति, तपस्या और ध्यानसे होती है जो मनमें वैराग्य उत्पन्न करते हैं अर्थात् संसार और इन्द्रिय विषयोंके निरोधसे स्वयं बुद्धका मत दो विशेष अवसरों पर निश्चित नहीं था। कभी वह सत्ताकी नित्यताको माननेवालेके रूपमें (Sasavata शाश्वत) बातचीत करता था। और कभी कभी नाश (उच्छेद) के संबंधमें वह कहता था। परन्तु वस्तुतः बुद्धका सिद्धान्त जीवकी अनित्यता पर पूर्णरूपेण जोर डालता है। बौद्ध धर्मके हीनयान अथवा अभिधर्म सम्प्रदायके अनुसार:—

"कोई आत्मा अथवा पुद्‌गल, वा सत्त्व (जानदार) वा जीव (जीवन) नहीं हैं। अर्थात् ब्राह्मण सिद्धान्तके स्वीकृत

एक अचल आत्माकी सत्तासे और आवागमनमें भ्रमित जीव अर्थात् आत्माके अस्तित्वसे भी जो शरीरसे पृथक् हो नास्तिपक्ष है। मनुष्य पांच स्कंधोंका समुदाय है अर्थात् पौद्गलिक शक्तिरूप या शरीर और चार मानसिक शक्तियों -संज्ञा, वेदना, सस्कार, और विज्ञानका व्यक्तित्व या 'मनुष्य' का वर्णन उस सामग्रीके ढंग पर किया गया है जिससे वह वनता है और उसकी सदृशता एक रथसे दी गई है जिसमें विविध वस्तुओंसे मिल कर वननेके कारण व्यक्तित्व नहीं है। (इ० रि० ऐ० जिल्द ९ पत्र ८४७)।

दूसरी सम्प्रदाय अर्थात् महायान इससे भी आगे वढ़ जाती है और वस्तुओंके अस्तित्वको ही स्वीकार नहीं करती है। यह शून्यताका सिद्धांत है जो गुमानवाद (आईडिसलइज़म) की अंतिम सीमा है। केवल वाह्य पदार्थ ही शून्य नहीं है वल्कि कोई आत्मा भी नहीं है जो विचारोंका उत्पादक हो। विचार भी शून्य हैं अर्थात् वह कोई पदार्थ नहीं हैं। शून्यता सब पदार्थोंमें है।

इन विचारोंके होते हुए यह असंभव था कि निर्वाणसे आत्माके नाश होनेका अर्थ न हो और आवागमनका भाव अशुभ कार्य्य करनेवालेके स्थान पर किसी अन्य मनुष्यको उसका फल भोगनेका न हो।

मिसेजरस डेविस (Mrs Rhys Davis) अपनी बुद्धिस्ट साईकोलोजी नामक पुस्तकके २६ वें पत्रमें यह बतलाती

है कि बौद्ध लोगोंको दुबारा जन्म करानेवाली शक्तिके स्वरूप और नियमसे परिचय नहीं है यद्यपि इसकी शिक्षामें उनका विश्वास दृढ़ है। वास्तवमें बौद्ध लोगोंको आवागमनसम्बंधी चार मुख्य तत्वों अर्थात् आश्रव, बंध, संवर, और निर्जराकी वैज्ञानिक ढंगसे अनभिज्ञता है यद्यपि उनके ग्रन्थोंमें आस्रव और संवर शब्द मिलते हैं। जैसे कि सर्वसे अन्तिम विशेषज्ञ विचारवानका मत है (इ० रि० ऐ० जि० ७ पत्र ४७२):—

"जैनी लोग इन परिभाषाओंका भाव शब्दार्थमे समझते हैं और मोक्ष प्राप्तिके मार्गके संबंधमें उन्हें व्यवहृत करते हैं। (आस्रवोंके संवर और निर्जरासे मुक्ति प्राप्त होती है)। अब यह परिभाषायें उतनी ही प्राचीन है जितना कि जैन धर्म है। क्योंकि बौद्धोंने इससे अतीव सार्थक शब्द आस्रवको ले लिया है और जैनधर्मके समान ही उसका व्यवहार किया है परन्तु शब्दार्थ रूपमें नहीं। कारण कि बौद्ध कर्म्मको सूक्ष्म पुद्गल नहीं मानते हैं और आत्माकी सत्ताको भी नहीं मानते हैं जिसमें कर्म्मोंका आस्रव हो सके। संवरके स्थान पर वे 'असवक्खय' (आस्रवक्षय) को व्यवहृत करते हैं। अब यह प्रत्यक्ष है कि बौद्ध धर्ममें आस्रवका शब्दार्थ नहीं रहा। इसी कारण यह आवश्यक है कि यह शब्द बौद्धोने किसी अन्य धर्मसे (जिसमें यह यथार्थ भावमें व्यवहृत हो) अर्थात् जैन धर्मसे लिया है।

वौद्ध संवरका भी व्यवहार करते हैं अर्थात् शीलसंवर और क्रियारूपमें 'संवृत्' का । यह शब्द ब्राह्मण आचार्यों द्वारा इस भावमें व्यवहृत नहीं हुए हैं । अतः विशेषतया यह शब्द जैनधर्मसे लिए गए हैं; जहां यह अपने शब्दार्थ रूपमें अपने यथार्थ भावको प्रकट करते हैं । इस प्रकार एक ही व्याख्यासे यह सिद्ध हो जाता है कि जैनधर्मका कर्म सिद्धांत जैनधर्ममें प्रारम्भिक और अखंडितरूपमें पूर्वसे व्यवहृत है और यह भी कि जैनधर्म वौद्ध धर्मसे प्राचीन है।"

मेरा विचार इस ओर आकर्षित है कि वौद्धमत हिंदुओंकी पेचीदा वर्ण व्यवस्थाके और जैनियोंकी कठिन तपस्याके विरोधमें संस्थापित हुआ था, न कि एक नूतन सैद्धांतिक दर्शनके रूपमें, कमसे कम प्रारंभमें तो नहीं । बुद्ध कितनेक वर्ष तक विविध धर्मों के साधुओंकी संगतिमें रहा था और उनके सिद्धांतोंसे अभिज्ञ था । यद्यपि वैज्ञानिक ढंगमें वह उनसे प्रायः अपरिचित था । एक अवसर पर उसने कहा था कि:—

"ए भाइयो! वहुतसे संसारतारक (अचेलक, अजीवक, निग्रन्थ आदि) हैं जो यह शिक्षा देते हैं और जिनका यह मत है कि जो कुछ कोई मनुष्य भोगता है चाहे वह सुख हो वा दुःख हो अथवा एसा अनुभव हो जो न सुख है और न दुःख है वह समस्त पिछले कर्म्मोंका फल है। और इस

प्रकार तप द्वारा पुराने कर्म्मोंका नाश करनेसे और नये कर्म्मोंके न करनेसे भविष्य जीवनकेलिए आस्रव नहीं होता। आस्रवके न होनेसे कर्म्मोंका नाश हो जाता है। और इस ढंग पर पापका नाश हो जाता है। और इस प्रकार दुःखका विध्वंश हो जायगा। ऐ भाइयो! निगन्थ (जैनी) ऐसा कहते हैं ... मैंने उनसे पूछा कि क्या यह सत्य है कि इसको तुम मानते हो और इसका तुम प्रचार करते हो?... ... उन्होंने उत्तर दिया . . हमारे पथप्रदर्शक नातपुत्त सर्वज्ञ हैं... .. वह अपने ज्ञानकी गंभीरतासे यह बताते हैं: तुमने भूतकालमें अशुभ कर्म्म किए हैं। इसको तुम कठिन तपस्या और कठिनाइयोको सहन करके नष्ट कर दो। और जितना तुम मनसा वाचा कर्मणासे अपनी इच्छाओंको वशमें करोगे उतना ही अशुभ कर्म्मोंका अभाव होगा। .. .... इस प्रकार अंतमें समस्त कर्म नष्ट हो जांयगे और सर्व दुःख भी। इससे हम सहमत हैं।" (Majjhima ii, 214 ff,cf. i, 238)" इ० रि० ऐ० जिल्द २ पत्र ७०।

इस सहमतिके होते हुए भी जब परीषहाजयकी कठिनाईका सामना पड़ा जिसका अर्थ संन्यासके संबंधमें सर्व प्रकारकी कठिनाइयोको सहर्ष सहन करना है और जब उसने अपनेको दुबला और कमजोर पाया परन्तु वह ज्ञान प्राप्त न हुवा जिसकी वह खोजमें था तो बुद्धने ऐसा कहा,—

"न इन कठिनाइयोंके सहन करनेवाले नागवार मार्गसे मैं उस अनोखे और उत्कृष्ट पूर्ण (आर्योंके) ज्ञानको, जो मनुष्यकी बुद्धिके बाहर है प्राप्त कर पाऊंगा। क्या यह सम्भव नहीं है कि उसके प्राप्त करनेका कोई अन्य मार्ग हो।" (इ० रि० ऐ० जिल्द २ पत्र ७०)।

उस समयसे उसने शरीरकी रक्षा पुनः प्रारंभ करदी। अंत मे वह मध्यका मार्ग जिसकी वह खोजमें था विख्यात बोधि वृक्षके नीचे प्राप्त हो गया। वह मध्यमार्ग कठिन तपस्या और वेरोकटोककी विषयकी लोलुपताके दर्मियान जो कर्मयोग (समस्त सांसारिक कार्य्योंमें निष्काम मनसे संलग्न होने) के भेषमें प्रचलित थी एक प्रकारका राजीनामा (मेल) था। अथवा यह मध्यमार्ग वैज्ञानिक दृष्टिसे सिद्ध है या असिद्ध, यह प्रश्न न था। भाव यह था कि दुःखसे हर प्रकार वचें। यदि स्वयंतप दुःखका कारण है तो उससे दुःखका नाश कैसे हो सक्ता है? वुद्धने कहा कि "दुःख बुरा है और उससे वचना चाहिए। अति (Excess) दुःख है। तप एक प्रकारकी अति है और दुःख-वर्धक है। उसके सहन करनेमें भी कोई लाभ नही है। वह फल-हीन है।" (इ० रि० ऐ जिल्द २ पत्र ७०)।

हमें यह नहीं ज्ञात है कि वुद्ध क्या विचार करता अथवा क्या इस विषय पर कहता यदि उसको यह विदित हो जाता कि वह संन्यासमें स्वयं दृढ़ता प्राप्त करनेका प्रयत्न विदुन ग्रहस्था-

श्रमका साधन किये हुए करना चाहता था। संभवतः उसने इस पर कभी ध्यान नहीं दिया कि शिखर पर पहुंचनेके लिए सीढ़ी की आवश्यकता होती है। और यह कि तपश्यासे सिवाय दुःख और क्लेशके और कुछ नहीं प्राप्त होता यदि वह सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञानके साथ न हो। इस प्रकार बुद्ध बड़ी अवस्था तक मध्यमार्गका प्रचार करता रहा। और लोगोंको दुःखसे वचनेके लिए निर्वाणकी शून्यतामें गर्त्त हो जानेका उपदेश देता रहा। वह अस्सी वर्षकी अवस्थामें सूअरका मांस खानेके पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हुवा।

बुद्धके उपदेशका प्रभाव बहुत लोगोंके हृदयो पर इस कारणसे पड़ा कि उसमें कठिन तपस्या नहीं करनी पड़ती थी और उसने हठयोगकी कठिनाइयोंको भी, जो वास्तवमें एक व्यर्थ मार्ग शारीरिक क्लेशोका है और जिसका तपस्याके यथार्थ स्वरूपोंसे जैसे जैनसिद्धान्तमें दिये हुए हैं पृथक् समझना आवश्यक है, हलका कर दिया था। परन्तु बुद्धसिद्धांतके विषयमें एवं उसके आवागमनके मतके संबधमें जिसमें कर्म्म करनेवालेके स्थान पर एक अन्य पुरुषको कर्म्मोंके फल रूप दुःख सुखको भोगना पड़ता है और उसकी मानी हुई आत्माओंकी अनित्यताकी बाबत हम चाहे जो कुछ विचार करें वा कहें तो भी हमको उसकी संसारी जीवोंके दुःखको बहुत स्पष्टरूपसे जान लेनेके लिए और उस दुःखको शब्दोंमें अपूर्व योग्यतासे चित्रित करनेके लिए अवश्य

प्रशंसा करनी पड़ती है लेखकी अपेक्षा ऐसी उत्तम भाषा कम लिखी गई है:—

"खेद है ऐसी युवावस्था पर जिसको वृद्धावस्थाका डर लगा हुआ है। शोक है आरोग्यता पर जिसको बहुतसे रोग नष्ट कर देते हैं। खेद है मनुष्य जीवन पर जो अल्प समय तक कायम रहता है। धिक्कार है उन शारीरिक आकाङ्क्षाओ पर कि जिनसे विद्वानोंके मन चलायमान हो जाते हैं। क्या अच्छा होता जो कि न वृद्धावस्था होती, न रोग होता, न मृत्यु होती और न मृत्युके क्लेश होते।"

—(देखो ललितविस्तार)

इसी धुनमें यह भी कहा गया है:—

वास्तवमें दुःखोसे भरा हुआ यह संसार है जिसमें प्रारम्भ जन्मधारण वृद्ध होना मृत्यु (विलीन होना) और फिर जन्म धारण करना होता है। शोक है ' ' ' उन सबके लिए जो जीवित हैं वृद्धावस्था और रोग एवं मृत्यु और इस प्रकार के अन्य कष्ट आते हैं।"

वास्तवमें यह संसार जो विचार रहित मनुष्यको सुख और मज़ाक़से भरपूर विदित होता है सहस्ररजनी चरित्र (अलिफ लैला) के राक्षसवाले द्वीपके सदृश है जिसके हतभाग्य क़ैदी इस वास्ते मोटे किये जाते हैं कि कुछ काल पश्चात् भक्षण किए जांय। यहां पर भी हमारे लिए नितके जन्मोंका फल, बुढ़ापा,

दुःख और मृत्युके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसमेंसे वह लोग जिन्होंने अस्तित्वके स्वरूप और जीवनकी पूर्तिको समझ लिया है और जो उदासीनभाव रखते हैं समझदार है जो अपनी शक्तिके अनुसार सांसारिक विषय वासनाओं और मनमोहक वस्तुओंसे इस मृत्युके विशल गड्ढेसे निकलनेकेलिए मुंह मोड़ते हैं। परंतु शेष मनुष्य जो विषयवासनाओं और नाच रंगकी चाटमें लिप्त हैं अथवा जो विविध प्रकारके उत्तम रसोंके आस्वादन करनेमें लगे हैं वे आवागमनके सनातनी चक्रमें बार-म्बार पड़ कर कुचले जाते हैं। और मृत्युके प्रबल जबड़ेमें उनके टुकड़े टुकड़े किए जाते हैं।

पांचवा व्याख्यान।

देवी देवताओंवाले धर्म्म।

(क)

आजका व्याख्यान एक एसे विषय पर है जिसका जानना धार्मिक बातोके समझनेकेलिये अत्यन्तावश्यक है और इसीलिये जिसका जानना मनुष्यकेलिये परमावश्यक है। आज हम किस्से कहानियोंवाले धर्म्मोंका अन्वेषण करेंगे जिनको पूर्ण प्रयत्न करने पर भी वर्तमान सभ्यके लोग नहीं समझ सके हैं। इन धर्म्मोंके जिज्ञासुओंमें बहुत कुछको मिथ्याबोध हुआ है और दोनो प्रकारके जाननेवालोंका अर्थात् स्वयम् उन धर्म्मोंके मानने वालों और बाहरी वेत्ताओंका प्रयत्न अब तक निरर्थक हुआ है। क्योंकि कुछ लोगोने तो इन विविध देशों और विविध देवालयोंके देवी देवताओंको वास्तवमें जीवित व्यक्ति और उनके आश्चर्य्यजनक कार्य्यों और असम्भव सम्बंधको उनके देवता होनेकी दलील माना है जब कि उन लोगोंने जिनके दिलोंमें किसी प्रकारके धर्म संबंधी पाखंड न थे कि जिनसे उनकी बुद्धि गुमराह हो जाती या जिन्होने अपनेको इस प्रकारके अपवादोंसे शिक्षा द्वारा स्वतन्त्र कर लिया है इन असंख्य देवी देवताओंको

प्रकाश-वर्षा-अग्नि इत्यादि जैसे नैसर्गिक घटनाओं या विविध विद्याओं व शिल्पो जैसे शासनका ज्ञान भोजन बनानेकी विद्या इत्यादिके रूपक अर्थात् खयाली किता (Personifications) समझा है। परन्तु इन विद्वान जिज्ञासुओंमेंसे एकको भी वेदों, पवित्र इन्जील या जिन्दावस्थाका भेद नहीं मिला। पूर्वीय विद्याओंके ज्ञाता (Orientalist) विचार करते हैं कि वेदोंमें कहे हुए सूर्य्य, इन्द्र और अग्निको सूर्य्य बादल और आगका अलंकार मानना और पवित्र इन्जीलके नये और पुराने शाहद नामोको एतिहासिक रीतिसे पढ़ना बस धर्म्मकी तहको पहुंच जाना है। और वर्तमान समयके विद्वानोने अपना एक प्रकारका 'प्रशंसा' समाज स्थापित कर लिया है जिसका हर एक सदस्य हर समय इस चिन्तामें लगा रहता है कि इस बात को ज्ञात करै कि उनकी इस प्रकारके अन्वेषणोकी शाबासी किसको दी जाये और इसको बिदून किसी निजी स्वार्थताके जाहिर कर दे। यदि मैं इन जिज्ञासुओंके धार्मिक अन्वेषण व मालूमात पर थोड़ा भी विचार करूं तो उसके लिये कमसे कम एक सहस्र पृष्ठोंकी पुस्तक लिखनेकी जरूरत होगी। यह बात नहीं है कि वह लोग दिलके साफ नहीं हैं या उनकी शिक्षा नाक़िस है। वास्तवमें उनमेंसे कतिपय तो ऐसे हैं कि इस समय उनके समान दूसरा योग्य नहीं है परन्तु अभाग्यवश वह सबके सब बुद्धिकी-अदूरीर्घ दृष्टिके रोगी हैं और उनका रोग

भी ऐसा है कि जिसकी उनको नितान्त सूचना नहीं है। उनकी मानसिक अनुदारताका रोग उनके एक दूसरेकी बुद्धिकी तीव्रता और उदार विचारोंकी तारीफ करते रहनेके कारण और भी ज्यादा हानिकारक हो गया है। यदि उस योग्य-प्रोफेसरने जिसने यह परिणाम निकाला कि अग्निसे भाव भौतिक अग्निसे है या उस प्रखर वक्ता आर्य्यसमाजीने जिसने उसको भोजन पकानेकी विद्या समझ लिया, अग्निके आश्चर्य्य-जनक विशेषणों पर दृष्टि दी होती तो उसको बहुत सी बातें ऐसी ज्ञात होतीं जो उसकी बुद्धिको बहुत ही कष्टदायक प्रतीत होतीं। उसको यह ज्ञात हो जाता कि पूर्व ऋषियोने उस देव-ताका उल्लेख निम्न भांतिसे किया है—

१–उसके ३ पैर ७ हाथ और ७ जिह्वाएं हैं।

२–वह सब देवतोंका पुरोहित है।

३–देवता उसके बुलानेसे आते हैं।

४–उसको भोजन कराया हुआ देवताओंको पहुंचता है और उससे उनकी पुष्टि होती है, और

५–वह भक्ष्य अभक्ष्य देवोंका भक्षक है।

इनके अतिरिक्त और भी विशेषण हैं परन्तु केवल इतने ही हमारी अवधान दृष्टि को अटकानेको पर्याप्त हैं। अब आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे अपनी अग्नि या पाक विद्यामें अग्निके इन विशेषणोंको दिखावें। तथा यह भी

प्रार्थना करता हूं कि आप जिज्ञासुओं और धुरन्धर व्याख्याताओंके सारांशोंमें इन बातोंको ढूंढें कि वर्षा या बादलने किस प्रकार अपने गुरुकी भार्य्यासे व्यभिचार किया और वह बीमारीके दाग कहां हैं जिनको कि ब्रह्माजीने अन्तत: आंखोंमें बदल दिया है। परन्तु आप चाहें जितनी खोज करें, अन्वेषण कर्ताओंके परिणामोंमे इन बातोंका आपको उत्तर नहीं मिलेगा इसके अतिरिक्त यह भी प्रश्न होता है कि अग्निका धर्म्मसे क्या सम्बंध है । और पाकविद्याका मुक्तिसे क्या नाता ? परन्तु इन प्रश्नोंका भी कोई उत्तर नहीं है। मैं पवित्र वेदके एक भजनके कुछ हिस्सेका अनुवाद जिसको एक आर्य्यसमाजीने किया है प्रस्तुत करता हूं जिससे उनके भावार्थ लगानेकी निर्बलता स्वयं प्रतीत हो जाती है:—

"१- हम इन बलिष्ठ घोडोंकी शक्ति पैदा करनेवाले गुणों का बयान करेंगे जिनमें बड़े २ गुण पाये जाते हैं या उष्णताकी उस बडी शक्तिका वर्णन करेंगे जिसको विज्ञानी लोग कार्य्यरूपमें लानेके लिये उत्पन्न करते हैं (कुरबानीके लिये नहीं)

"२- वह लोग जो इस बातका आदेश करते हैं कि केवल उसी धनको प्राप्त और क्या करना उचित है जो कि उचित रीतिसे प्राप्त हो सके और वह लोग जो कि स्वाभाविक बुद्धिमान हैं और दूसरोंसे दार्शनिक रीति·

पर उत्तमतासे प्रश्न करते हैं और निर्बुद्धियोंकी त्रुटियों को दुर करनेमें पर्याप्त योग्यता रखते हैं वह ही लोग अधिकार और शासनकी औषधिके अधिकारी हैं।

"३-लाभदायक गुणोंवाली अजा दूध देती है जो घोडोके लिये पुष्टिकारक भोजन है। उत्तमसे उत्तम अन्न उस समय लाभदायक होता है जब कि वह स्वादिष्ट मसालोंकी भांति प्रस्तुत किया जावे जिसको उत्तम रसोइयेने पाकशास्त्रानुकूल तय्यार किया हो-"

अब आप एक ही दृष्टिमें देख सकते हैं कि इस संक्षेपमें विशेष बातें यह है-

१-इसका धर्म्मसे कोई सम्बंध नहीं है-और
२-इसकी लेखनशैली पाठशालाके विद्यार्थीको भांति है न कि किसी विद्याका आलियान (वैज्ञानिक) वर्णन।

यह कहना आवश्यक नहीं है कि यह वेदके उस मन्त्रका जिसके एक भागका यह अनुवाद कहा जता है, कोई प्रामाणिक अर्थ नहीं है। यदि दुर्जनसंतोषार्थ यह मान लिया जावे कि उससे पवित्र वेदोका उपहास नहीं होता तो भी यह कहना जरूर ही पडेगा कि उससे वेदोंकी कुछ तारीफ़ भी नहीं होती, और न उस हिन्दू सम्प्रदायकी ही जो वेदोंको स्वीकार करता है।

वेदोंके समझनेमें सनातनधर्मियोंने भी कुछ कामयाबी हासिल नहीं की। उन्होंने अपने पूर्वजोंकी त्रुटियोंको अन्धेपनसे

दोहराया है और यह नहीं सोचा कि उनके अनेक देवी और देवताओंके जो कारनामे बयान किये गये हैं वह देवताओंके योग्य हैं या नहीं। इन्द्रने अपने गुरुकी स्त्रीके साथ जार-कर्म किया और देवगुरु (बृहस्पति) ने अपने बड़े भाईकी भार्य्याको भगाया और सोम यानी चन्द्रने स्वयम् देवगुरुकी स्त्रीसे एक पुत्र उत्पन्न किया। परन्तु सनातनधर्म्मावलम्बी इस प्रकारके बुरे कर्म्मों पर दृष्टि नहीं देते हैं। इन आश्चर्य्यजनक देवताओंको सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि अब उनके कारनामे जारी नहीं हैं। अर्थात् उनके सब काम पुराणोंके लिखे जानेके पहले ही खतम हो चुके थे। जीवित पुरुषोंकेलिये यह कैसे सम्भव है? विशेषतः ऐसे व्यक्तियोंके लिये जो एक क्षण भर भी अपने पड़ोसीकी स्त्रीको भगानेका खयाल किये बिदून नहीं रह सके हैं। इन देवताओंके केवल इसी विशेषणसे बुद्धिमान पुरुषोंको आखें खुल जाना चाहिये थीं परन्तु अभाग्यसे विशेषतया लोग लकीरके फकीर ही होते हैं।

तो फिर वैदिक धर्म्मकी सच्ची शिक्षा क्या है और मन्त्रोंमें कहे हुये अनेक देवी देवताओंका भेद क्या है? परन्तु इससे पहले कि मैं इन जटिल प्रश्नोंका उत्तर दूं यह आवश्यक है कि आपको मैं बतलाऊं कि उपरोक्त ३ प्रकारके वेदवेत्ता अर्थात् भयभीत सनातनधर्म्मी, डारविनी (मनुष्यको बंदरोंकी संतति स्वीकार करनेवाला) योरोपियन और अर्धडारवनी हिन्दोस्तानी

क्यों वेदोंके समझनेमें असमर्थ रहे। इसका कारण यह है कि वेदोंकी भाषा संस्कृत नहीं है जैसे पवित्र इन्जीलकी भाषा इबरानी और यूनानी और कुरान शरीफकी अरबी नहीं है। क्या इससे आपको आश्चर्य होता है? तों भी यह वास्तविक बात है। जिन धार्मिक पुस्तकोंका मैंने यहां पर उल्लेख किया है यह सब दो भाषाओंमें लिखी हुई है, एकमें नहीं। जिन अक्षरोंमें उनकी इबारत लिखी गई है वह निस्संदेह एक कौमकी भाषा है परन्तु इन शब्दोंकी एक दूसरी लिपि अर्थकी है जो इन पुस्तकोंकी असली भाषा है। धर्मवेत्ता इस छिपी हुई भाषासे नितांत अनभिज्ञ थे, उन्होंने अपनी सारी कारीगरी उन पवित्र पुस्तकोंकी विविध भाषाओंमें नकल और अनुवाद करनेमें सर्फ करदी। किन्तु भावकी तहको वह न पहुंच पाये। यही कारण है कि वेद, जेन्दावस्था, इन्जील और कुरान, उन विद्वानोंको बच्चोंकीसी कहानियां और दरियाओं और नालों और झीलोंके देवीदेवताओं से भरी हुई ज्ञात होती हैं। सामान्यतः यह पवित्र पुस्तकें स्वयम् ही हमको शब्दार्थके विरुद्ध आज्ञा देती हैं। लुई जेकोलपेट महोदय अगरोचद परीक्षा हवाला देकर हिंदू शास्त्रोंके सम्बंधमें ऐसा कहते हैं (ओकल्ट सायंस इन इण्डिया पृ० १०२):—

"पवित्र पुस्तकोंको साधारण पुस्तकोंकी भांति उनको शब्दार्थमें नहीं पढ़ना चाहिये। यदि उनका असली भाव उनके शब्दार्थसे विदित होता तो शूद्रादिको उनके अध्ययनसे क्यो रोका जाता

"" "वेद स्वयम् अपना भाव प्रगट नहीं करते हैं और वह तब ही समझमें आ सकते हैं कि जब गुरु उस वस्त्रको जिससे वह ढके हैं उतार देता है और उन बादलोंको जो उनके आंतरिक प्रकाशको छिपाये हुये हैं, हटा देता है।"

अभाग्यवश स्वयम् जेकोलिपेट हिंदुमतके समझनेमें असमर्थ रहा। यथार्थ उसको इस बातका ज्ञान जरूर हो गया था कि उसका भाव छिपा हुआ है। उसका दिमाग वर्तमान प्राकृतिक विचारोंसे इतना भरा हुआ था कि उसमें आत्मिक ज्ञानके असली नियमोंके लिये बहुत कम अवकाश था।

के-एन-अय्यर महोदय अपनी बहुमूल्य पुस्तक "दी परमेनेन्ट हिस्ट्री ओफ भारतवर्ष"में लिखते हैं कि "पवित्र शास्त्र गत समयके किस्से नहीं बताते हैं। इनमें मनुष्योंके लिये अत्यंत लाभकारी शिक्षा हैं। आत्मिक उन्नतिका वैज्ञानिक मार्ग इनमें इतिहास, भूगोल, नीति और राजनीति शासन सम्बंधी बातोंके तोर पर वर्णन किया गया है।"

वेदोंके समझनेके लिये वेदांगोंका जानना आवश्यक है। वेदाङ्गोंमें निरुक्त (अर्थका नियम) सबसे ज्यादा आवश्यक है जिसको जाने विदून किसीको वेदोंका भावार्थ समझानेकी आशा नहीं है। अपनी रची हुई महाभारतकी भूमिकामें के. एन अय्यर महोदय लिखते हैं—

"साधारण मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिये पूर्व समयके

ऋषियोंने विद्यासंबंधी बातोंको किस्से कहानियोंकी भांति उपर्युक्त रीति पर बयान किया है । निरुक्तके अनुसार जो छै अङ्गोंमें सम्मिलित हैं सच्चे भावार्थ गढ़े और नियत किये गये थे......और उनका भाव शास्त्रोंमें सावधानीके साथ उल्लेख किया गया था ताकि आरम्भ ही से त्रुटिसे सावधानी रहे ।"

यह सम्भव है कि हम अय्यर महोदयसे इस प्रकारकी शिक्षा सम्बंधमें सहमत न हों परन्तु इसमें संदेह नहीं हो सकता है कि हिंदू शास्त्रोंके निर्माता महानुभावकी यह नीयत कभी न थी कि उनका भाव केवल शब्दार्थसे समझ लिया जावे । केवल शब्द विन्यास नियम ही शब्दोंके प्रचलित अर्थके बदलनेकेलिये प्रयोग नहीं किया गया है किन्तु उदाहरण और अन्य प्रकारके अलंकार भी खूब दिल खोल कर प्रयोगमें लाये गये हैं यहांतक कि मानुषिक विचार एक ऐसे चित्ताकर्षक और उत्तम वस्त्रोंमें सजा हुआ पाया जाता है जो अन्वेषणकर्त्ताकी बुद्धिको हर समय पर धोखा देता है । यहूदियोंकी पवित्र पुस्तक और न्यू टेस्टमेन्टमें एक नियम जिसको शब्दोंका गणित अर्थ करना अनुचित न होगा लेखकके वास्तविक भावको छिपानेकेलिये प्रयोग किया गया है । यहूदियोंके मतका आंतरिक भाव 'कबबाला' है । एस. एल. मेकग्रेगर मेथर्ज महोदय अपनी 'कबबाला अनवील्ड'की भूमिकामें लिखते हैं कि—

"इस बातको अब लोग समझने लगे हैं कि इन्जीलमें जिस को सम्भवतः और सब पुस्तकोंको निसवत लोग बहुत कम समझ पाये हैं, असंख्य ऐसी आयात लिखी हैं जिनको ऐसी कुंजीके विदून जो उनके असली भावको खोल सके, कोई नहीं समझ सक्ता है। यह कुंजी कववालामें मिलेगी"। कववाला ३ हिस्सोंमें विभाजित है जिमेट्रिया, नौटेरिकोन और तेमुरु। इनमेंसे जिमेट्रिया शब्दोंके मूल्य पर निर्भर है और यह बताता है कि जो शब्द एक संख्याके होते हैं वह एकार्थवाची भी होते हैं। शेष दो बहुत पेचदार हैं जैसे किसी शब्दके अक्षरोंको पृथक् २ शब्द मानकर उनसे एक जुमला बनाना इत्यादि। मगर हमको उनसे यहां पर कुछ सम्बंध नहीं है। यहूदियोंके गुप्त वेदान्तमें इसप्रकारके अङ्कगणित या संख्या पर बहुत जोर दिया गया है। इबरानी भाषामें हिन्दुसे पृथक् नहीं है। हर एक अक्षरकी एक विशेष संख्या है जैसे अ = १, ब = २, ज = ३, द = ४। इस संख्यापर यह नियम निर्भर है कि हर शब्द एक रकम या परिमाण है और हर रकम एक शब्द। इस प्रकारका का खाका शुमार उर्दू फारसीमें भी है जिसको सामान्यतः अवजद (केकेहरा) कहते हैं। ज्ञात होता है कि यहूदियोंने अपनी पवित्र पुस्तकोंमें इसका बहुत प्रयोग किया है। इसप्रकार उनकी पवित्र पुस्तकें केवल रहस्योंका एक समूह हैं जिनका भाव उससमय ज्ञात हो सक्ता है, जब उनकी इबारतका गुप्त भाव प्रत्यक्ष हो जावे।

"कवबालाके अनुसार यह सब गुप्त रहस्य यहूदियोंके शास्त्रोंमे विद्यमान हैं। अनभिज्ञ लोग उनको नहीं समझ सक्ते हैं परन्तु उन लोगोंको जो आत्मिकतामें प्रवेश करते हैं उनका रहस्य बताया जाता है। उनको इस गुप्त आत्म-विद्याकी अटल बातें, जो शास्त्रोंके अक्षरों और शब्दोंके अन्दर छिपे रहते हैं ज्ञात हो जाती हैं।" (इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका ११ वां ऐडीशन जि० १५ पृ० ६२१) इ० रि० ऐ० जि० ७ पृ० ६२२ आरटिकिल कवालाके अनुसार–

"गुप्त विद्या (धर्म्म) कोई नया पौदा नहीं है यद्यपि इस फिलासोफाके प्रारम्भ और सम्बत और कारणोंका पता लगाना अत्यन्त कठिन है तो भी यह बात पर्याप्त रीतिसे विश्वास योग्य है कि उसकी जड़ें भूत कालमें बहुत दूर तक प्रसारित है और यह कि सन ईसवीके मध्य शताब्दियोंका कवाला यहूदियोंके सिद्धान्तका प्रारम्भ नहीं किन्तु अन्त है।"

इस प्रकारकी गुप्त शिक्षाका इन्जीलके नये अहदनामेमें भी प्रयोग किया गया है। जे-एम-प्राइस महोदय हमको बताते हैं। (देखो दि एपोकेलिप्स अनूसील्ड पृ० १) कि:—

"प्राचीन धर्म्मों और ईसाई मतकी पुस्तकोंका हर एक जिज्ञासु इस बातसे प्रभावित हो जाता है कि इनमेंसे हर एकमें एक छिपे रहस्य अर्थात् ऐसे गुप्त ज्ञानके चिन्ह पाये

जाते हैं जो वहुत समयसे वरावर चले आये हैं इस छिपी हुई विद्याका वार २ उल्लेख इन्जीलके नये अहदनामेमें मिलता है और उपनिषदोंमें और अन्य प्राचीन शास्त्रोंमें भी कि जिनमें उसके कतिपय छिपे हुये रहस्योंको सावधानीसे प्रकट किया गया है और इधर उधरके दृश्योसे जो उसके प्राप्त हुये हैं, यह प्रत्यक्ष रीतिसे स्पष्ट है कि वह सव पुराने धर्म्मों और फिलासफों (दर्शनों) में वास्तवमें एक थी और यथार्थमें उन सवकी वुनियाद थी। ईसायियोंकी क्लीसियाके आरम्भमें, जो एक गुप्त समाज Secret society की भांति थी इस मर्मविद्याकी वहुत सावधानीसे रक्षाकी जाती थी। और इस नियमानुसार कि वहुतसे वुलाये जाते हैं परंतु उनमेंसे चन्द ही चुने जाते हैं वह केवल उन्हीको सिखाई जाती थी जो उसकी शिक्षाके अधिकारी समझे जाते थे। राजनीतिकी धर्मविरुद्ध पालिसी और स्वार्थी पादरियोकी चारित्र सम्वंधी निर्वलताओंके कारण आरम्भ हीकी शताब्दियोंमें ईसाइयोके समाजसे यह मर्मज्ञान जाता रहा। और उसके स्थानपर वादकी शताब्दियोंमें नये और पुराने अहद नामोके शब्दोंकी जाहरी मृतशिक्षा, पर ईश्वरपूजनका एक आज्ञानुवर्ती नियम स्थापित किया गया। इस खयाल पर कि इन्जीलमें आकाशवाणीकी भांति मनुष्यके साथ ईश्वरके गतकालके वर्तावका उल्लेख है उसके ऐति-

हासिक भाग पर बहुत ज्यादा जोर दिया गया है जब कि वह पुस्तकें जिनकी शिक्षा अलङ्कारयुक्त और रहस्यपूर्ण है, इतिहास समझकर पढ़ी जाती हैं।"

प्रकाशितवाक्य पुस्तककी गुप्तशिक्षाके निमित्त प्राइस साहब ज़ोरके साथ लिखते हैं (देखो दि एपोक्लिप्स अन्सीलड पृ० ५):-

"कि वह गुप्त ब्रह्मज्ञानकी कुंजी है जो हर समयके लिये एकसां है और सब विश्वासों और फिलासफोंसे बढ़ कर है। अर्थात् उस गुप्त ज्ञानकी कुंजी, जो वास्तवमें इसी कारण गुप्त है कि वह हर एक छोटेसे छोटे और निर्बुद्धि से निर्बुद्धि आत्माके हृदयमें गुप्तरूपसे उपस्थित है और उसकी प्राप्तिकेलिये स्वयं उसके अतिरिक्त और कोई उसके खोलनेकी कुञ्जी भी नहीं घुमा सका है...... साफ शब्दोंमें..... वह मसीहकी कहानीके गुप्त रहस्यको प्रगट करदेती है। वह यह बताती है कि ईसूमसीहका वास्तवमें क्या भाव है? वह सांपके प्राचीन भेदको जो शैतान या खबीस कहलाता है, प्रगट करदेती है। वह मनुष्यकी भांतिके जगत् ईश्वरका खंडन करती है। और अत्यन्त उत्तम रीतिसे अमरत्वकी प्राप्तिके असली एक मात्र साधनका वर्णन करती है।"

यह कोई नवीन घड़न्त नहीं है जो मैं आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूं। ऐसे पुराने समय जैसे कि ईसाइयोंके सम्वत्की

चौथी शताब्दीमें भी ओरीजेनने जो इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिकाके अनुसार ईसाई समाजका सबसे प्रख्यात और प्रखर विद्वान था, गुप्त रहस्यकी रीतिको पवित्र इन्जीलकी शिक्षाकी तहतक पहुंचनेके लिए प्रयोग किया था। ओरीजेनको पूरा विश्वास था कि नवीन और प्राचीन अहदनामोंमें एक अक्षर भी ऐसा नहीं है जो ईश्वरीय अर्थ और रहस्यसे रिक्त हो। वह प्रश्न करता है:—

"परन्तु क्यों कर हम इस गुप्त विचारके साथ इन्जीलकी ऐसी कहानियोंको सहमत कर सकते हैं जैसे 'लूत'का अपनी पुत्रियोंसे एकान्तसेवी होना, इबराहीमका पहले अपनी एक स्त्रीसे और बादको दूसरी स्त्रीसे व्यभिचार कराना, सूर्य्यके निर्माण होनेके पूर्व तीन दिन और रातका होना। ऐसा कौन निर्बुद्धि होगा जो यह मानले कि ईश्वरने एक साधारण मालीकी भांति अदनके बगीचेमें पेड़ लगाये। अर्थात् वास्तवमें ऐसे पेड़ लगाये कि जिनको लोग देख सकें और स्पर्श कर सकें और इनमेंसे एकको जीवनका और दूसरेको नेकी व बदीके ज्ञानका पेड़ कायम किया, जिनके फलोंको मनुष्य अपने प्राकृतिक जबड़ोंसे चबा सकें। कौन इसको स्वीकार कर सकता है कि ईश्वर इस बगीचेमें टहला करता था या इसको कि आदम एक पेड़के नीचे छिप गया और काइन ईश्वरके चेहरे (सामने) से भाग गया। बुद्धिमान पाठक

इसके पूछनेके अधिकारी हैं कि ईश्वरका चेहरा क्या है और किस प्रकारसे कोई उससे भाग सकता है? केवल पुराने अहद्‌नामेमें ही ऐसी बातें नहीं मिलती हैं जिनको कोई बुद्धिमान या सभ्य व्यक्ति वास्तविक घटना या सच्चा इतिहास नहीं कह सकता है, नये अहद्‌नामेकी इन्जीलोंमें भी ऐसे किस्से भरे हुए हैं। यह कैसे सत्य हो सकता है या किस प्रकार ऐतिहासिक घटना कहा जा सकता है कि एक ही पहाडके शिखरसे प्राकृतिक चक्षुओं द्वारा, फारिस, साईथिया और भारतके सम्पूर्ण देश एक ही समयमें पास पास दृष्टिगोचर हो सकें। इस प्रकारके अनेक किस्से सावधानीसे पढ़नेवालेको इन्जीलमें मिलेंगे . देखो दि हिस्ट्री ओफ दि न्यू टेस्टमेंट क्रिटिसिज्म लेखक एफ० सी० कोनीबेयर पृ० ९-१०)

यदि हम इन्जीलको इतिहास मान कर पढ़ें तो वेदोकी भांति वह विरुद्ध और झूठे भावोंसे पूर्ण पाई जाती है। और इतिहासके रूपमें इसकी सत्यता विवादास्पद है। स्वयं ईसाई अन्वेषणकर्ताओंने जिन्होंने पक्षपातको छोड कर अनुसंधान किया है पवित्र इन्जीलके बाज भागोंको स्पष्टतया जाली स्वीकार करनेके लिये अपनेको बाध्य पाया है (Encyelo, Brt विषय बाईबिल) मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं इन्जीलके परस्पर विरोधोंको आपको दिखाऊं परन्तु मैं थ्यूसोफिस्ट जिल्द

३५ पृ० ३६६ के एक विद्वत्तापूर्ण निवन्धका कुछ अंश सक्षेप रूपमें जिसमें कुछ विरोधोंका उल्लेख है आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूं,—

"इन्जीलें परस्पर एक दूसरेका विरोध करती हैं। और यूहन्नाकी इन्जील शेष ३ इन्जीलोंसे इस कदर विरुद्ध है कि सब जिज्ञासुओंने इसमें और शेष सब इन्जीलोंमें जो जीवन चरित्रकी भांति लिखी हुई हैं विवेचन किया है... . इसके अतिरिक्त कि युहन्ना मसीहका उल्लेख शेष ३ इन्जीलोंसे वहुत विरोधके साथ करता है वह ईसूके रात्रि भोजनका (Supper) उल्लेख नहीं करता है, वह ईसूकी मृत्युकी दूसरी तिथि नियत करता, है, वह निस्तारपर्व्वकी ३ ईदोंका उल्लेख करता है जब कि और लेखक केवल एकहीका करते हैं। और वह ईसूकी जीवनसम्बंधी सब घटनाएं एकशल्ममें होना बताता है जब कि औरके अनुसार ईसूके जीवनका अन्तिमभाग ही वहां व्यतीत हुआ। यूहन्नाकी इन्जीलमें जोन वपतिस्मा देनेवालेका अभिप्राय वहुत कम रह जाता है। उसमें करामातें है। अर्थात् वह ज्यादा आश्चर्यजनक हैं और साथ ही साथ वह गुप्त रहस्योंकी ओर संकेत करती है। ईसूका सब जीवन शेष तीनों इन्जीलोंसे वहुत ज्यादा है और 'लोगोस' (ईश्वर वाक्य)की भांति है। परन्तु साथ ही में ईसूको वह योसुफका पुत्र वताता है और कुमारीके

बच्चा होनेका उल्लेख नहीं करता है।......न शेष ३ इंजीलें परस्पर सहमत होती हैं, मत्ती ईसूकी जन्मतिथि ईस्वी सनसे ४ वर्ष पूर्व हिरोदके समयमें निर्धारित करता है। लूका उसको १० वर्ष पश्चात् नियत करता है अर्थात् सं० ६ ईस्वीमें। परन्तु आगे चलकर वह प्रतिपादन करता है कि तिवारय कैसरके राज्यके १५ वीं वर्ष (=२९ई०)में मसीह ३० वर्षका था।......मरकस करामाती जन्मका उल्लेख नहीं करता है। मत्ती और लूका यूसूको २ विविध वंशावली यूसुफ और दाऊदके वंशमें देते हैं।......परन्तु यह कुमारी से उत्पन्न होनेकी विरोधी है। यदि मरियम और यूसुफ़को करामाती जन्मका ज्ञान होता तो वह जब मसीहने हेकलमें अपने पिताके काममें संलग्न होनेका उल्लेख किया था (देखो लूकाकी इन्जील बाब २ आयत ५०) आश्चर्यान्वित न होते। इन ३ जीवनचरित्र सम्बंधी इन्जीलोंमें लिखित करामातें बहुत कुछ एक भांतिकी हैं परंतु जिन दशाओंमें उनका घटित होना वर्णन किया गया है वह बहुत विरोधी है.....सबसे बड़ी करामात लज़रसका जिलाना केवल यूहन्ना की इन्जीलमें पाया जाता है। शेष करामातें......प्रायः अलंकार हैं (जैसे रोटियोंकी संख्याका बढ़ जाना, पानीको मदिरा कर देना इत्यादि)। जो पुरुष क्रास (सूली) के नीचे मौजूद थे उनके नाम दो इन्जीलोंमें एकसे नहीं मिलते

मसीहके जी उठनेके निमित्त इनके लेखक एक दूसरेसे परस्पर विरोध रखते हैं। मरकसकी इन्जीलके १६ वें बावकी ६ वींसे २०वीं आयतोंका लेख बादका बढ़ाया हुआ है। ......लूकाकी ऐतिहासिक कल्पनाएं झूठी हैं। हिरोद कभी बादशाह न था किन्तु गवरनर था। कुरोनियको ईसूके इतिहाससे ला मिलाता है जो सन् ७ से ११ इस्वी तक हाकिम था और इसलिये ईसूकी कहानीका उससे कोई सम्बंध नहीं है। वह लुसानियका भी उल्लेख करता है यद्यपि वह ईसूके उत्पन्न होनेसे ३४ वर्ष पूर्व मृत हो चुका था ..इन्जीलोंके लेखक जो दरियामें वपतिस्मा देनेका वर्णन करते हैं और विशेषतया यरदन नदीमें, जहां स्नान करना भी मना था, पेलस्तीनके व्यवहारोसे परिचित न थे। लूकाकी इन्जीलमें दो महायाजकों कियाफा और हन्नसके एक ही समयमें मौजूद होनेका उल्लेख है जो असम्भव है। ईसूका हैकलके उस भागमें शिक्षा देना कहा गया है जो केवल बलिदानके लिये निर्दिष्ट था। व्याख्यान पूजामंदिरमें हुआ करता था।... इन्जीलोंकी कहानियोका यहूदियोंकी शरासे मुकाबला करनेपर आश्चर्यजनक विरोध पाये जाते हैं। धार्मिक पर्वोंके दिवस कानूनी कारवाई नितांत मना थी। इसलिये ईसूका मुकद्दमा निस्तारके पर्व्वके दिन नहीं हो सकता था, ऐसे समयो पर हथियार लेकर फिरना भी मना था।

अतः महायाजक हेकल सिपाहियोको उस दिन मसीहके वन्दी करनेके लिये नहीं भेज सकते थे और पतरस निश्चय ही तलवार लेकर नहीं जा सकता था।"

ऊपरके आख्यानमें इन्जीलके केवल थोड़ेसे विरोध दिखाये गये है परंतु योरोपियन अनुसंधानने केवल उसके विरोध ढूंढने पर ही संतोष नहीं किया है, उसने इन्जीलोंके निकासका भी अन्वेषण किया है। और इस अनुसंधानके परिमाणकी भांति अब यह जाहर किया गया है कि—

"ईसाईयोकी पवित्र पुस्तकोकी बहुतसी करामाती और मामूली बातें जिनको कि ईसाई लोग ऐतिहासिक घटनाएं या ऐसी अधिकताएं मानते है जो एक अजीव धार्मिक मास्टर और संस्थापकके जीवन चरित्र पर जमा हो गये हैं, निश्चय प्राचीन समयको कहानियोंसे लिये गये हैं। और इसलिं ईसाई मतके बानीको विवादास्पद सत्ता भी जिसका वजूद कुछ लोगोंने केवल मान लिया है और कुछ लोगोने अनुमानतः सिद्ध किया है, इतना ही संदिग्ध है जितना पुरानी कहानियोंके, अर्ध खुदाबन्दोका। ..... मुख्यतया दलील यह है कि जब इंजीलोंके यूसूकी कहानियोंका हर आवश्यक भाग कम या ज्यादा स्पष्ट रीतिसे धार्मिक कहानियोंकी प्रकारका साबित होता है (शिक्षाके लिहाजसे भी उतना ही जितना चारित्रके लिहाज़से) तो फिर नितांत कोई बात शेष नहीं रहती जो

किसी व्यक्तिको इस बातका अधिकारी ठहरावें कि वह यूसूके नामके पीछे किसी स्थूल सत्ताको निर्धारित कर सके। जैसा कि जिज्ञासुओंको ज्ञात है ज्ञानवीनको तवारीखमें यह राय कोई नवीन बात नहीं है यद्यपि उसके कारण सम्भव है कि नवीन हों। यदि पहली शताब्दिमें नहीं तो दूसरीमें एक फिर्का डोसेटो कहाता था दीन ईस्वीके प्रचारकको एक प्रकारका शरीररहित छाया मानता था जो सलीब पाता हुआसा कहीं प्रतीत होता था। और वहुतसे ईसाई मर्म्मज्ञ उसको केवल एक सामान्य भाव खयाल करते थे। इनमेंसे एक या दूसरी सम्मति प्रायः वादकी शताब्दियोंमें वार २ मिलती है। पादरियों तथा साधारण जनोंकी एक गुप्त जमायत भी जो १०२२ के निकट ओरलियंसके स्थान पर तोड़ दी गई थी और जो यूसूके सम्बंधमे दोसेटी समाजकीसी सम्मति रखती थी और १६ वीं शताब्दिमें इंग्लिस्तान और अन्य देशोंमें विविध प्रकारके फिर्के पाये जाते हैं जिन्होंने ईसाई मतके प्रचारककी सत्ताको एक गुप्त रहस्य माना है। पुनः १५ वीं शताब्दिमे वालेटेयर वोलिंग ब्रुकके कुछ शिष्योंका उल्लेख करता है जिन्होंने इतिहासकी नीव पर यूसूकी सत्तासे इनकार किया है और फ्रांसके राजविप्लवके समय केवल वोलने और डुपुईकी ही किताबें नहीं बनी हैं कि जिन्होंने इन्जीलोंकी जीवनीको एक प्रकारका ज्योति मंडल सम्बंधी

एक अलङ्कार माना है किन्तु एक गुम नाम जर्मनकी लिखी हुई पुस्तकका भी पता मिलता है जिसका उल्लेख फ्रौसने दिया है और जिसने मसीहको एक आदर्श माना है जो यहूदियोंको पहलेसे ज्ञात था यद्यपि वह यहूदियोंके आदर्शसे कुछ विलक्षण था।" (देखो क्रिश्चिएनेटी एटमियोलाजी जे० एम० रावेर्टसन् लिखित, पृ० २७६)।

एक और विख्यात लेखक और ऐसा लेखक जो बहुत दिनों तक स्वयम् पादरीके पद पर रहा अतन्तः जिसे उसने त्याग कर दिया जोजफ मक्केव है जो अपनी पुस्तक बैंकपृसी ओफ रिलीजन के पृ० १६२ व उसके पश्चात् लिखता है कि—

"धार्मिक तुलनाकी विद्या..... इस बातका अनुसंधान करती है कि इन्जीलोके ईसूका खयाल कैसे उत्पन्न हुआ? और यह कोई कठिन बात नहीं है। हम यह नहीं जानते हैं कि इन्जीलें कहां लिखी गई थी परन्तु हम यह जानते हैं कि जिस समय वह लिखी गई थीं उस समय ईस्वी धर्म्म रोम के अतिरिक्त पूर्वीय सीमा पर कमसे कम एलगेजन्डरियासे कोरेन्थ तक प्रस्तारित था और मौजूद इन्जीलें उस भूमि समूहमें लिखी गई थीं। इन शहरोंमें सब धर्मोंके किस्से और पुजारी विद्यमान थे। मिश्र सिरिया फारस-यूनान-रोम और राज्यके दूसरे कम विख्यात स्थानोंके पुजारियोंने अपने २ मन्दिर हर जगह बना रक्खे थे और अपने मतोंका प्रचार

करते थे। धार्मिक किस्से कहानियां और रीतियां एक फिर्केसे दूसरेमें सरलतासे फैल जाती थीं। दूर देशोंके धर्मोंमें भी बहुतसे किस्से परस्पर एकसे होते थे।.. धार्मिक रहस्योंके गढ़नेके लिये संसारके इतिहासमे इस प्रकारकी और कोई कुठाली रोमके पूर्वीय किनारेकी भांति न थी जैसी पहली शताब्दिकी रोमकी बादशाहत, जिसमें विविधि जातियां मिलकर एक हो गई थीं।

पुराने राज्योंके लेखों, प्राचीन धर्मके शास्त्रों और ईसाई पादरियो और अन्य लेखकोंके विचारोंसे यह बात अब स्पष्ट हो गई है कि ईसूकी जीवनीकी मुख्य घटनाएं उस भूमिकी जातियोंमें पहले हीसे विद्यमान थीं।

बीमारोंको चंगा करना और अन्य अलौकिक आविष्कार किसी विशेष अनुसंधानकी आवश्यकता नहीं रखते हैं। ऐसे अलौकिक कार्य्य केवल पुराने अहद्नामे हीमें पवित्र पुरुषोंने प्राप्त नहीं किये है किन्तु वह उस अन्ध विश्वासके समय हर एक जाति और धर्म्ममें पाये जाते है।.. राईट आनरेबिल जे० एम० रोबर्टसनके लेखोंमें धार्मिक तुलनाके इस आवश्यक भागका पूर्ण और युक्तियुक्त अनुसंधान मिलता है।

वास्तवमें रोबर्टसन महोदयने इञ्जीलकी कहानियोंका प्राचीन कहानियोंसे इतना ब्योरावार साम्य पाया है कि उनको इस बातका पूर्ण विश्वास हो गया है कि ईसू वास्त-

वमें कोई व्यक्ति न था और उसके कुल हालात एक कहानी हैं जो एक धार्मिक नाटक या गुप्तलीला पर निर्भर हैं।...जो साक्षी कि रोबर्टसन महोदयने इकट्ठा की है और जिसके एक भागका सर जे० जी० फ्रेज़रने अपनी पुस्तक गोलडेन बाउमें तफसीलके साथ उल्लेख किया है और विस्तृत किया है वह पक्षपातरहित व्यक्तिको इस बातके विश्वास दिलानेको पर्याप्त है कि ईसूके जन्म, जी उठने और गुनाहोंके किफारेके खयालात केवल तत्कालीन धर्म्मोंकी विख्यात कहानियां है जो ईसू पर लगादी गई हैं।...... मसीहकी मृत्यु और उसका जी उठना शायद एक साधारण ईसाईके लिये ईसाई धर्म्मके असली और अनोखे रहस्य हैं किन्तु हर एक बुद्धिमान पादरी शताब्दियोंसे इस बातसे विज्ञ है कि रोमके राज्यमें जिसमें ईसाई मतका आरंभ हुआ, एक ईश्वरकी मृत्यु और उसके जी उठनेका वार्षिक त्योहार बहुतसे धर्म्मोंमें मनाया जाता था। मिश्रके आसाईरस, बेबीलोनियाके तम्मुज (एडोनिस) और फ्रेजियाके एटिस के मतवादियोंने इस वार्षिक उत्सवको अज्ञात समयसे मनाया था और उसको रोम राज्यके जाति सम्मेलनने तमाम पूर्वीय संसारमें प्रस्तरित कर दिया था। यूनानी लोग इस उत्सवको ईसूके जन्मसे शताब्दियों पूर्व मनाने लगे थे। ईरानमें मिथराके मतवालेने भी उसको मनाया

था । 'यह कहना गलत नहीं है कि उस प्राचीन संसारमें मसीहके समयके पहले कोई शहर भी ऐसा नहीं था जिसमें एक या ज्यादह विविध धर्म्मोंके मंदिर ऐसे मौजूद नहीं थे जो किसी न किसी खुदावन्दके मरने और जी उठनेकी परिपाटीको बडी धूम धामसे सर्व साधारणमें वार्षिक न मनाते हों।"

मिथराके मंदिरोंमें तो ईसाई मतसे इस कदर सापेक्षता पाई जाती थी कि दोबारा जीवित होकर उठनेवाले खुदावन्दको इन्जीलके खास शब्दोंमें अर्थात् "खुदाका बरी जो संसारके पापोंको दूर करता है" कह कर बधाई दी जाती थी। निश्चय यह सब इस विचारको झूठा करता है कि नवीन अहदनामेका नायक ईसू मसीह कोई ऐतिहासिक पुरुष था । और निःसंदेह यह बडे आश्चर्य्यकी बात है कि ईश्वरने अपने पुत्रकी सत्ताको किसी पिछले या पहले पैगम्बर पर द्योतन नहीं किया । विशेषतया ऐसे पुत्रकी सत्ताको जैसे ईसू, जो संसारका मोक्ष प्रदाता है। इसके विरुद्ध इशेयह नबी द्वारा ईश्वरने प्रत्यक्षरीतिसे हमको बताया था (देखो इन्जील इशेयह बात ४३ आयत ११):—

"मैं और मैं ही ईश्वर हूं और मेरे सिवाय कोई मोक्ष दाता नहीं है"।

इसका खंडन कभी नहीं हुआ किंतु इसका अनुमोदन असज़की इन्जीलसे होता है (देखो बाब ४ आयत ८):—

"एक अकेला है और कोई दूसरा नहीं है। हां उसके न कोई बेटा है और न भाई है" ।

क्या वही ईश्वर जो यूसूका पिता कहा जाता है यहां पर बोल रहा है? यदि ऐसा है तो वह अपने पुत्रकी सत्तासे इनकार क्यों करता है? और क्या यह वही खुदावन्द है जिसको हिन्दू ईश्वर, मुसलमान अल्लाह और पार्सी अहूरामज़्दाके नामसे पूजते हैं। यदि ऐसा है तो उसने इनलोगोंको भी यह क्यों नहीं बता दिया कि उसके एक पुत्र है। इसलाम ईसाई मतके ६ सौ वर्ष बाद स्थापित हुआ था और कहा जाता है कि वह इलहाम पर निर्भर है तो फिर इसका क्या कारण है कि महम्मदने यूसूके ईश्वर पुत्र होनेसे इनकार किया। यहां पर गौरके लिये काफी मसाला है। हम इन दोनों बातोंमेंसे एक न एक पर स्थिर होनेके लिये बाध्य होते हैं कि या तो यूसूका आसमानी बाप, हिन्दुओंका ईश्वर, मुसलमानोका अल्लाह और जरदश्तका अहूरामजदा नहीं है अथवा इन सब धर्म्मोंकी पुस्तक ऐतिहासिक रूपमें नहीं लिखी गई हैं। सत्य यह है कि इन्जीलें स्वयम् इसबातको प्रगट करदेती हैं कि वह गुप्तभाषामें लिखी गई हैं जिसका भाव समझना अत्यन्तावश्यक है। यूसूकी शिक्षा दृष्टांतों द्वारा होती थी जिनका भाव बार २ शिष्योंको समझाया जाता था और तिसपर भी वह प्रायः नहीं समझते थे (देखो मरकसकी इन्जील बाब ९ आयतें ३१-३२, लूकाकी इन्जील बाब १८ आयतें ३२-३४ व मरकसकी इन्जील बाब ६ आयत १०) यह भी कहा जाता है ईसूने अपने जी उठनेके पश्चात् अपने शिष्योंकी बुद्धिको प्रका-

शित किया (देखो लूकाकी इन्जील बाब २४ आयत ४५) जिससे कि वह पवित्र पुस्तकोंको समझ सके।

यह मनादी कि धर्मशून्य लोगोंको वास्तविक धार्मिक नियम न बताये जायें मत्तीकी इन्जीलमें (बाब ७ आयत ६) निम्न लिखित विचारणीय शब्दोंमें की गई है:—

"पाक वस्तु कुत्तोंको न दो और अपने मोती सुअरोंके आगे न डालो। ऐसा न हो कि वह उनको पांवके नीचे रौंदें और पलट कर तुम्हे फाड डालें।"

बनी ईसराइलको यशै नबीने (बाब ६ आयत ६) प्रथम ही बताया था कि "तुम श्रवण अवश्य करते हो परन्तु तुम समझते नहीं हो। और तुम देखते जरूर हो परन्तु तुम विचार नहीं करते हो"। ईसू इससे सहमत होता है और इसका पूरे तौरसे समर्थन करता है जब वह कहता है (देखो मत्तीकी इन्जील बाब १३ आयत १३ व १५) कि:—

"इसलिये मैं उनसे दृष्टांतोंमें बोलता हूं कि वह देखते हुए नहीं देखते हैं और सुनते हुए नहीं सुनते और न वह समझते हैं . क्योंकि इन लोगोंके दिलोंपर चरबी छागई है और उनके कान सुननेमें मन्द पड़ गये हैं और उन्होंने अपनी आंखें बन्द करली हैं।"

"जिसके कान हों वह सुनले" यह वाक्य ईसूका तकिया कलाम था जिसको वह बार २ कहा करता था (देखो मत्तीकी

इन्जील बाब १३ आयत ६)। तो ज्ञात होता है कि नवीन अहद-नामे इन्जीलकी शिक्षामें कोई बात ऐसी थी कि जिसके लिये देखने सुनने समझनेकी आवश्यक्ता थी। स्पष्ट शब्दोंमें शिक्षा नहीं दी जाती थी। पवित्र उपदेशक लोगोंको ऐतिहासिक शिक्षा नहीं देता था यद्यपि बादमें उसने इतिहासके निर्म्माणमें एक बहुत बड़ा भाग लिया।

नये अहद नामेकी इन्जीलके लेखकोंने भी यहूदियोंके प्राचीन शास्त्रोंको शाब्दिक अर्थोंमें नहीं समझा था। यसूने एक दफा ऐसा कहा है " तुमको सत्य ज्ञात हो जायेगा और सत्य तुमको मुक्त (free) करादेगा" (यूहन्नाकी इन्जील बाब ८ आयत ३२)। नीतिके ज्ञाताओंसे जो स्वयम् सत्य के शिक्षक होनेका दावा करते थे, उसने कहा (देखो लूकाकी इन्जील बाब ११ आयत ५२) किः—

"ऐ नीतिके ज्ञाताओ! तुम पर खेद है कि तुमने ज्ञानकी कुन्जी खोदी तुमने आप भी प्रवेश न किया और अन्य प्रवेश करनेहारोंको तुमने रोका।"

वर्तमान समयके "बुद्धिमान" पादरीको इसबातका थोड़ा भी परिज्ञान नहीं है कि इस आयतका क्या भाव है? निश्चय वह किसी कुंजीके निमित्त कुछ नहीं जानता है। विशेषतया ज्ञानकी कुंजीसे तो वह नितान्त अनभिज्ञ है। और न उसने किसी हाल या स्थानका उल्लेख, सुना है कि जिसमें प्रवेश करनेसे

नीतिके अभागी ज्ञाताओंने स्वयं अपनेको और अपने भक्तों (अनुयायियों)को उस कुंजीके खोदेनेके कारण वंचित कर लिया है। इसको हर एक स्थानपर इतिहास ही इतिहास दृष्टि पड़ता है। अर्थात् यहोवाकी देवनिन्दक और मूर्तिपूजक बनी इसराइलके साथ गाढ़ प्रेमका इतिहास या एक नवीन विज्ञापित किये गये ईश्वरपुत्रकी जीवनीका इतिहास जिसने पापियोंको मोक्ष दिलानेके लिये धारण किया। निरर्थक ही इन्जीलोंके लेखक चिल्ला २ कर अपना गला दुखाते हैं कि जो पढे सो समझे (मत्तीकी इन्जील बाब २४ आयत १५) ऐसे विश्वासी हम अपने इतिहासके हैं कि हम इस आज्ञासे प्रभावित नहीं हो सकते हैं। इन्जीलकी पुस्तक प्रकाशित वाक्यमें भी ऐसा ही कहा है (देखो बाब २ आयत ७) कि:—

"जिसके कान हो वह सुने कि आत्मा समाजोंसे क्या कहता है। जो विजयी होगा मैं उसको जीवनके वृक्षमेंसे जो ईश्वरीय बागके मध्यमें है, खानेको दूंगा"।

मैं विचार करता हूं कि मिसालोंकी तादाद बढाना निरर्थक है। यहां पर नितान्त स्पष्ट रीतिसे मामला यह है कि जो पुस्तकें ऐतिहासिक नहीं हैं वह इतिहास समझ कर पढी गई हैं। केवल एक बाप और बेटेका नाता ही जहां दोनों सदैवके और समकालीन कहे जाते हैं ऐतिहासिक भावके निषेध करनेको पर्याप्त है। जैसा कि मैने 'की ओफ नालिज' में कहा है। हमारे

समक्ष यहां पर ऐसा मामला नहीं है कि जहां एक प्रारम्भिक ऐतिहासिक घटना पश्चात्‌की देववत् प्रतिष्ठाको समझानेके लिये आवश्यक हो। वह दस्तावेजात (शास्त्र) जो हमारे समक्ष उपस्थित हैं निरे अलङ्काररूप हैं। उनको इतिहास मानलेना असम्भव है। जो ऐतिहासिक व्यक्ति कि वास्तवमें इन धार्मिक अलङ्कारोंके बडे और उलझे हुए अम्बारके पीछे है वह उस प्रारम्भिक पुस्तकका लेखक है जिसके ऊपर एक दूसरेसे विरोध रखनेवाली इन्जीलें, ज्ञात होता है, लिखी गई हैं। अभाग्यवश उसने अपनेको जाहिर करना युक्तियुक्त नहीं समझा। यह वात कि वह वहुत वुद्धिमान और समझदार व्यक्ति था और मर्मज्ञान और योग विद्याके सूक्ष्म विषयोका पूरा २ ज्ञाता था उसके लेखोंसे प्रगट है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि हम इन्जीलकी रिवा-यतोंको स्पष्ट कारणोंके हेतु उसके जीवनके कृत्य नियत करनेसे वञ्चित हैं। यूसूके जीवन सम्वधमें इन्जीलोंमें जो विरोध पाये जाते हैं वह ऐसे जान बूझकर पैदा किये हुए ज्ञात होते हैं कि उसके जीवनकी एक भी घटना वास्तविक समयकी वास्तविक घटना नहीं कही जा सक्ती है। एक ओर तो उदाहरणों और दृष्टान्तोंके ढेर लगे मिलते हैं और दूसरी ओर एक अत्यन्त लोभायमान सङ्कल्प पाया जाता है जो घटनाओंके नैसर्गिक नातेको तोडने, पुरुषोंके रचने, व्यवस्थाओंको उलटादेने, सम्व-तोंके पलटने और हर प्रकारसे यह प्रगट करने पर कि इतिहास

उलटी पलटी ही होनी चाहिये, प्रस्तुत है। परिणाम प्रत्यक्ष है। लेखकोंको इस बातकी चिन्ता थी कि पढनेवाले उनके लेखोंको ऐतिहासिक रीतिसे न पढलें, और उन्होंने ऐतिहासिक भावके निषेध करनेमें कोई कसर न उठा रक्खी। नये अहदनामेकी इन्जीलें इस प्रकार जीव (=यूसू) की आत्मिक उन्नतिका वर्णन करती हैं न कि एक व्यक्ति यूसूकी जीवनी और शिक्षाका, जिनको कई लेखकोंने लिखा हो।

अतः हमारी सम्मति यह है कि हिन्दु शास्त्रोंकी भांति इन्जीलके विरोध भी या तो पुस्तकोंके लेखकोंने ऐतिहासिक भावके निषेधके लिये इरादतन पैदा किये हैं या दृष्टान्तरूपी अलङ्कारोंकी रचनामें स्वयं पैदा हो गये हैं। हम अभी देखेंगे कि वह सम्मति केवल ठीक ही नहीं साबित होगी, प्रत्युत इन्जीलकी शिक्षाको प्राचीन धर्मों और साथ ही साथ सत्य वैज्ञानिक शिक्षासे परस्पर सहमत करा देगी।

अब मैं इसलामकी ओर आता हूं जिसको आप मानते हैं कि करीब १३ सौ वर्ष हुए कि एक महम्मद नामी व्यक्तिने जिसका बादमें इतिहाससे बहुत कुछ सम्बंध हो गया, स्थापित किया था। इसलामका धर्म्मशास्त्र भी अलङ्कार रूपमें लिखित है। उसमें विशेषतः इन्जीलके पुराने अहदनामेकी इबारत सम्मिलित हैं और इसके अतिरिक्त कुछ रिवायतें व हदीस और भी हैं। इसका विश्वास है कि—एक प्रारब्धकी तख्ती है

जिसके ऊपर अल्लाहने आरम्भ सृष्टिके समय भाग्यकी लेखनीसे भाग्य निर्माण किया था जिसका हाल तो भी यहूदियों और ईसाईयोंको ज्ञात न था। शेष रिवायतोंमें कुरानमें ज़ुल कुरनेन की कहानी याजूज माजूज भ्राताओंकी जीवनी और शैतानकी अवज्ञा रहस्य पूर्ण हैं। इस विषयमें कि यह सब साफ साफ केवल किस्सोंकी भांति जैसे आदमकी अवज्ञाकी कहानी हैं, आजकल कोई संदेह नहीं कर सकता है। स्वयम् मुसलमानोंका एक फिर्का था कि जिसने निश्चय इस बातको स्वीकार किया कि कुरान शरीफका भाव केवल अलङ्काररूप है। जैसा इ० रि० ए० जि० ९ पृ० ८८१ में आया है:—

"इसलामी फिलासिफाका एक बड़ा प्रश्न यह था कि वह अपना सम्बंध कुरान और हदीसमें कहे हुए धर्मसे प्रत्यक्ष रीतिसे स्थापन करै। बहुतसे मुसलमान विद्वान जिन्होने कि आलंकारिक भाव (रीति)को यूनानियोंसे हांसिल किया था और जो उपर्युक्त प्रश्नसे थोडी बहुत जानकारी रखते थे इस प्रयत्नमें संलग्न थे कि शराके मजमूनको आध्यात्मिक अर्थमें लावें। जिन लोगोंने इस नियमका पूरा २ प्रयोग किया वह बातनी (आभ्यन्तरिक) कहाते थे। उच्च कोटिके मर्मज्ञ, बुद्धिमान और स्वतंत्र विचारवाले (Free Thinkers) लोग सब इस भांति एक ही परिणाम पर पहुंच गये। एक और विषय जो उन सबको स्वीकार था यह था कि शब्दका आंतरिक अर्थ

अर्थात् सत्यता केवल थोड़े ही पुरुषोंको ज्ञात था चाहे वह ईश्वरीय प्रकाश (मर्मज्ञ)से हो या अपने विचार (फिलसफा या स्वतन्त्र विचारवाले) से"

पुनः यह भी सूचना हमें प्राप्त होती है कि अरस्तूके मुसलमान चेले इस सम्मतिसे साधारणतया सहमत थे । उदाहरण के तौर पर इवरुषकी यह सम्मति थी कि बुद्धि और ईमानमें कोई कारण विरोधका नहीं हो सकता है । क्योंकि ईमानके स्तम्भ निस्संदेह फिलसफाके नियमोंके प्रतिरूप ही हैं जो अलंकाररूपमें वर्णन किये गये हैं (पूर्वकथित प्रमाण) । वास्तवमें जो मान प्रारम्भके इसलामी प्रचारकोंके हृदयोंमें फिलसफाके लिये था वह इस बातकी साक्षी है कि उनको इस बातका विश्वास था कि हदीसकी आयतोंमें और विज्ञानमें परस्पर एक वास्तविक आंतरिक मित्रता है । इस बातका प्रभाव इस परिणाम पर नहीं पड़ता है कि मुसलमानोंका अत्याचार बादकी शताब्दियोंमें ज्ञानके नाश होनेका बहुत कुछ कारण हुआ। स्वयम् पैगम्बर साहबने हदीसमें बुद्धिकी बहुत सराहनाकी है और प्रतिपादन किया है "वह व्यक्ति मृत्युको नहीं प्राप्त होता है जो अपने जीवनको ज्ञानोपार्जनमें लगाता है" (दि सेयिंग्स ऑफ मोहम्मद) हजरत अलीकी बाबत भी यह कहा जाता है कि उन्होंने ऐसा आदेश किया है कि "फिलसफा ईमान्दारकी खोई हुई भेड है । यदि तुम्हें उसको काफिरोंसे प्राप्त

करना पडे तो भी प्राप्त करो" हि० रि० ए० जि० ६ पृ० ८७८।
इसी द्वारा हमें ज्ञात होता है कि अरस्तू पर विश्वास रखनेवाले मुसलमान इस बातको स्वीकार करते थे कि फिलसफा सत्यताका उत्तम दर्जा है जो मनुष्य प्राप्त कर सकता है। पश्चात्के विचार करने वालोंमेंसे सादी शीराजीने ज्ञानके ऊपर ज्यादासे ज्यादा जोर दिया है जब उसने कथन किया है कि बेइल्म नतवां खुदारा शनाख्त (ज्ञानके बिना ईश्वरका बोध नहीं हो सकता है) अतः यह प्रत्यक्ष है कि कुरान शरीफकी इबारतको भी हमें शाब्दिक अर्थोंमें नहीं पढ़ना चाहिये और ऐसी रवायतोंके जैसे वर्जित फलका खाना इत्यादिका इसलामके सिद्धांतोंमें सम्मलित हो जाना, इसलामी शास्त्रको भी एक दम उसी प्रकारका लेख साबित करता है जैसे कि वेद और इन्जीलके नये और पुराने अहदनामोंकी पुस्तकें हैं।

अब हम चन्द धार्मिक प्रतिरूपोंका भाव स्वयम् बतायेंगे। सबसे प्रथम हम गणेशजीका उल्लेख करेंगे जो इस बात पर हठ करते हैं कि सब देवताओंसे पहले उनकी पूजा की जावे। गणेशके लक्षण निम्न भांति हैं-

"१-वह चूहे पर सवार होता है।

२-उसके शरीरमें मानुषिक देहमें हस्तिकी सूंड़ जुडी हुई है।

३-वह देवताओंमें सबसे छोटा है।

४-परन्तु जब उसका आदर कार्य्यके प्रारम्भमें न किया जाये तो सबसे ज्यादा खोटा है।

५-वह लड्डू खाता है। और

६-उसका नाम एकदंत है क्योंकि उसकी सूंडमें दो दांतोंके स्थान पर एक ही दांत है।"

इस बालक देवताका पता आज पर्य्यन्त किसी जिज्ञासुको नहीं लगा क्योंकि वह सब सांसारिक पदार्थोंमें ही उसका अन्वेषण करते रहे। असली भेद उसका इस समयमें पहले पहल 'दी की ओफ नालिज' में दिया गया था। गणेशका भाव बुद्धि या समझ है जैसा कि निम्न सदृशताओंसे प्रगट है।

१-चूहा जो सब पदार्थोंके काट डालनेके कारण बहुत ज्यादा विख्यात है उस ज्ञानका चिन्ह है जिसको एनेलिसिस (Analysis = विद्या) कहते हैं।

२-गणेश जिसका शरीर मानुषिक देह और हाथीको सूंडसे जुड़कर बना है स्वयम् संयोग आत्मक (Synthesis) ज्ञान की मूर्ति है।

३-बुद्धि देवताओ (दैविक गुण) में सबसे कम उमर वाला (बच्चा) है क्योंकि वह आवागमनके चक्रमें सदैवसे घूमने वाली आत्माको, जब वह मोक्ष पानेके करीब होता है तब ही प्राप्त होती है।

४-यद्यपि बुद्धि देवताओंमें सबसे छोटी है वह इस बात पर हठ करती है कि कार्यारम्भ पर उसका पूजन किया जावे। क्योंकि विचार पूर्वक कार्य्यसम्पादन न करनेसे नाश अवश्य होता है।

५–जड्डूका भाव बुद्धिके फलसे है क्योंकि बुद्धिमान पुरुष स्वाभाविक रीतिसे आनंद (खुशी = मिठाई) का स्वाद लेता है और:—

६–एक दन्तका संकेत अद्वैतवादके नियमके 'एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" की ओर है (ब्रह्म एक है और इसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है) जो अद्वैत फिलसफाके अनुकूल बुद्धिका अन्तिम परिणाम है।

यह हृदयग्राही मूर्ति गणेशजीकी है यह रोचक और समझकी बढ़ानेवाली भी है, जैसा कि इस परिचयपत्रसे जो कहे हुये दान्तमें छिपा हुआ है, प्रगट है इस उत्तम प्रतिरूप (Pereunification) का रचियता एक अद्वैतवादी था जिसका ज्ञान इतना ही ठीक पाया जाता है जितना कि वह आश्चर्य्यजनक है। अतः गणेश जिससे हमने अभी साक्षात् किया है किसी जंगली मस्तिष्कको, जो वायु वर्षाको देवी देवता मानने पर तुला हुआ हो, गढन्त नहीं है किंतु मोक्ष प्राप्तिके सबसे आवश्यक जरियाकी काव्यकी मूर्ति है। क्योंकि यह प्रगट है कि ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती जैसा कि वेद (हिंदु शास्त्र) में आया है–ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः (ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती है)—ज्ञानके देवको नमस्कार करनेके पश्चात् अवश्य वैदिक धर्म्मके देवताओंके वास्तविकताके अनुशीलनमें संलग्न होंगे। जैसा कि वेदोंका अत्यन्त विख्यात भाष्यकार सायण कहता है,

वैदिक देवताओंमें सबसे बडे तीन हैं जो वास्तवमें एकहीमें सम्मिलित हो जाते हैं। यह तीन-सूर्य्य, इन्द्र और अग्नि हैं जिनके निमित्त वर्तमानके लोगोने बहुत त्रुटियां की हैं। इनकी असलीयत समझनेके लिये धार्मिक विज्ञानके वह परिणाम जो हम एक पिछले व्याख्यानमें दे चुके हैं, स्मरण योग्य हैं। उनको संक्षेपतः मैं यहां पर कहूंगा जिससे प्रमाण देनेमें सरलता हो। वह इस प्रकार है--

१--आत्मा एक द्रव्य है जो सर्वज्ञताकी योग्यता रखता है। अर्थात् वह सर्वज्ञ होता यदि वह उस अपवित्रताके मेलसे जो उसके साथ लगा हुआ है, पृथक् होता।

२--अपवित्र आत्मा इन्द्रियो द्वारा वाह्य संसारसे व्यापारमें संलग्न है और आवागमनमें चक्कर खाता है।

३-तपस्या और इन्द्रियनिग्रह, परमात्मापन् और पूर्णता की प्राप्तिके साधन हैं।

दूसरे शब्दोंमें हर एक आत्मामें परमात्मा होजानेकी योग्यता विद्यमान है परन्तु वह जब तक पुद्गलसे वेष्टित है तब तक वह संसारी जीव (अपवित्र अवस्थामें) ही है और तपस्या द्वारा पुद्गलसे निष्क्रांति हो सकती है। अतः ३ बातें, जो मोक्षके चाहने वालेको जाननी आवश्यक हैं, वह यह हैं:—

१-शुद्ध जीव द्रव्यका स्वरूप।

२-जीवात्मा (अपवित्रात्मा) की दशा। और

३-अपवित्रताके हटानेके उपाय।

अब मैं आपको बताता हूं कि यही तीनों बातें वह विषय है जो हिंदु देवालयमें तीन बडे देवताओं सूर्य्य, इन्द्र और अग्निके रूपमें पेश किए गये हैं।

१-सूर्य्य सर्वज्ञताका दृष्टांत (चिन्ह) है क्योंकि जिस प्रकार सूर्य्यके आसमानमें निकलनेसे सब पदार्थ दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार जब सर्वज्ञताका गुण जीवमें प्रादुर्भूत हो जाता है वह सब पदार्थोंको प्रकाशमान कर देता है।

२-इन्द्रका भाव सांसारिक अपवित्र जीवसे है, जो इन्द्रियोंके द्वारा सांसारिक भोगमें संलग्न होता है।

३-अनिल तपस्याकी मूर्ति है जो मोक्षका कारण है।

तफसीलके साथ इन्द्रने

१-अपने गुरुकी पत्नीसे जार कर्म किया।

२-जिसके कारण उसके शरीरमें फोड़े फुंसिया फूट निकलीं।

३-यह फोडे फुन्सियां ब्रह्माजीकी कृपासे चक्षु बन गए।

४-इनके अतिरिक्त इन्द्र अपने पिताका भी पिता है।

इन बातोंकी विधि-मिलान निम्न प्रकार है—

१-(क) जारकर्मका भाव जीवका प्रकृति (पुद्गल) प्रवेश करना है, जो एक पाप (निषेध) कर्म है क्योंकि मोक्षका भाव ही प्रकृतिसंयोगसे वियोगका है।

(ख) जीवन और बुद्धि जीवके दो गुण हैं। जिनमेंसे

जीवन सदैव स्थापित रहता है परन्तु बुद्धि समय २ पर प्रत्यक्ष और विलीन होती रहती है जैसे सोनेमें उसका विलीन हो जाना।

(ग) जीवनके लिए शिक्षाका द्वार बुद्धि है चूंकि वाह्य पुस्तकें व गुरु तो ज्ञानप्राप्तिके सहकारी कारण ही होते हैं, असली कारण नहीं।

(घ) बुद्धि सामान्यतः प्रकृतिसे सम्बंध रखती है और बहुत कम जीवकी ओर आकर्षित होती है। उदाहरणरूप पाश्चात्य बुद्धिमत्ताको देखिये कि जिसको अभी तक आत्मा का पता ही नहीं लगा है। इसलिये जीव और प्रकृतिके समागम को काव्य रचनामें इंद्र (जीवात्मा) का अपने गुरु (बुद्धि)-की पत्नी (पुद्‌गल या प्रकृति)से भोग करना बांधा गया है।

२-फोडे फुंसियां अज्ञानी जीव हैं जो प्रकृतिमें लिप्त होनेके कारण अपने वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं। यह अज्ञानताके कारण प्रथम अन्धे हैं।

३-परंतु जब उनको ब्रह्मज्ञान अर्थात् इस बातका ज्ञान कि आत्मा ही ब्रह्म है, हो जाता है, तो ऐसा होता है मानो उनकी आंखें खुल गईं। इसी बातको, ब्रह्माजीने प्रार्थना पर कृपालु हो कर पापके चिन्ह फोडे फुंसियोंको आंखोंमें परिवर्तित कर दिया कहा गया है।

४-इन्द्र अपने पिताके भी पिता हैं क्योंकि—

असहमत-

(क) शब्द पिताका अर्थ आलंकारिक भाषामें उपादान कारण है। और क्योंकि—

(ख) शुद्ध जीवका उपादान कारण अशुद्ध जीव है अब कि अशुद्ध (अपवित्र) जीव स्वयम् प्रकृति और जीव द्रव्यसे बना है। इसलिये एक दूसरेका उपादान कारण (पिता) है।

यह संक्षेपतः इन्द्र और उसके गुरुकी स्त्रीसे अपवादरूप जार कर्मका भाव है। हमारे पास विशेष विवेचनका समय नहीं है परन्तु यह प्रतिपादन किया जा सकता है कि इस देवताका शत्रु अन्धकारका असुर है जिसका भाव अज्ञानता है और वर्षा जो इन्द्रसे होती है वह उस शांतिकी वृष्टि है जो कषायों और मिथ्यात्वके तपनके दूर होने पर होती है।

महान् देवताओंकी त्रिमूर्तिमें तीसरा देव अग्नि है जो तपस्या की मूर्ति है जैसा पहले कहा गया है। हम अवलोकन कर चुके हैं कि इस देवताको अग्नि या पाकविद्याका प्रतिरूप मानना हास्यास्पद और असम्बंधित है। परन्तु तपका सम्बंध यहां पर स्वयं प्रगट है। अग्नि शब्द ही तपस्याके भावको उद्दीपन करनेके लिये बहुत उचित है क्योंकि तपस्याका अर्थ वास्तवमें वैराग्यकी अग्निसे जीवको पवित्र करना है। ईसाईयोंकी धार्मिक पुस्तकोंमें कहे हुये अग्निके बपतिस्मेका भी यही भाव है। अग्निके विशेष चिह्न निम्न भांति हैं—

१—उसके २ पैर हैं, व

२—७ हाथ

३—और ७ जिव्हायें हैं।

४—वह देवताओंका पुरोहित है जो उसके बुलानेसे आते हैं।

५—वह भक्ष्य और अभक्ष्य अर्थात् पाक और नापाक दोनों को खा जाता है। और

६—वह देवताओंको बल देता है। अर्थात् जिस कदर ज्यादा बलिदान अग्नि पर चढाया जावे उतनी ही देवताओंकी पुष्टि होती है।

इन अत्यन्त सुन्दर विचारोंको विवेचना निम्न भांति हैः-

१—तप तीन प्रकारसे होता है-अर्थात्

(क) मनको वशमें लाना

(ख) शरीरको वशमें लाना और

(ग) वचनको वशमें लाना

यदि इनमेंसे केवल दोको ही वशमें लाया जावे तो तप अधूरा रहेगा। और कोई चतुर्थ वस्तु वशमें लानेको नहीं है। अब चूंकि तपस्याके यह तीन आधार हैं इसलिये उसके तीन पग कहे गये हैं।

२—सात हाथोंका भाव ७ ऋद्धियोंसे है। जो तपस्वियोंको प्राप्त हो जाती हैं। मेरु देहमें जो ७ योगके चक्र हैं उनमेंसे हर एकमें एक प्रकारकी ऋद्धि (शक्ति) गुप्त रीतिसे सुसुप्त मानी गई है। तपस्याचरणसे यह शक्तियां जागृत हो जाती हैं। चूंकि

शक्तिका प्रयोग केवल हस्तके द्वारा होता है इसलिये इन ७ शक्तियोंको अग्निके ७ हस्त माना है।

३—सात जवानें अग्निकी ५ इन्द्रियां, मन, और बुद्धि हैं जिनको तपकी अग्निमें स्वाहा या भस्म करना है।

४—चूंकि तपस्या करनेसे आत्माके ईश्वरीय गुण प्रकाशमान होते हैं इसलिये अग्निको देवताओं (=ईश्वरीय गुणों) का पुरोहित कहा गया है जो उसके आह्वानसे आते हैं।

५—पुण्य और पाप दोनो बंधन अर्थात् आवागमनके कारण हैं जिनमेंसे पुण्यसे हृदयग्राही और पापसे अरुचिकर योनियां मिलती हैं। इन दोनोंको मुमुक्षको शुद्ध आत्मध्यान (समाधि) के लिये छोड़ना पड़ता है। इसलिये अग्निको पवित्र (पुण्य) और अपवित्र (पाप) दोनोंका भक्षण करनेवाला कहा है।

६—अग्निका भोजन इच्छाएं हैं अर्थात् मनको मारना है। क्योंकि तपस्यासे भाव इच्छाओंके त्यागसे है। इच्छाओंके नाश करनेसे आत्माके ईश्वरीय गुण और विशेषण प्रगट और पुष्ट होते हैं। अलंकारकी भाषामें इन ईश्वरीय गुणोंको देवता कहते हैं। इसलिये अग्नि पर (इच्छाओंका) बलिदान चढ़ानेसे देवताओ की पुष्टि होती है।...

अग्निका एसा स्वरूप है जिसको आप जानते हैं कि केवल हिन्दू ही नहीं प्रत्युत पारसी लोग भी पूजते है। अन्ततः वैदिक

देवमालाकी रचना (तरतीब) से स्पष्टतया निम्नलिखित भाव प्रगट होते हैं:—

१-हर व्यक्ति अपनी सत्तामें ईश्वर है अर्थात् जीवात्मा ही परमात्मा है।

२-शुद्धात्मा पूर्ण परमात्मा होता है क्योंकि वह सर्वज्ञतासे जो परमात्मापनका चिन्ह है, विशिष्ट होता है।

३-जीवका परमात्मापन उसके प्रकृति (पुद्गल) से संयुक्त होनेके कारण दबा हुआ है। और

४-तपस्या वह मार्ग है जो पूर्णता और परमात्मापनको पहुंचाता है।

हम इसप्रकार अवलोकन करते हैं कि वेदोंके देवी देवताओंके किस्सोंमें जीवनके बाज क्लिष्ट प्रश्नोंको ही अलङ्कारकी भाषामें ही प्रस्तुत किया गया है। यह मजमून बहुत रोचक है। परन्तु मैं इस पर ज्यादा ठहर नहीं सक्ता हूं आप इसका उल्लेख मेरी लिखी पुस्तक The Practical Path में विशेषतया पावेंगे और की ओफ नालिजमें भी, जिसमें विविध जातियोंके देवी देवताओंके रहस्यका अनुसंधान पक्षपातरहित हो कर किया गया है। एक दूसरी पुस्तक, जिसका प्रमाण मैं इस सम्बंधमें देना चाहता हूं The Permanent History of Bharat Vorasha है जिसका इस व्याख्यानमें भी कई बार उल्लेख आया है। इसमें सैकड़ों देवी देवताओंके वास्तविक

भावको शास्त्रोंका प्रमाण देकर साबित किया गया है। यद्यपि उसमें इन अलङ्काररूपी देवी देवताओंकी उनके गुणोंके लिहाज़से स्वयम् विवेचना करनेका प्रयत्न नहीं किया गया है।

ऐसा ज्ञात होता है कि किसी समयमें हिन्दूओंको इसप्रकारके रूपक अलङ्कारोंकी सिद्ध हो गयी थी और वह अपने मनकी खयाली सृष्टिको आलङ्कारिक वस्त्रों और जेवरोंसे सजानेमें प्राणपनसे संलग्न हो गये थे। एक शब्द भी उनकी पवित्र पुस्तकोंका इसलिये ऐतिहासिक रीति पर ठीक नहीं है और न महाभारत और रामायणके काव्य ही ऐतिहासिक किस्से हैं। उनके समय और स्थानोंके प्रमाण विज्ञानकी दृष्टिमें उतने ही बनावटी हैं जितने कि वह व्यक्ति, जो उन समयो और स्थानोंसे सम्बंध रखते हैं। वशिष्ट ऋषि मनुष्य नहीं हैं किन्तु श्रुति अर्थात् ईश्वरीय वाणीका रूपक चिन्ह है जब कि विश्वामित्र मनन (बुद्धि अनुकूल (विचार) है। उनके परस्पर झगड़ोसे भाव श्रुति और मननके स्वाभाविक विरोधसे है जो गुप्त रहस्यवाले धर्म्मोंमें प्रायः पाया जाता है। परन्तु श्रुति अन्ततः बुद्धि पर विजय प्राप्त करती है और इसीलिये हम वशिष्ठको अपने विरोधी विश्वामित्र पर विजयी पाते हैं। १४ लोक आत्मिक उन्नतिके १४ स्थान हैं। संसार सृष्टिका भाव मनमें आत्मिक विचारोंकी सृष्टिके रचनेका है। रक्षासे भाव आत्मिक उन्नतिसे है और नाश बुरी आदतों और स्वभावोंका है। इस प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा वह

आत्मज्ञ बुद्धि है जो मनके आत्मिक अंधकारको हटाकर उसमें आध्यात्मिक सृष्टिकी रचना करती है। विष्णु जो रक्षा करने वाला है, धर्म्म है, जिससे पुण्यकी वृद्धि होती है। वह केवल ब्रह्माकी सृष्टिकी रक्षा करता है किन्तु और किसी वस्तुकी नहीं, अन्तमें शिव या महेशसे भाव वैराग्यसे है जो कर्म—पुण्य और पाप दोनोंका नाश करता है। दूसरी दृष्टिसे ऋषभ धर्म्म है। ऋषभका पुत्र भरत भक्ति, और बैल धर्मका चिन्ह या निशान है। जम्बूद्वीप मानवजातिका भक्तिभाव है और भारतवर्ष भक्तिके नियम और रीति हैं। कुरुक्षेत्र दोनों भावोंके मध्यका चक्र है। प्रयागसे भाव हृदयसे है। मथुरा खोपडीका सहस्रार चक्र है और गोवरधन मन है। हरिद्वार कषायरहित शांतिका चिन्ह है। गङ्गा यमुना और सरस्वती, इडा पिङ्गला और सुसुमना नाड़ियां हैं। युग तपस्याके दर्जे है। और मानुषिक शरीर एक वर्ष या साल है आंतोंका भाव धर्म मार्गके स्थानोंसे है जिनसे गुजरकर परमात्मापन प्राप्त होता है।

मैं विचार करता हूं कि आपको हिन्दूओंकी देवमालाको वास्तविकताका ज्ञान करानेकेलिये इतना लिखना पर्याप्त होगा। अब मैं आत्मिक पतनके मामलेको सुलझानेका प्रयत्न करूंगा जो यहूदियों और ईसाई धर्म्मोंका बड़ा भारी मसला है। सबके पहले आपको यह विचार अपने मनसे निकाल डालना चाहिये कि इस संसारमें या आसमान पर कोई ऐसा स्थान था जो

अदन कहलाता था जहां किसी ईश्वर परमात्माने किसी समय एक बाग सुन्दर वृक्षोंका लगाया हो-। हमने ओरीजिन महोदय (Origen) के लेखमें देखा है कि ऐसा विचार किस कदर अनर्गल है। अगर आप उन दो विख्यात वृक्षोंपर गौर करेंगे जो जीवन और नेकी व वदीके ज्ञानके पेड कहे जाते हैं तो आप उक्तविचारकी वेहूदगीको और भी हास्यास्पद पायेंगे। फिर नेकी व वदीका ज्ञान मनुष्योंके लिये क्यों वर्जित हो और उसके फलके केवल एक ही टुकडेके खानेकी सजा इस कदर सख्त हो कि उसके खानेवालेको श्राप दिया जावे और उसको वागसे निकाल दिया जावे, वह मृत्युके वशमे हो जावे और उसके लडके पोते और सब आगामी औलाद अन्तिम आदम तक सदैवके लिये परेशानी और कष्टके भागी हों। यदि दण्ड ही देना अभीष्ट था (और सर्वज्ञ ईश्वरको पहलेसे ही ज्ञात होगा कि आदम आज्ञाकारी न होगा) तो फिर यहोवा वार २ पैगम्बरोको मनुष्योकी पथप्रदर्शकताकेलिये क्यों भेजता है, क्या वह इनको एक सजासे पवित्र नहीं कर सक्ता था जैसे कि उसने उनको अपवादी वनाया। यदि आप इन प्रश्नो और ऐसे ही और प्रश्नोपर जो इस रिवायतके शाब्दिक भावसे पैदा होते हैं गौर करेंगे तो आप ओरिजिन (Origen) की इस वातसे सहमत होगें कि यह शिक्षा ऐतिहासिक रूपमें नहीं समझी जा सक्ती है। वैदिक देवमालाकी भांति इसका भाव भी गुप्त है।

मैं अब आपके समक्ष इस किस्सेके वास्तविक रहस्यको प्रस्तुत करता हूं:—

(१) बाग अदन जीवके गुणोंका अलङ्कार है। अर्थात् इसमें जीवको बाग और गुणोंको पेड़ोंसे साक्षेप किया गया है।

(२) पेड़ोंमें जीवन और नेकी व बदीके बोधके पेड़ दो मुख्य हैं। अत एव वह बागके मध्यमें पाये जाते हैं।

(३) आदमसे भाव उस जीवसे है जिसने मनुष्यकी योनि पाई है अर्थात् जो मानुषिक योनिमें है।

(४) हव्वासे भाव बुद्धिका है जो आदमके सोनेके समय आदमकी पसलीसे बनाई गई है। यह एक युक्तियुक्त अलंकार है क्योंकि अन्ततः बुद्धि तो जीवका ही गुण है। जिसको नीन्दसे जागने पर मनुष्य अपने पास पाता है।

(५) सब प्राणियोंमें केवल मनुष्य ही मोक्षप्राप्ति कर सकता है और इसलिये धार्मिक शिक्षाका वही अधिकारी है। पशुओंको बुद्धिकी कमी और शारीरिक तथा मानसिक न्यूनतायें मोक्षमें बाधक होती हैं। स्वर्ग और नर्कके निवासी भी तपस्यासे वंचित रहनेके कारण मोक्ष नहीं प्राप्त कर सक्ते हैं। अतः मनुष्य ही केवल धार्मिक शिक्षाका अधिकारी है।

(६) जीवन वृक्षका भाव जीवनसे है और नेकी व बदीके ज्ञानका अर्थ संसारकी वस्तुओंका भोगरूपी मूल्य परिमाण है।

(७) पुण्य पापके ज्ञानका फल (परिणाम) राग व द्वेष है। क्योंकि मनुष्य उस वस्तुकी प्राप्ति और रक्षाका प्रयत्न करता है जिसको वह अच्छा समझता है और उसके नाशका प्रयत्न करता है जिसको वह बुरा समझता है। अब यदि आप नेकी और बदीकी वास्तविकता पर गौर करें तो आपको ज्ञात होगा कि वह वास्तवमें कोई नैसर्गिक पदार्थ नहीं हैं और न सदैव एक सूरतमें स्थिर रहनेवाले वस्तु हैं। वह तो केवल परस्पर सम्बंधित शब्द हैं। पहले कहे हुए वृद्ध धनवानके घर पुत्र उत्पन्न होनेके उदाहरणमें उसका बूढा बाप उसके उत्पन्न होनेका हर्ष मनाता है किंतु वह करीबी दायाद (भागीदार) जो उस धनवानके संतानहीन मृत्यु होनेका वाट जोहता था, उस पुत्रके कारण दुःखमें डूब जाता है। तो भी बच्चा जिसके कारण एक व्यक्तिको हर्ष और दूसरेको दुःख होता है अपनी सत्तामें केवल एक घटना है। वह अपने माता पिताके लिये कल्याण और हर्षका दाता है और इसलिये नेक है। परंतु उनकेलिये जो इस बूढेकी मृत्यु पर उसके धन लेनेके इच्छुक बैठे थे दुःख और हताशताका कारण होता है। एकके हृदयमें वह प्रेम और रागको उत्पन्न करता है और दूसरेके दिलमें गुस्से और द्वेषको। इसप्रकार राग और द्वेष नेकी और बदी रूपी ज्ञानके वृक्षके फल हैं।

८) राग और द्वेष इच्छाकी दो साधारण किस्में हैं (रोचक वस्तुको अपनानेकी इच्छा = राग और बुरी वस्तुके नाश करनेकी इच्छा = द्वेष)। और इच्छा ही कर्म बंधान और आवागमनका कारण है जैसा कि पहले एक व्याख्यानमें दर्शाया गया है अतः नेकी और बदी रूप ज्ञानका फल (राग व द्वेष) माना है।

९) जीव इस कारण कि वह एक असंयुक्त द्रव्य है अविनाशी है। परन्तु शरीरी होनेके कारण जीवन और मृत्यु उसके साथ लगे हुये हैं। इसी कारण इन्जीलमें आया है (देखो पैदायशकी किताब बाब २ आयत १७) कि "जिस दिन तू उसका फल खावेगा तो निस्संदेह मर जायेगा"।

यह स्मरण रखना चाहिये कि आदम उसीदिन नहीं मरगया जिस दिन कि उसने नेकी और बदीका ज्ञान रूपी फल खाया किन्तु उसके पश्चात् बहुत वर्षोंतक जीवित रहा और ९३० वर्ष का होकर मरा (किताब पैदायश बाब ५ आयत ५) अतः पैदायशकी किताबके दूसरे बाबकी १७ वीं आयतका असली भाव यही हो सका है कि वर्जित फलके खानेसे मनुष्यको मृत्यु पराजित करलेती है।

(१०) सांपका भाव इच्छासे है, जिसके द्वारा बुराईकी शिक्षा मिली। यह जीवको धर्मसे हटाकर बुरे कामोंकी ओर खींच लेती है।

(११) विषयोंके इष्ट व अनिष्ट (नेक व बंद) के ढूंढनेमें संलग्न प्राणी आत्मासे अनभिज्ञ हैं। अर्थात् वह इस बातसे विज्ञ नहीं होता है कि जीव स्वयम् परमात्मा है। और वह वाह्य देवताओंसे भय खाकर छिपता फिरता है।

(१२) आदम पापका भार अपनी समझ (हववा) पर डालता है। और हववा (समझ या बुद्धि) कहती है कि वह इच्छाओं (सांप) के बहकानेसे गुमराह और पराजित हुई। यह बातें ज्ञान (Will) बुद्धि और इच्छाकी आन्तरिक असलियतसे नितान्त विधि मिलान रखती हैं क्योंकि पथप्रदर्शक (गित्तक) बुद्धि है और बुद्धि इच्छाके वशीभूत है। अतएव इसबातके निर्णयका अधिकार कि बुद्धि किस बातकेलिये अपने कर्तव्यमें संलग्न हो स्वयम् बुद्धिको प्राप्त नहीं है प्रत्युत प्राणीकी इच्छाओं पर निर्भर है। और उसकी बलिष्ठ इच्छाओंके अनुसार निर्णय होता है जैसा 'की ओफ नालिज' में दर्शायागया है। बुद्धि तो पगके पथ देखानेकेलिये एकप्रकार की लालटेन है। यह बात कि यह हमको देवमन्दिरकी ओर लेजावे या एक जुयेखानेकी तरफ, हमारी इच्छापर निर्भर है, न कि स्वयम् बुद्धिकी इच्छापर।

(१३) पापियोंकी सजाएं भी ज्ञान (Will) बुद्धि और इच्छा की वास्तविकताको द्योतन करती हैं।

(क) सांप सब मवेशियों और मैदानके चारपायोंसे ज्यादा

धिक्कार व फटकारका अधिकारी है। वह पेटके बल चलेगा और आयु पर्य्यन्त खाक खायेगा। चूंकि इच्छाएं मनुष्यको चौपायों और मवेशियोंसे भी ज़लील बना सकती हैं अतः सांप सब मवेशियों और पशुओंसे भी ज्यादा क्रूर (निकृष्ट) है। इच्छाओंमें लिप्त हुआ मन सदैव खाकके व्योहारमें लगा रहता है जिसका भाव यह है कि वह रात दिन इन्द्रियो द्वारा बाह्य पदार्थोंसे रुचिकर माद्देके सूक्ष्म स्वादिष्ट परमाणुओंको अपनी ओर खींचता रहता है। यह स्वाद उत्तेजक आश्रव जिसको मन इन्द्रियों द्वारा रातदिन खींचा करता है वह मिट्टी है जो सर्पको आयुभर खानेको बताई गई है। सर्प और हव्वाके दर्मियान अदावत भी स्थापित की गई है (देखो इन्जील पैदायशकी किताब बाब ३ आयत १५):-

'वह तेरे सरको कुचलेगी और तू उसकी एडीको काटेगा'।

इसका संकेत उस द्वेषकी ओर है जो उत्तम बुद्धि और इच्छामें है अन्ततः इच्छायोंका तत्त्वज्ञानके होनेपर वैराग्य द्वारा नाश होता है। इसको बहुत ही सुन्दरताके साथ हिन्दु शास्त्रोंमें कृष्णका काली नागको नाथना कहा है। कृष्णका भाव किसी अलौकिक देवताके औतारसे नहीं है किन्तु केवल अलंकारकी उत्तम भाषामें ईश्वरीय पूर्णताके आदर्श (Ideol=नमूना)से है। राजा जन्मेजयका सर्पयज्ञ भी इच्छाओंके नाश करनेका एक दूसरा उत्तम अलंकार है (देखो के० एन० अय्यरकी महा

भारत पृ० १६१ व उसके पश्चात्)। इन्जीलकी किताब पैदायशके अनुसार सर्पको यह भी श्राप मिला है कि वह अपने पेटके बल चलेगा (देखो बाब ३१ आयत १४)। इसका कारण यह है कि विषयासक्त व्यक्तिके लिये आत्मिक उन्नतिका खयाल असम्भव है क्योंकि उसको विषयभोगों (इन्द्रिय सुख) से एक क्षण भी अपनी ओर ध्यान करनेका समय नहीं मिलता है।

(ख) हव्वाका श्राप भी बुद्धिकी वास्तविकतासे पूरी सापेक्षता रखता है उसके रज और गर्भाधान (विचार) की शक्तियां बढ़ा दी गई हैं। पशुको भूतका दुःख और आगतका भय नहीं है परन्तु मनुष्यको जो बुद्धिमान है दोनो बातें दुखी करती हैं। बुद्धिके गर्भाधानकी वृद्धिका संकेत बुद्धिमानोंकी तरह तरहकी असंख्य सम्मतियोंकी ओर है जो वह संसारके प्रारम्भादिके निमित्त स्थापित किया करते हैं। "परेशानीमें तू बच्चे जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पतिकी ओर होगी और वह तुझ पर शासन करेगा" (देखो पैदायशकी किताब बाब ३ आयत १६)। बुद्धि ज्ञान (Will) के अधीन है जो अलंकारकी भाषामें उसका पति है। उसके संतान वह विविधि सम्मतियां है जो ज्ञान बीनके बड़े दुःख और कष्टके बाद स्थापित होती हैं। और उसकी सत्ताका अर्थ ही केवल उसके पति अर्थात् ज्ञान (will) की भलाई है।

(ग) आदमके श्रापमें भी सांसारी जीवकी दशाका लिहाज़ है।

(१) "जमीन तेरे कारण जनती है।

(२) "कष्टके साथ तू उसमेंसे (उपज) खायेगा।

(३) "कांटे और ऊंट कटारे वह तेरे लिये उगायेगी, और तू, खेतको घास खायेगा।

(४) "अपने चेहरेके पसीनेके साथ तू रोटी खायेगा जब तक कि तू मिट्टीमें न मिल जावे। क्योंकि तू उससे बना है और इसलिये कि तू खाक है और फिर खाकमें (मिल) जावेगा।" (देखो पैदायशकी किताब बाब ३ आयत १७—१९)।

इन अलंकारोंका भाव यह है कि वह दुख यथा अनावृष्टि, युद्ध और कष्ट जो सांसारिक जनों पर आते हैं वह मनुष्योंकी बुराई-काम कर्म-बदमाशियों और जालसाजियोंके परिणाम हैं। और बावजूद हमारे बहुत प्रकारके प्रयत्नोंके कि हम संसार और प्राकृतिक नियमको अपने वशमें करें, लोभी और कामीको कांटो और चुभनेवाले पदार्थोंके अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं हो सकता है। और यह भी कि आत्मासे अनभिज्ञ पुद्गलवाद में दिलको वास्तविक संतोष प्रदान करनेकी शक्ति नहीं है जो केवल आत्मिक ज्ञानसे मिलती है।

आदमको जो मिट्टीका पुतला कहा गया है उसके निमित्त यह बात जानने योग्य है कि आत्मा तीन प्रकारकी मानी गई है:—

असहमत-

(१) बाह्य आत्मा (शारीरिक व्यक्तित्व),

(२) अन्तरात्मा (जीव), और

(३) परमात्मा (ईश्वर)।

निर्बुद्धि मनुष्य अपने तईं केवल शारीरिक व्यक्तित्व समझते हैं जो प्रकृतिके संयोगसे बना है और नाशवान है । बुद्धिमान आदमी अपने तईं जीव जानता है जो अविनाशी है और शुद्ध (पाक) होने पर परमात्मा (ईश्वर) हो जाता है । इनमेंसे प्रथम प्रकारका विचार अर्थात् पापी दुनियादारकी बाह्य आत्मा वह व्यक्तित्व है जिसका उल्लेख इन्जीलके आपमें है।

१४-पापके बाद हाबिल और कायन आदमके संतान उत्पन्न होते हैं जिनमेंसे हाबिल भेडोंका चरवाहा और कायन पृथिवी का जोतने वाला है। यह दोनो अपने २ उद्योगोंकी भेट ईश्वरके सामने लाते है परन्तु हाबिलकी भेंट स्वीकार होती है और कायनकी नहीं। कायन इस पर हाबिलको मार डालता है जिस पर खुदा उसे श्राप देता है। फिर सेत (=नियुक्त) आदमका पुत्र उत्पन्न होता है और सेतका पुत्र अनूस है "जब मनुष्य अपने तई परमात्माके नामसे कहने लगे" (देखो पैदायशकी किताब बाब ४ आयत २६ उसके सम्बंधमें व पन्नेकी कोर पर दिये हुये नोट)

१५-इनमें हाबील अन्ध विश्वास है जिसकी दृष्टि आत्माकी ओर है परन्तु कायन दलील है जो पुद्गलसे विवाहित है। इसलिये हाबिल भेडों (पदार्थ चिह्न)का रखवारा है और कायन

भूमि (=पुद्गल) का जोतनेवाला है। भ्राताओंकी भेंटका भाव उनके निजी उद्योगोका फल (परिणाम) है जिनमें हाबिल का उद्यम जीवनके विभागका उत्तमोत्तम परिणाम अर्थात् भेड़का सा नम्र भाव (उत्तम मार्दव) इत्यादि हैं और कायनकी भेंट केवल पुद्गलज्ञानका उत्तमोत्तम फल अर्थात् बिजलीकी रोशनी परोप्लेन इत्यादि २ है।

हाबिलका कर्तव्य स्वाभाविक रीतिसे ईश्वरको, जो परमात्मा-पनकी पूर्णता और आनन्दका आदर्श है, स्वीकार होता है। क्योंकि उत्तम मार्दव इत्यादि ही वास्तविक मार्गकी पैडी हैं। परन्तु दलील और (अन्ध) विश्वास आपसमें स्वाभाविक विरोध रखते है। क्योंकि इनमेंसे एक आज्ञानुवर्ती और दूसरा परीक्षक है। इस हेतु, हाबिलको कायन मार डालता है।

१६-क़ायनको जो शाप दिया गया है वह भी दलीलके साथ विधि मिलान रखता है और उसकी विवेचना, पूर्ण रीतिसे "की ओफ नालिज" के ४ थे बाबमें की गई है। यहां हमको उस विषयमें प्रवेश करनेका अवकाश नहीं है परन्तु सेत जिसका अर्थ नियुक्तिका है वह आध्यात्मिक ज्ञान है जो मृत (अन्ध) विश्वासके स्थान पर स्थापित होता है। इस आध्यात्मिक तत्त्व-ज्ञानका पुत्र अनूस है जो अपने तई ईश्वरके नामसे विख्यात करता है। अर्थात् जो अपने तई परमात्मा जानता है।

यहूदियोंकी धार्मिक पुस्तकमें कथित आदमके पाप (आज्ञा

बल्लुंघन) का ऐसा भाव है। वह किसी सर्वज्ञ परमात्माके तुच्छ मानवी दम्पतिके पापोंसे क्रोधित होनेका इतिहास नहीं है और न कोई मनुष्य जातिकी जंगली अवस्थाकी गढ़ी हुई बालकहानी ही है परन्तु एक ऐसे आध्यात्मिक विज्ञानके कतिपय मुख्य सिद्धान्तोका वर्णन है कि जिसके मन भावका परिचय आधुनिक विज्ञानकी निसबत बहुत ज्यादा ठीक और बुद्धियुक्त है।

पांचवां व्याख्यान।

देवी देवताओंवाले धर्म्म।

(ख)

इन्जीलके नूतन पहद्नामेमें, जो प्राचीनए हद्नामेका परिपूर्ण, कारक कहा जाता है, ध्यान देनेसे इन्जीलोंकी सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात, उनकी आख्यानिक शिक्षा पाई जाती है। जिस 'ज्ञानकी कुञ्जी'के खोजाने पर हज़रत ईसाने बनी इसराय-लके आलिमों (विद्वानों)को धिक्कारा था उसी कुञ्जीकी, मसीहाई उपदेशके गुप्त अर्थोंको समझनेके लिए भी आवश्यक्ता है। अवश्य ही कहीं २ अमूल्य रत्न भी बहिर भाग पर पड़े दृष्टि गोचर होते हैं परन्तु ठीक इस कारण वश कि वे यों खुले पड़े हैं और किसी आभूषणमें जडित नहीं हैं वे प्रत्येक प्रकारके पदार्थोंमें विठाए अथवा जड़े जा सक्ते हैं। नूतन पहद्नामे पर ध्यान देनेसे उसमें दी हुई मसीहाई शिक्षाके सिद्धान्त निम्नप्रकार पाए जाते हैं:—

१—आत्माका परमात्मापन तथा उसकी सम्पूर्णता।

१—"जब कि उसने उन्हें खुदा कहा।" (यहुन्नाकी इन्जील म० १० आ० ३४)।

२—"तुम दुनियाके नूर हो। जो नगर पर्वत पर बसा हुआ है वह छिप नहीं सका है।" (मतीकी इन्जील अ० ५ आ० १४)।

३—"तुम पृथ्वीके नमक हो।" (मती ५।१३)।

४—"प्यारो! हम इस समय खुदाके पुत्र हैं और अभी तक यह प्रकट नहीं हुआ कि हम क्या कुछ होंगे। हम इतना जानते हैं कि जब वह प्रकट होगा तो हम भी उसके समान होंगे। कारण कि उसको वैसा ही देखेंगे जैसा वह है।" (यहुन्ना ३।२)।

५—"देखो खुदाका राज्य तुम्हारे भीतर है।" (लूकाकी इन्जील १७।२१)।

६—"और आकाश पर कोई नहीं चढ़ा सिवाय उसके जो आकाशसे उतरा अर्थात् मनुष्यका पुत्र, जो आकाशमें है।" यहुन्ना ३।१३)।

२—आदमका पाप व पतन।

१—"इसलिए कि सबने पाप किया है और खुदाके जलालमें कम हैं।" (रोमियों ३।२३)।

२—"क्योंकि खुदाने मिथ्यात्वमें सबको डाल रक्खा है।" (रोमियों ११।३२)।

३—ज्ञानकी कुञ्जीसे मुक्तिका मिलना।

१—"हे विद्वानों! तुम पर शोक है कि तुमने ज्ञानकी कुञ्जी

का लोप कर दिया।' तुम आप भी प्रविष्ट न हुए और अन्य प्रविष्ट होनेवालोंको तुमने रोका।" (लूकाकी इन्जील अ० ११ आ० ५२।)

२—"और तुम सत्यसे विज्ञ होगे और सत्य तुमको मुक्त करेगा।" (यहुन्ना ८। ३२)।

३—"अस्तुः चाहिए कि तुम पूर्ण हो जैसा कि तुम्हारा आकाशीय पिता पूर्ण है।" (मत्ती ५। ४८)।

।—बन्धन पापों अर्थात् कर्मोंके कारण वश है।

१—"और मनुष्य दीपक जलाकर पैमानेके नीचे नहीं धरते हैं।" (मत्तीकी इन्जील अ० ५ आ० १५)।

(यहां पर इशारा प्रत्यक्षरीत्या ज्ञानावरणीय कर्मकी ओर है जो आत्माके सर्वज्ञ गुण पर आवरणकी भांति (ज्ञान=इल्म× आवरण=परदा) पड़ जाता है।)

२—"जो कोई पाप करता है पापका गुलाम है।" (यहुन्ना की इन्जील अ० ८ आ० ३४)

१—इस बंधनसे मुक्ति तपश्चरण एवं अन्य नियमों पर अमल करनेसे, जो इच्छाओंके विनाशक हैं, प्राप्त होती है।

१—"कारण कि यदि तुम शरीरके अनुसार जीवन व्यतीत करोगे तो अवश्य मरोगे और यदि आत्मासे शरीरके

कार्योंको विध्वंस करोगे तो जीवित रहोगे।" (रोमियों अ० ८ आ० १३)

२—"जो कोई शरीरके लिए बोता है वह शरीरसे दुःखोंकी फसल काटेगा और जो कोई आत्माके लिए बोता है वह आत्मासे अनन्त जीवनका लाभ करेगा।" (गलातियों ६। ८)

३—"अस्तुः, अपने उन अवयवोंको मुर्दा करो जो पृथ्वी पर हैं। (कलेसियो अ ३ आ० ५)

४—"और शारीरिक प्रवृत्ति मृत्यु है परंच आत्मिक प्रवृत्ति जीवन और विश्वास है।" (रोमियों अ० ८ आ० ६)

५—"सकेत फाटकसे प्रविष्ट हो। कारण कि वह द्वारा चौड़ा है एवं वह मार्ग विशाल है जो दुःखको पहुंचाता है और उससे प्रवेश करनेवाले बहुत हैं कारण कि वह फाटक सकेत है और वह मार्ग सकड़ा है जो जीवनको पहुँचाता है और उसको पानेवाले थोड़े हैं।" (मत्ती अ० ७ आ० १३-१४।)

६—"खेद है तुम पर जो अब भर पूर हो क्योंकि भूके होगे। खेद है तुम पर जो अब हंसते हो क्योंकि मातम करोगे और रोओगे। धन्य तुम भूके हो क्योंकि सुखी होओगे। धन्य हो तुम जो अब रोते हो क्योंकि हंसोगे।" (लूका अ० ६ आ० २५ व २१)।

७—"यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे तो अपनी ख़ुदीसे इन्कार करे (इच्छाको मारे) और अपनी क्रास (सलीब) उठाए और मेरे पीछे होले।" (मत्ती अ० १६ आ० २४)।

८—"और जो कोई अपनी सलीब नहीं उठाता है और मेरे पीछे चलता है वह मेरे योग्य नहो है।" (मत्ती अ० १० आ० ३८)।

९—"यदि कोई मेरे पास आए और अपने पिता और माता और स्त्री और संतान और भाइयो और बहिनों बल्कि अपनी जानसे भी दुशमनी न करे तो मेरा शिष्य नहीं हो सका।" (लूका अ० १४ आ० २६)।

१०—"जो कोई अपनी जान बचानेको कोशिश करेगा वह उसे खोएगा। और जो उसे खोएगा वह उसको जीवित रक्खेगा।" (लूका अ० १७ आ० ३३)।

११—"लोमड़ियोंके भट्ट होते हैं और पवनके नभचरोंके घौंसले, परन्तु मनुष्यके पुत्रके लिए शिर धरनेकी भी जगह नहीं है।" (मत्ती अ० ८ आ० २०)।

१२—"परिश्रम और पीड़ामें, बारहा जागृत अवस्थामें, भूक और प्यासकी तृष्णामें, बारहा उपवासोंमें, शीत और नग्नपनकी अवस्थामें।" (करन्थियो अ० ११ आ० २७)।

१३—"........और कुछ नपुंसक ऐसे हैं जिन्होंने आकाशके

साम्राज्यके लिए अपने आपको नपुंसक बनाया है।"
(मत्ती अ० १६ आ० १२)।

१४—"वल्कि मैं अपने शरीरको ताड़ना करके वशमें लाता हूं। (१—करन्थियों अ० ६ आ० २७)।

१५—"और जो मसीह ईसूके हैं उन्होंने शरीरको उसकी वसनाओं और इच्छाओं समेत सलीब पर खींच दिया है।" गलीत्यों अ० ५ आ० २४)।

१६—"अस्तु:, ए भाइयो! मैं खुदाकी रहमतें याद दिला कर तुमसे विन्ती करता हूं कि तुम अपने शरीरोंको जीवित और विशुद्ध और ईश्वरको प्रसन्न करनेवाले वलिदानके तौर पर भेंट कर दो। यही तुम्हारी उपयुक्त सेवा है।"
(रोमियों अ० १२ आ० १)।

ऐसा प्रकाश है जो यह फिलासफीके अमूल्यवान बिखरे हुए लाल एवं रत्न हमारे प्रश्नो पर डालते हैं। ईसाई मर्म्मज्ञ (Gnostics) भी "पूर्णताको, उन्हीं धार्मिक मनुष्योंका, जो पुद्गल और इन्द्रियोंके फन्दोंसे स्वतंत्र हो चुके हैं, भाग समझते थे। कारण कि उनके अनुसार पुद्गल व पाप (एक दूसरेसे) पृथक् नहीं हो सके हैं।" इस सम्प्रदायके अनुसार पूर्णता केवल-ज्ञानके मार्गसे है और मर्म्म ज्ञानके प्रविष्ट होने (शिक्षा पाने)से प्राप्त हो सकी है। "वह एक अभ्यंतर आत्मिक अवस्था है जो मर्म्मज्ञानसे प्राप्त होती है और जिसका मसीहसे कोई जीवनका सम्बंध नहीं है।" (ई० रि० ए० भा० ९ पत्र ७३३)।

गुप्त मर्म ज्ञानके सम्बंधमें मसलूब होने, फिर जीवित हो जाने और आकाश पर उठ जानेकी शिक्षासे ईसाई लोग ऐसे ही अनभिज्ञ हैं, जैसे हिन्दू अग्नि, इन्द्र और सूर्य्यसे। ईसाका समस्त जीवन प्रवीण दृष्टांतोंका एक संग्रह है, जिसमें धर्ममें उन्नति करनेवाली आत्माका प्रभाव दिखलाया है। जब आत्माके परमात्मापनका विचार मनमें उत्पन्न होता है तो कहा जाता है कि ईसू अथवा कृष्णकी उत्पत्ति हुई। जीवनसे उसका अत्यधिक स्नेह होनेके कारणसे उसका सम्बंध उत्पन्न होनेके समयसे ही गउओंसे पाया जाता है। (संस्कृतमें गऊसे भाव इन्द्रियोंसे हैं। और उनको आधीन कर एवं उन पर विजय पाना गऊओं की रक्षा करना है जिसको गऊरक्षा कहते हैं। (देखो पी० एच० बी० भाग २ पत्र ५२०)। कुमारी माता मरियम बुद्धि है जो आत्माकी प्रकृतिसे गर्भवती होती है। मसीहका पिता एक बढ़ई है जो एक और युक्तियुक्त स्वरूप उस बुद्धिका है जिसका रूपान्तर हिन्दुओंका देवता गणेश है। कारण कि बढ़ई वस्तुओं को काटता है (Analysis = तत्त्व निकास) और जोड़ता है (Synthesis = संयोग)। मसीहका गर्भमें आना विदून मैथुन पापके अर्थात् विशुद्ध रूपमें होता है। कारण कि यह गर्भ बुद्धि को होता है स्त्री पुरुषके संयोगसे नहीं। बालक मसीह गुप्तरीत्या उन्नति पाता रहता है। जब तक कि उसके शत्रु नष्ट हो जायें जिसका अर्थ यह है कि सम्यक्दर्शन (श्रद्धा) प्राप्त होनेके

पश्चात् मसीहाई पद उस समय तक प्राप्त नहीं हो सका कि जब तक अभ्यंतर आत्मिक प्रवृत्ति दुर्व्यसनों, दुष्ट स्वभावों और दुर्विचारोंको उपयुक्त रीत्या नष्ट न कर दे। फिर तपश्चरण करना पड़ता है। जिसके कारण कतिपय अद्भुत शक्तियां आत्माको प्राप्त हो जातीं हैं। अब वह समय आ जाता है कि जब शिष्य प्रारब्धके चौराहे पर अपनेको जीवन और मृत्युकी शक्तियोंको हाथमें लिए हुए खड़ा पाता है। क्योंकि इन बलिष्ठ शक्तियोंका सांसारिक उन्नतिके लिए प्रयोग करना ही आत्मोन्नतिकी जड़ काटना है। यही प्रलोभन है। इसीके विषयमें इन्जीलमें कहा गया है कि शैतानने ईसूको संसारके राज्य दिखलाए जो उसको सिजदा करनेसे प्राप्त हो सक्ते थे। परन्तु निर्वाण मुमुक्षु साधु अब अपने इस इरादेसे कि वह अपने (बहिरात्मा) को मसलूब करे, नहीं बदल सक्ता है। अस्तु यह अपनी सलीब अपने साथ लिए फिरता है और गोलगोथाके स्थान पर, जिससे भाव खोपड़ीके स्थानसे है, मसलूब होता है। खोपड़ीका विशेष अर्थ यह है कि भेजेमें एक योगके बड़े चक्रका स्थान है जिस पर अंतमें ध्यान लगाया जाता है। इस विवेचनकी पुष्टिमें इन्जीलकी निम्नलिखित आयतोंको दिया जाता है:-

१-"ईसू अब तक अपने जलालको न पहुंचा था।" (यहुन्ना की इन्जील अ० ७ आ० ३९)

२-"जिसने उस खुशीके लिए, जो उसके सामने रक्खी गई

थी, शरमिन्दगीकी परवा न करके सबीलका दुःख सहा। (इन्जील इबरानियों १२।२)।

यथार्थ जीवनमें, जो एकदम कसीर और प्रतापी है, प्रविष्ट होनेके कारणसे जो बहिरात्मा (शारीरिक व्यक्तिपन) को मसलूब किया जाता है उसका फल इस प्रकार प्रकट होता है:—

१—चट्टानोंका फटना।

२—सूर्य्यका अंधकारमय हो जाना।

३—मन्दिरके परदेका ऊपरसे नीचेतक फट जाना। और

४—क़बरोंका खुल जाना और मुर्दोंका दिखाई देना।

यह सब गुप्त समस्यायें हैं जो इस कालमें प्रथम बार आपको बताई जाती हैं—

१—चट्टानोंके फट जानेसे अभिप्राय कर्मोंकी कठोर फौलादकीसी बन्दशोंका टूटना है। जो आत्माके अभ्यंतर शरीरमें पड़ी हुई हैं। आपने हिन्दूओं और जैनियोंके पुराणोंमें पढ़ा होगा कि साधुओंके तपश्चरणसे इन्द्रका आसन कम्पायमान होने लगता है और उत्कृष्ट साधुओंके सर्वज्ञ होनेके समय देवलोकके मन्दिरोंके घण्टे स्वयं बजने लगते हैं। इन विविध घटनाओंकी यथार्थता यह है कि उत्तम ध्यानके एकाग्र होनेसे जो कर्मोंके बन्धनोंका टूटना होता है उनसे उत्पन्न होनेवाली प्रबल कंप क्रियाएं, एक प्रकारके सूक्ष्मवर्की पुद्गल वर्ग-

णाओंके विना तार (wireless) के तारबरकी द्वारा, उस सूक्ष्म माद्देसे, जिसके इन्द्रोंके आसन और देवलोकके घण्टे बने होते हैं, टकराती हैं जिससे वे कम्पित होते और बजने और शब्द करने लगते हैं। स्वर्गोंके राजाओं (इन्द्रों) के आसनोंके हिलने और देवोंके (स्वर्गोंके निवासियों) के महलोंके घण्टोंके बजनेका यही कारण है।

२-सूर्य्यके अंधकारमय होनेका भाव सीमित मनके कार्यालयके वन्द हो जानेसे अर्थात् इन्द्रियों और बुद्धिके नष्ट होनेसे है। सर्वज्ञताके प्रकट होनेपर यह सब नष्ट हो जाते हैं और फिर उनकी आवश्यक्ता नहीं रहती है यह अवश्य है कि हम इन्द्रियों और बुद्धिको अति उपयोगी पाते हैं परंतु वास्तवमें यह आत्माकी यथार्थ एवं स्वाभाविक सर्वज्ञताके पूर्ण सर्वमय प्रकाशको रोकनेवाले हैं। इनका नष्ट होना, जब वह तपश्चरणकी पूर्णताके कारणसे हो, अति धन्य है। कारण कि तत्क्षण ही भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालोंका पूरा पूरा ज्ञान उनकी पराजय पर प्राप्त हो जाता है यद्यपि अन्य सर्व स्थानोंपर उनका नष्ट होना अवश्य ही एक महान संकट है।

३-मन्दिरके पर्देका फटना भी एक गुप्त शिक्षा है। जो पर्दा कि फटता है वह किसी हाथोंसे बनाए हुए चूने और ईंट

के मंदिरका नहीं है। सुतरां आत्माके मंदिरका है। अभ्यंतर प्रकाशके ऊपर जो परदा पड़ा हुआ है उसके हटनेसे यहां भाव है जिससे परमात्मापनका यथार्थ प्रकाश हो जाता है, न कि एक चूने अथवा पत्थरके बने हुए मन्दिर वा उसके किसी भागके नष्ट होनेसे। आत्मिक प्रकाश इस अभ्यंतर परदेके फटनेका तत्कालीन फल है।

४-परन्तु सबसे सुन्दर अलंकार जो इस स्थान पर व्यवहृत हुआ है वह कब्रोंके खुल जानेका है। जिस वस्तुसे यहां अभिप्राय है वह प्रकट रूपमें किसी कब्रस्थानकी कब्रोंकी कतारें नहीं है जिनमें मुर्दे दफन पडे रहते हैं। और न मुर्दोंकी सड़ी हुई लाशोंके किसी प्रबल शक्तिसे फेंके जाने और जनतामें प्रकट होनेसे है। सुतरां मानुषिक स्मरण शक्ति के कब्रस्थानसे है जहां भूतकालकी घटनाएं, (ऐन्द्रिय) उत्तेजनाएं और विचार संस्कार उसी तरह से दफन पडे रहते हैं जैसे पृथ्वीके भीतर मुर्दे। यह शिक्षा पिछली योनियोंके हालातका याद आना, जो तपश्चरण द्वारा संभव है, प्रकट करती है।

इससे यह कहना कि आवागमन ईसाई धर्म्मका कोई मुख्य सिद्धान्त नहीं है और यह कि इसकी शिक्षा पूर्णतया इस सिद्धान्तके विरोधमें है अपयुक्त है। यथार्थता यह है कि जो लोग ऐसा ख्याल करते हैं उन्होंने अपनी इन्जीलको इस शिक्षाके

लिहाज़से कि "जो पढ़े वह समझे" जिसका हम पहिले उल्लेख कर चुके हैं, नहीं पढ़ा है। जैसा अब आपको विदित हो गया है। इन्जीलमें गुप्त सिद्धान्त और समस्यायें प्रत्यक्षमें अर्थहीन शब्दोंके नीचे छुपे हुए हैं। यदि ऐसा न होता तो यह कभी नहीं कहा जाताः—

"मैं दृष्टान्तोंमें अपनी जिह्वा खोलूंगा। मैं वह बातें प्रकट करूंगा जो सृष्टिके प्रारम्भसे अब तक गुप्त रही हैं।" (मत्ती की इन्जील अ० १३ आ० ३५)।

यहुन्नाकी इन्जीलके आठवें अध्यायकी ३२ वीं आयतका अर्थ यहां पर बहुत उपयुक्तता रखता है। वह कर्म्मोंकी कैद है जिसका उल्लेख ईसू निम्नलिखित शिक्षामें है।

"और तुम सत्यसे अभिज्ञ होगे और सत्य तुमको मुक्त करेगा।" (यहुन्ना अ० ८ आ० ३२)।

वह काल्पनिक विवाद, जिसका उल्लेख इसके पश्चात्की आयतोंमें अङ्कित है, उस कैद स्वरूपके समझानेकेलिए, जिसका हवाला दिया गया है 'आकिलान रा इशारा बस' (समझदारको इशारा ही बहुत होता है) के तौर पर गढ़ा गया था। निम्नमें इसके संबंधकी आवश्यक आयतें दी जाती हैं:—

"३३-उन्होंने उसे जवाब दिया, हम इब्राहीमकी नसलसे हैं और कभी किसीकी गुलामीमें नहीं रहे। तू क्योंकर कहता है कि तुम मुक्त किए जाओगे।

"३४-ईसूने उन्हें जवाब दिया-मैं तुमसे सच सच कहता हू कि जो कोई पाप करता है वह पापका गुलाम है।

'३५-और गुलाम सदा घरमें नहीं रहता परन्तु बेटा सदा रहता है।

"३६-अस्तु, यदि बेटा तुम्हें मुक्त करेगा तो तुम वास्तवमें मुक्त होगे।"

यदि हम इन आयतोंका ठीक निर्णय करना चाहते हैं तो हमको चाहिए कि पहिले उन कार्य्योंको दर्याफ्त करें जो उनमें पृथक् पृथक् निश्चित किए गए हैं। सावधानतापूर्वक ध्यान देनेसे ज्ञात होगा कि ३४ वीं आयतमें इस प्रश्नका, कि-आया गुलामीसे भाव जातीय अथवा दैशिक दासता है, जो ३२ वींमें उठाया गया है, जवाब दिया गया है। जवाब साफ है। पापकी गुलामीसे अर्थ है, न कि जातीय गुलामीसे। ३५ वीं आयतमें दासता और पुत्रकी अवस्थामें भेद प्रकट किया गया है। जिनमेंसे पहिलीको खतम होनेवाली और दूसरीको नित्य माना है। अन्तमें ३६ वें में यह तै किया गया है कि कैदसे यथार्थ मुक्ति (शब्द यथार्थ यहां उपयुक्त है) केवल पुत्र ही दे सक्ता है जो सदैव रहेगा। अब शब्द पुत्रका अर्थ ईसूकी भाषामें उस आत्मासे है जिसने परमात्माके पद और प्रतापको प्राप्त कर लिया हो। सेंट पाल लिखते हैं-"इसलिए कि जितने, खुदाके कमाल दृष्टिकोण करके चलते हैं, वह ही खुदाके पुत्र हैं.........आत्मा, स्वतः हमारी आत्माके

साथ मिलकर साक्षी देता है कि हम खुदाके पुत्र हैं और यदि पुत्र हैं तो उत्तराधिकारी भी हैं अर्थात् खुदाके वारिस और मसीहके हम भागी, इस शर्तपर कि हम उसके साथ दुःख उठाएँ, जिससे कि उसके साथ प्रताप भी पावें।" (इन्जील, किताव रोमियो अ० ८ आ० १४-१६-१७) अस्तु, यदि हम अपने निर्णयोंको क्रमवार अङ्कित करें तो निम्नलिखित विषय प्राप्त होते हैं।

(१) शब्द गुलामीका अर्थ धर्ममें पापकी कैद अथवा बन्धन है।

(२) यह कैद नित्य नहीं है परन्तु पुत्रावस्था नित्य है। और

(३) आत्मा यथार्थ मुक्तिको उसी समय पाती है जब कि वह पुत्रावस्थाकी दशा प्राप्त कर लेती है।

यह विषय जैनधर्मकी शिक्षासे नितान्त सहमत है। और वास्तवमें धर्मके सायन्स हीके तीन नियम हैं। इनसे आवागमनके सिद्धान्तकी पूर्णता पूरे तौरसे प्रकट नहीं होती। और यह समझदार मनुष्यके लिए संकेतमात्र हैं। यदि पढ़नेवाला अब अपनेसे यह प्रश्न पूछे कि-पाप क्या वस्तु है? तो वह शीघ्र इस बातको देख लेगा कि इस नामका कोई जीवित व्यक्ति अथवा पदार्थ नहीं हो सक्ता है। यह तो एक मात्र शब्द है। और यदि हम आजसे कयामतके दिन तक इसकी खोज करते रहें तो यह विश्वसनीय है कि वह सदैव एक मात्र शब्द ही पाया जायगा

यथार्थता यह है कि पापका अर्थ दुष्कृत्योंका करना है कारण कि पाप कोई वास्तविक व्यक्ति अथवा पदार्थ प्रकृतिमें नहीं है। इसलिए पापकी गुलामी प्रकटरूपमें कृत्यो अर्थात् कर्मोंका बंधन है जिससे छुटकारा पानेसे पुन्नावस्थाकी हालत प्राप्त होती है।

अब यदि पाठक इस विषय पर और ध्यान देगा और प्रश्न उठायेगा कि आत्मा अपने कर्म्मोंसे कैसे बंधती है? तो वह शीघ्र उन निर्णयो पर पहुँच जायगा जो हम आश्रव और बंधके निमित्त में पहिले निकाल चुके है। कारण कि यह असम्भव है कि किसी यथार्थ सत्ता रखनेवाले जीवित आत्मा वा पदार्थको केवल ख्याली विचारो अथवा कल्पनाओं वा शब्दोंसे बांधा जा सके। इसके लिए किसी बांधनेवाली शक्तिकी आवश्यका है। और बांधनेवाली शक्तिका किसी द्रव्य वा पदार्थके अस्तित्वसे विलग विचारमे आना असंभव है। यहां पर जैनधर्मकी ठीक ठीक वैज्ञानिक शिक्षा उत्कृष्टरीत्या उपयोगी प्रमाणित होती है कारण कि जब कि कुछ धर्म, शब्द मात्र जैसे भ्रान्त, माया आदिसे आत्माको बांधना चाहते हैं, कुछ थोथेरूपमें इच्छाका उल्लेख करते हैं और कुछ इस प्रकारके साधारण शब्दोको व्यवहृत करते है जैसे कर्म-कृत्य-पाप और प्रारब्ध। विज्ञान (सायन्स) की तरहके ठीक ठीक ज्ञानकी आवश्यका पर हम पहिले जोर दे चुके हैं। और यह जाहिर है कि धर्म्मोंके झगड़े और भ्रम केवल थोथी समस्यायों ही पर अवलम्बित हैं।

यह बुद्धिगम्य नहीं है कि अब कोई मनुष्य ऐसा मिले जो यहुन्नाकी इन्जीलके आठवें अध्यायकी छत्तीसवीं आयतमें आए हुए शब्द पुत्रका अर्थ ईसू नासरी लगाए। परन्तु यदि कोई ऐसा ख्याल करे तो यह याद रखना चाहिए कि एक आत्मा दूसरी आत्माको आत्मोन्नतिके कार्यमें इससे अधिक सहायता नहीं दे सकी है कि उसको आवागमनकी कैदसे छुटकारा पानेका मार्ग बतलादे। और यह भी नहीं है कि हमारे निजी विश्वासोका कुछ प्रभाव इस कार्य पर पड़ता हो, कारण कि प्राकृतिक नियम मनुष्यो अथवा उनसे नीच व ऊंच अवस्थाके प्राणियोकी इच्छाओं पर निर्धारित नहीं हैं सुतरां अपनी स्वतंत्र क्रिया रखते हैं। इसलिए जब कतिपय मनुष्य ऐसा कहते हैं कि उनको यह विचार विशेष संतोषदायक प्रतीत होता है कि उनको कोई व्यक्ति अपनी कृपासे मुक्ति दे देगा तो वह झूठी रक्षासे आश्वस्त हो जाते हैं और अपनेको एक ऐसे प्रत्यक्षमें बेजान ज्वालामुखी पर्वतकी शिखा पर सुला देते हैं जिसकी बाह्य शांति शीघ्र ही अचानक नष्टताके उद्वेगसे परिवर्तित हुआ चाहती है। उन नियमोसे, जो आत्माके संबंधमें पहिले वर्णित किए जा चुके हैं यह साफ प्रकट होता है कि उसकी कैदको कोई मनुष्य उसके बाहिरसे किसी हालतमें नहीं तोड़ सक्ता है। इसका कारण यह है कि एक आत्मा दूसरी आत्माकी इच्छाओं पर अधिकार नही रखती है जो इस कारणवशं कि वह आत्मा

और पुद्गलके मेलके कारण हैं जब तक कि वह स्थित हैं अपना प्रभाव अवश्य दिखाती रहती हैं।

मुर्दोंके जी उठनेके संबंधमें ईसाकी शिक्षा, जो ईसाईयोंके आवागमनके विरोधकी अन्तिम गढ़ी है, स्वयं आवागमनको प्रमाणित कर देती है यदि उस पर दार्शनिक दृष्टिसे ध्यान दिया जाय। यह शिक्षा, कतिपय सद्दाकियोंके इस प्रश्नके उत्तरमें कि-कयामतमें एक अमुक स्त्री किसकी पत्नी होगी? जिसने इस जगतमें सात भाइयोंसे, उनके एकके पश्चात दूसरेके मर जाने पर विवाह किया था, दी गई थी। और उसका विषय शब्द व शब्द निम्नप्रकार है (देखो लूकाकी इन्जील अ० २० आ० ३४-३६):—

"इस जगतके पुत्रोंमें विवाह शादी होती है परन्तु जो लोग इस योग्य माने जांयगे कि उस जगतको प्राप्त करें और मुर्दोंमेंसे जीवित हो उठें, वह विवाह नही करते और न उन की शादी कराई जाती है। और न वह फिर मर सके हैं कारण कि वह देवोंके सदृश हैं और ईश्वरके पुत्र हैं इस कारणसे कि वे कयामतके पुत्र हैं।"

यहाँ यह प्रत्यक्षरीत्या बताया गया है:—

(१) कि कयामत प्रत्येक मनुष्यके लिए नहीं है सुतरां केवल उन्हींके लिए है जो उस जगतके पानेके और मुर्दोंसे जी उठनेके योग्य माने जाते हैं।

असहमत-

(२) कि उस जगतमें विवाहकी रीति रिवाज नहीं है।

और

(३) जो लोग मुर्दोंसे जी उठते हैं वह अनादि जीवन पाते हैं और कयामतके पुत्र होनेके कारण ईश्वरके पुत्र कहलाते हैं।

परन्तु इनमेंसे पहिली बात ही कयामतके सिद्धांतके संबंधमें प्रचलित शिक्षाकी घातक है जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य योग्यताका ध्यान न रखते हुए जीवित किया जायगा। ईसू प्रकटरीत्या कहता है कि वह अवस्था केवल उन्हींके लिए है जो उसके योग्य समझे जांयगे। दूसरी बात सर्व साधारणके अकीदेके और भी विरुद्ध है जिसके अनुसार स्त्री पुरुष पौद्गलिक शरीरोंके साथ जी उठेंगे और वंश एकत्रित किए जांयगे। अब यदि मुर्दोंसे जीवित हुए मनुष्योंमें स्त्री पुरुषका भेद होगा तो उनकी अवस्था उन विधवाओंकी सी होगी जिनको पुनर्विवाह करनेकी आज्ञा नहीं दी गई है, और जिनके साथ ईसाई लोग इस कारणसे कि बलात्कार उन पर जीवनभरका वैधव्य डाल देना अदया और अन्यायका काम है, अत्यन्त अनुकम्पा प्रकट करते हैं।

हम पूछते हैं कि कयामतके बादके जगतके उन मनुष्योंकी क्या अवस्था होगी? जो पुरुष और स्त्री तो होंगे परन्तु जो विवाहके सुखसे वँचित रक्खे जांयगे? क्या इन्द्रीका अवयव

जब कि वह अपना काम न कर पावे, असह्य दुःखका कारण न होगा? और ऐसी प्रत्येक आत्मासे, जिसने कभी किसी प्रकारके नियम और क्रियाका पालन नहीं किया है और जो तपस्याके तना द्वार और संकुचित मार्गमेंसे नहीं, सुतरां किसी मोक्ष-प्रदायककी कृपा व अनुग्रहसे ईश्वरके राज्यमें प्रविष्ट हुई है, यह आशा करना कि वह एक जैन अथवा हिंदु विधवाके सदृश सदैव परहेजगार वनी रहेगी, व्यर्थ है। हां! ऐसी ही कठिनाइयां हैं जिनमें अवैज्ञानिक विचार पडा करते हैं जब वह घटनाओंके विपरीत मत देने पर उतारू होते हैं।

तीसरी बात अर्थात् नित्य जीवनको जीवित हुए मनुष्योंका पालेना भी इतना ही आश्चर्यकारक है। सांसारिक आत्मा द्रव्य (नूर) और पुद्गलका समुदाय है और समुदायका यह लक्षण नहीं है कि वह अविनाशीक हो। और न अमर जीवन कोई ऐसा पदार्थ है कि जो दो दो आनेकी पुडियायोंमें अत्तारोंके यहां मिल सके। यथार्थता यह है कि कयामतका सिद्धान्त वास्तवमें आवागमनका सिद्धान्त है यद्यपि वह गुप्तसमस्यावाली भाषामें छुपाया गया है! यहूदी लोग इनसे अपरिचित न थे और फरासी लोग प्रकटरीत्या इसको मानते थे। इनके पहिले यह मिश्रवासियोंको ज्ञात था, जिन्होने अनुमानतः पारसियोंसे किसी प्रकार प्राप्त किया था। परन्तु कयामतके दिवसके ईश्वरका यथार्थ प्रारंभ हिन्दुओंका देवता यमराज है, जो जीवोंके मरने

पर उनके पुण्य और पापका परिमाण लगाता है। और उनको उनके योग्य स्थानों पर भेज देता है।

यह यमराज कर्म्म (प्राकृतिक नियम) का चित्र (रूपक) है जो इस कारणवश कि वह विभिन्न द्रव्यों और उनके प्राकृतिक गुणों और शक्तियोंसे उत्पन्न होनेवाला परिणाम है, किसी दशामें भूल नहीं कर सका है। परंच मुर्दोंके एक नियत दिवस जगतके अन्त पर जी उठनेकी कल्पना इस सिद्धांतसे किसी धर्ममें भी सम्बंध नहीं रखती थी। यद्यपि कतिपय शास्त्रोंका उपदेश बाह्य शाब्दिक अर्थमें इस प्रकारके अर्थको खींचतान कर स्वीकार कर सक्ता है। यथार्थ भाव यह था कि प्रत्येक व्यक्तिके मरने पर उसकी आक़ुबत (भविष्य) का निर्णय कर्म्मके नियमसे, जो मृत्युके देवताके रूपमें बांधा गया है, स्वतः हो जाता है। और वह एक नवीन योनिमें द्वितीय वार जन्म धारण करनेकेलिए प्राकृतिक आकर्षणसे पहुँच जाता है। यह क्रम जन्म मरणका निर्वाण प्राप्ति तक, जिसका अर्थ मृत्यु पर विजय पाना अर्थात् मुर्दोंसे जी उठना है, चालू रहता है। मुर्दोंसे अभिप्राय उन समस्त आत्माओं से है जो आत्मावस्थामें जीवित नहीं हैं जैसा कि इन्जीलकी निम्नलिखित आयतमें आया है (देखो मत्तीकी इन्जील अ० ८ आ० २२):—

"मुरदोंको अपने मुर्दे दफन करने दो।"

इन्जीलकी किताव मुकाशफा (प्रकाशित वाक्य) का भी

ऐसा ही भाव है (देखो अ० १ आ० १८) कि जहां एक पूर्णात्मा (जीवन मुक्त) के मुखसे कहलवाया है कि:—

"मैं वह हूं जो जीवित रहता है और मर गया था और देख मैं अनन्त समय तक जीवित रहूंगा। आमीन! और मौत और दोज़खकी कुञ्जियां मेरे पास हैं।"

अस्तु. मुर्दोंसे जी उठने अथवा क़यामतका अर्थ मृत्यु पर विजय प्राप्त करना है। अर्थात् उस कमताईके दूर कर देनेसे है जो आत्मपतनके कारणवश उत्पन्न होती है। यह कमताई राग और द्वेषके कारणसे है (जिनको कविकल्पनामें पाप और पुण्यका फल बांधा गया है) और चारित्रको ठीक करके मृत्युको परास्त करनेसे दूर हो जाती है, जब कि वह मनुष्य जो "उस जगतके पाने और मुर्दोंसे जी उठनेके योग्य, ख्याल किए जाते हैं" फिर कभी नहीं मर सके (देखो लूकाकी इन्जील अ० २० आ० ३६) इस प्रकार मृत्युका साम्राज्य उस प्रदेशमें सीमित है जहां राग और द्वेष अर्थात् व्यक्तिगत प्रेम और नफरत पाए जाते हैं। जैसा कि हम वैज्ञानिक संबंधवाले व्याख्यानमें देख चुके हैं। राग और द्वेष कर्मोंके बंधन और आवागमनके वास्तविक कारण हैं। उनसे आत्मा और पुद्गलका मेल होता है जिससे आत्माकी शक्ति निस्तेज पड़ती है। यह वह ही बात है जो ईसाई समस्या परिचायक विद्वानोंने स्वतः बतलाई है जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं यद्यपि उनको इस सम्पूर्ण विषयसे विवरणके साथ

परिचय न था। यहूदियोंके मर्म्मज्ञानमें भी जो उनके धर्मका सच्चा पहलू है जैसा कि इस समय पूर्ण प्रकट हो गया होगा (कारण कि शाब्दिक अर्थ तो केवल बीजरहित पोस्तके भांति है) आवागमनका सिद्धांत स्वीकार किया गया है (देखो ई० रि० ऐ० भा० ७ पत्र ६२६)। प्रो० नेत्रनीकोफ साहबका वक्तव्य है (देखो दि नेचर ऑफ मैन, पत्र १४३-१४४ :—

"कब्बालह (गुप्त समस्या) के फिलसफाके ज़मानेमें यहूदी आवागमनके सिद्धांतको स्वीकार करतेथे और इस बातको मानते थे कि आदमकी आत्माने दाऊदमें जन्म लिया था और भविष्यमें मसीह होगी।"

सच तो यो है कि आवागमनका सिद्धांत यहूदियोंके मतके प्राचीन प्रारम्भिक शिक्षामें गर्भित है। परन्तु अपने विषयकी ओर ध्यान देते हुए मृत्यु तो आत्मा और पुद्गलके मेलका फल है इस कारणसे कि वह दोनों ही स्वतंत्रताकी अवस्था (निज स्वरूप) में अमर हैं। कारण कि वह दोनो याने विशुद्ध आत्मद्रव्य और पूर्ण पुद्गलके परमाणु असंयोजित हैं और इसलिए नष्ट होनेके अयोग्य हैं। अस्तुः, जो कोई अमर जीवनका मुमुक्षु है उसको चाहिये कि वह उसको अपने ही स्वभावमें अपनी आत्मासे उस बाह्य पुद्गलके एक २ परमाणुको जो उससे लिपटा हुआ है, पृथक् करके ढूंढे। यह एक ही तरहसे सम्भव है अर्थात् केवल तपस्याद्वारा। जब कोई मुमुक्षु सर्व प्रकारके राग और द्वेषसे

रहित हो जाता है तब कहा जाता है कि उसने मृत्यु पर विजय प्राप्त करली यद्यपि वह इस संसारमें मनुष्योंके मध्य जीवित रहता है जब तक कि उसका शरीर (वा विशेष सुगमताके साथ उसके शरीर) पूर्णतया उससे विलग नहीं हो जाते। उस कालमें वह जीवन्मुक्त कहलाता है। अतन्तः जब वह सर्व प्रकार पौद्गलिक सम्बन्धोंसे छुटकारा पाता है तो वह तत्क्षण लोकके शिखिर पर विशुद्ध नूर (द्रव्य) के रूपमें पहुंच जाता है और दि मोस्ट हाई (The most High= परमोत्कृष्ट परमात्मा) कहलाता है। क्यों उस जगतमें विवाह नहीं होता है और न कराया जाता है, इसका कारण यह है कि उस जगतमें लिङ्ग भेद ही नहीं है। लिंग भेदका सम्बंध शरीरसे है न कि आत्मासे। इस कारण वश एक ही आत्मा आवागमनके चक्करमें कभी पुरुष और कभी स्त्रीका रूप धारण करती है। परन्तु जब वह इस संसार सागरके दूसरे किनारे पर पहुंच जाती है तो उसके विषय प्रसंग के ख्यालात और वह पौद्गलिक शरीर जो लिंग भेदकी इंद्रियों के लिए आवश्यक है, दोनों ही तप और ज्ञानकी अग्निसे जल जाते हैं। यही कारण है कि निर्वाणमें जीव न विवाह करते हैं और न उनका विवाह कराया जाता है। अस्तु, ईश्वरके पुत्र (Sons of God) वह विशुद्ध और पूर्ण महात्मा हैं जिन्होंने अपने उच्च आदर्शको प्राप्त कर लिया है और जो परमात्मा हो गए हैं। उन्होने अपने कर्म्मोंकी कैद और उनसे उत्पन्न होनेवाले

बारम्बारके जन्म मरणके फंदोंको तोड़ डाला है। और अब लोकके शिखिर पर मिथ्यात्व और उसके दिली मित्र मृत्युके विजयीके तोर पर जीवित हैं। वह ईश्वरके पुत्र कहलाते हैं इस कारणसे कि उन्होंने परमातमाकी पूर्णताको प्राप्त किया है और जीवनका अन्तिम ध्येय है (अभिप्राय है) मानो परमात्मापन अथवा खुदावंदीको उत्तराधिकारमें पाया है। विशुद्ध पूर्ण आनंद अर्थात् कभी न कम होनेवाला सदैवका परमानंद, मृत्युको परास्त करनेकी शक्ति अर्थात् अमर जीवन, सर्व शक्तिमत्ता अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन जिनको जैनधर्मके शास्त्रोंमें अनंत चतुष्टय कहते हैं उनकी विशुद्ध आत्माओंके गुण हैं। वह मनुष्य जातिके यथार्थ शिक्षक हैं और ज्ञान अर्थात् धर्मके यथार्थ श्रोत हैं। उनके मुख्य गुण जो ईसूने बताए हैं (देखो लूकाकी इन्जील अ० २० आ० ३४ से ३६) निम्न प्रकार हैं:—

(१) आत्मिक योग्यता, जिससे वह उस जगत अर्थात् निर्वाणको पाते हैं।

(२) लिंगभेदसे रहित होना अर्थात् सर्व प्रकारके शरीरों से छुटकारा।

(३) मृत्युसे मुक्ति, और

(४) परमात्मापनकी प्राप्ति।

यह असम्भव है कि लूकाकी इन्जील (अ० २० आ० ३६) में मसीहके कहे हुए शब्दों "फिर कभी नहीं" पर अत्युक्तिके साथ

ज़ोर दिया जा सके। यदि आत्मायें केवल एक ही वार उत्पन्न होती और मरती हों तो यह शब्द नितांत व्यर्थ ठहरेंगे। यह व्याख्या कि यह वर्णन केवल उन ही परम आत्माओंकी निस्वत कि जो उस जगत्को पाते हैं और मुर्दोंसे जी उठते हैं, किया गया था, इस वातको प्रकट करनेके लिए उपयुक्त है कि वह समस्त आत्माओंसे अभिन्नरीत्या सम्बंधित नहीं है। अस्तु, जब कि वह समस्त प्राणी जिन्होने अपनी आत्माओंको पवित्र नहीं कर लिया है, आवागमनमें वारम्वार जनमते और मरते रहते हैं, वह आत्मा जिन्होंने आत्मिक पूर्णताको पूरे तौरसे प्राप्त कर लिया है भविष्यमें फिर कभी नहीं मर सक्ते हैं (देखो की आफ नालेज)।

अब हम निम्न आयतका भाव सरलतासे समझ सक्ते हैं:—

"धन्य वे हैं जो नम्र (हलीम) हैं क्योंकि वह पृथ्वीको तर्कमें पावेंगे।" (देखो मत्तीकी इन्जील अ० ५ आ० ५)

इसका साफ तौरसे यह मतलव है कि वह लोग अपने भावी जन्मोंमें राजा और मनुष्योंके सरदार वनेगें। क़यामतके सिद्धांत की प्रचलित विवेचनासे इस आयतका मतलव पूर्णतया खन्त हो जाता है क्योंकि यदि क़यामतके पहिले जगतका अन्त हो जावेगा तो नम्र किस चीजको तर्कमें पावेंगें। इसी तौर पर यह कहा गया है (देखो मत्तीकी इन्जील अ० १९ आ० २२):—

"और जिस किसीने घरों वा भाइयों वा वहिनों अथवा वाप

मा व स्त्री अथवा बच्चों वा खेतोंको मेरे नामकी खातिर छोड़ दिया है उसको सौगुना मिलेगा और वह सदैवके जीवनका वारिस होगा।"

यह पूर्णतया वही बात है जो जैनमतमें कही है, जैसे कि रत्नकरण्डश्रावकाचारके निम्नके वक्तव्यसे, जो गृहस्थ धर्म पर एक अतिमाननीय शास्त्र है, प्रकट होगा:—

"जिनके हृदय सच्चे श्रद्धान (सम्यक् दर्शन) से पवित्र हो गए हैं वह तेज, प्रताप, विद्या, कीर्ति, लक्ष्मी, विजय और महत्ता के स्वामी होते हैं। वह उच्चवंशोंमें उत्पन्न होते हैं और धर्म, अर्थ, काम व मोक्षके साधक और मनुष्योंमें उत्कृष्ट होते हैं।

"जिसने धर्मका अमृत पिया है वह जीव सर्व प्रकारके दुखों से मुक्त होता हुआ अपार अद्भुत और सर्वोत्तम मोक्षके परमानन्दके समुद्रसे अपनी तृप्ति करता है।

"जो जीव वैराग्य और धर्मके कठिन मार्ग पर चलते हैं वह सदैवके लिए मुक्तिके परमानन्द (अलौकिक सुख) को भोगते हैं। और उनमें अनंत ज्ञान, दर्शन, शक्ति, शांति, आनंद, तृप्ति और पूर्णता पाई जाती है। और यदि कोई ऐसी आफत आ जावे जो तीनों लोकोंको नष्ट करनेको प्रबल है, तो भी सैकड़ों कालोंके व्यतीत होने पर भी मुक्त जीवकी अवस्थामें रंचमात्र भी कमी नहीं हो सक्ती है।"

अब हम ईसू और यहुन्ना बपतिस्मा देनेवालेके आपसी

सम्बंधको समझनेका प्रयत्न करेंगे, जिनमेंसे अन्तिम उल्लिखितका व्यक्तित्व इन्जील मुकद्दमसे अति गूढ़ है। प्रथम तो वह मसीहका उसकी माताके सम्बधसे भाई है और मसीहकी माकी आवाज़को जब कि मसीह उसके पेटमें था स्वतः अपनी गर्भवती माताके पेटके भीतरसे ही सुन कर हर्षके मारे उछल पड़ता है (देखो लूकाकी इन्जील अ० १ आ० ४१)

यह लिखा है कि यहुन्ना यरदन नदीके किनारे ईसाको मिला और जब ईसाने उससे बपतिस्मा लेना चाहा तो उसने मृदुतासे उत्तर दिया (देखो मत्तीकी इन्जील अ० ३ आ० १४):—

"मैं आप तुझसे बपतिस्मा लेनेका याचक हूं और तू मेरे पास आता है (अर्थात् मुझसे बपतिस्मा लेना चाहता है)।"

वह उसी समय ईसूको बपतिस्मा देनेको राज़ी होता है कि जब ईसू उसे विश्वास दिलाता है कि मसीहकेलिए पहिले उससे बपतिस्मा पाना आवश्यक है (देखो मत्तीकी इन्जील अ० ३ आ० १५)।

"ईसूने जवाबमें उससे कहा कि तू अब ऐसा ही होने दे कारण कि हमें इसी प्रकार सर्व धर्म्माचरण पूर्ण करना उपयुक्त है।"

इसके पश्चात् यहुन्नाने देखा कि आकाश खुल गया और ईश्वरीय आत्मा फाख्ताके रूपमें ईसूके ऊपर उतरी। और उसके विषयमें यहुन्नाने स्वयं ऐसा कहा है, (यहुन्नाकी इन्जील अ० १ आ० ३४):—

"तब मैंने देखा और साक्षी देता हूं कि यह ईश्वरका पुत्र है।"

द्वितीय दिवस यहुन्नाने अपने दो शिष्योंको ईसूको आते हुए दिखाया और कहा (देखो यहुन्नाकी इन्जील अ० १ आ० ३६ :-

"देखो यह परमेश्वरका मेमना है।"

अपने आनेका मतलब यहुन्नाने इस प्रकार बतलाया (देखो यहुन्नाकी इंजील अ० ३ आ० २८ से ३० तक)।

"मैं मसीह नहीं हूं परन्तु मैं उसके आगे भेजा गया हूं। जिसके पास दुलहिन है, वही दूल्हा है परन्तु दूल्हाका मित्र जो खड़ा हो और उसकी वातें सुनता हो, दूल्हाको आवाजसे अति प्रसन्न हुआ है। अतः, मेरी यह खुशी पूरी हो गई। जरूर है कि वह बढ़े और मैं घटूं। और जो ऊपरसे आता है सबसे ऊपर है। और जो पृथ्वीका है वह पृथ्वी हीसे है और पृथ्वी हीकी बातें कहता है। जो आकाशसे आता है वह सबसे ऊपर है।"

और यह भी कहा (देखो लूकाकी इन्जील अ० ३ आ० १६):—

"मैं तो पानीसे तुम्हे बपतिस्मा देता हूं परंतु मेरे उपरांत एक आनेवाला है जो मुझसे अधिक शक्तिमान है, जिसके जूतेका तशमा खोलनेके योग्य मैं नहीं हूं। वह तुमको पवित्र आत्मा और अग्निसे बपतिस्मा देगा।"

यहुन्नाने यह सब कुछ तो कहा फिर भी कुछ महिनोंके पश्चात

जब हेरोडने उसको कारावासमें डाल दिया तो उसने अपने शिष्योंको भेजा कि वह जाकर ईसूसे पूंछे कि "आया वह वह ही है जो आनेवाला था" अथवा वे किसी अन्यकी प्रतीक्षा करें (देखो मत्तीकी इन्जील अ० ११ आ० २—३)।

मैं यहुन्नाकी इस अद्भुत कलाबाजीके सम्बंधमें स्वतः कुछ नहीं लिखूंगा सुतरां केवल इवैनसन साहब (Evanson) को जो बहुत दिनों तक ईसाई क्रियाके पादरी थे और जिन्होंने अन्तमें, अपनेको उस क्रियासे विपरीत मत होनेके कारण पृथक् कर लिया था, स्वयं अपनी सम्मति आपके समक्ष इस विषय पर प्रकट करने दूंगाः—

"अब यह असम्भव प्रतीत होता है कि यहुन्नाको, जो बाल्यावस्थाहीसे ईसूसे जानकार था और जो उसके सम्बंधमें वह सब हाल जानता होगा जो उसने अपने और उसके पुर्खोंसे सुना होगा और जिसने अद्भुतरीत्या अपनी माताके पेटहीमेंसे अपने प्रेम और विनयका प्रकाश केवल उसकी (ईसूकी) माताकी आवाजके सुनने पर हर्षके मारे उछल पड़नेसे किया था किसी समय ईसूके मसीह होनेमें शंका हुई हो।" (देखो History of the New Testament Critcism पृ० ६१)।

जिस पुस्तकका यहां पर उल्लेख किया गया है उसके लेखक मि० एफ० सी० कोनीबैर लूकाकी इन्जीलकी उल्लिखित आयतों

की निस्वत वर्तमान समयकी विद्वत्तापूर्ण ज्ञानवीनका परिणाम इन अर्थमय शब्दोंमें देते हैं (देखो पूर्व पृ० ६१):—

"यथार्थ सम्मति वस्तुतः यह है कि सुगमताका दावा करने के बावजूद लू.का एक असावधान और अनाप सनाप लिखनेवाला लेखक था।"

खुद इवैनसनकी सम्मतिमे लूकाकी इन्जीलके प्रथम दो अध्याय;-

"द्वितीय शताब्दिके नूतन ईसाइयोंमेंसे कतिपय बेतकल्लुफ जालसाजोंकी निर्भय अफसानागरी हैं। जिन्होंने यह विचार करके कि उनके नूतन धर्म्मके प्रतिपादककी इसमें प्रतिष्ठा बढ़ती है इस बातकी कोशिश की कि उसकी उत्पत्ति तो कमसे कम इतनी ही अद्भुत प्रमाणित हो, जितनी मूर्तिपूजकोंके सूरमाओ और देवताओंकी होती है। और जिन्होंने पश्चात् की ईसू परस्तीकी अर्थात् ईसूकी परमेश्वरके सदृश माने जानेकी नींव रक्खी जो कुफरकी शिद्दतकी अपेक्षा बुतपरस्तोंकी भद्दी रिवायातोंसे भी बढ़ कर है।"

(देखो पूर्व पृ० ६२)।

अभाग्यवश यह बात न तो इवैनसनको और न किसो वर्तमान समयके खोजीको और न स्वयं पादरी लोगोंको ही सूझी कि नए अहदनामेकी किताबें लेखके शब्दोंके भावमें नहीं लिखी गई थीं और घटनाओंके वर्णनके ढंग पर उनको नहीं पढना चाहिए। यदि यह बात उनको सूझ आती तो उनकी क्या

सम्मति होती, मैं नहीं जानता। परन्तु अब मैं यहुन्ना, और मसीहका अभिप्राय आपके समक्ष निर्णीत करूंगा, जिससे कि आप स्वयं उसके मूल्यको परख सकें।

ईसू और यहुन्ना स्वयं आत्मा ही की दो विभिन्न दशाएँ हैं जो उस समय उत्पन्न होती हैं जब कि मनुष्यकी बुद्धिमें आत्मिकताका भाव जागृत हो उठता है। ईसू विजयी जीवनका रूपक है और यहुन्ना सांसारिक भोगोसे पछतानेवाले बुद्धिका। क्योंकि आतमद्रव्य एक ही है जिसके यह दो विविध रूप हैं इसलिये यह दोनो आपसमें रिश्तेदार ठेहरते हैं। इस कारण वश ईसू और यहुन्ना आपसमें अपनी माताओंके संबंधसे भाई हैं। यहुन्नाके जीवनका उद्देश्य एक उजाडमें रुदन करनेवालेके प्रलापके सदृश है और उसके रुदन करनेका भाव मनुष्योंको पश्चाताप करनेकी हिदायत करना और प्रभूके आगमनके लिए मार्गोंको सीधा करना है (देखो मरकसकी इन्जील अ० १ आ०३-४)। यह उस मनकी अवस्था होती है जो पवित्र हृदय से अपने भविष्य पर विचार करने लगता है। जब मनुष्य सांसारिक भोगोसे खिन्न और विषय वासनाओसे दुःखित हो जाता है तब वह अपने भविष्य पर विचार करता है। और उस समय उसको यह ज्ञात होता है कि न कोई मित्र व सम्बन्धी, न सम्पत्ति, न पद, न शारीरिक बल, न कोई अन्य सांसारिक वस्तु उसको मृत्युके पन्जेसे छुड़ा सक्ती है और न नष्टताके

अंधकारको, जो उसके आगे आता है, हटा सकी हैं। तब वह इस संसारको उजाड़के सदृश पाता है और अकेलेपनके भयसे चिल्लाता है। फिर वह विनाशीक सुखों और भोगोंसे खेदित होकर कि जिनमें अब तक उसका मन फंसा हुआ था, धीरे धीरे यह मालूम कर लेता है कि सर्व खुशी और सुख और अमरत्वका भण्डार स्वयं उसका आत्मा ही है। यह वह अवस्था है कि जिसकी उपमा एक मनुष्यके उजाड़में रुदन करनेसे दी गई है जो यह कहता है कि "पश्चाताप करो क्योंकि आकाशका राज्य निकट है।" अब जब कि बुद्धिकी क्रिया मात्र शारीरिक विशुद्धता पर पूर्ण हो जाती है और जब कि जीवन (Will) न कि बुद्धि यथार्थ उन्नतिका कारण है इसलिये यहुन्नाका बैपतिस्मा पानी पर सीमित है। बुद्धि पुद्गलकी बनी हुई पौद्गलिक है। परन्तु आत्मा नूर (द्रव्य) है और प्रकाशवान है। इसलिए बुद्धिसे कहलाया गया है कि वह मसीहके जूतेका तशमा खोलनेकी योग्यता नहीं रखती है। तो भी जब कि बुद्धि हीके द्वारा हम अपनी आत्माके यथार्थ स्वभावको जान सके हैं इसलिए बुद्धि ही आनेवाले मसीहकी, कि जिसके गर्भमें आनेसे वह स्वयं माताके पेट (बच्चेपनकी अर्थात् प्रारंभिक अवस्था) में, हर्षसे उछल पड़ती है, अकेली साक्षी है। परन्तु उस सीमातक कि जहां तक मसीहके जीवनमें ज्ञान एक अत्यावश्यकीय अंग है वह बिदून बुद्धिके बपतिस्मेके सफलमनोरथ नहीं हो सका है।

अतः, ईसूके अर्थसे भरपूर शब्द "अब ऐसा ही होने दे क्योंकि हमको इसी तरह सर्व धर्म्माचरण पूर्ण करना चाहिए।" (देखो मत्तीकी इन्जील अ० ३ आ० १५)। फिर बुद्धि सुखकी भोगनेवाली नहीं है इसलिए वह दूल्हा नहीं है। परन्तु यह उसके लिए स्वाभाविक कृत्य है कि वह दूल्हाकी आवाज सुनकर हर्षित हो, कारण कि उसके ही प्रभावसे उजाड़ स्वर्गमें परिवर्तित हो जाता है। और अन्तिम बात यह है कि चूंकि निर्वाणका भाव सर्वज्ञता है जो मानुषिक मनके कार्य्यालय अर्थात् बुद्धि व स्मृति आदिके नष्ट होनेके पश्चात् प्राप्त होती है इसलिए यहुन्ना (बुद्धि) कहता है कि "आवश्यक है कि वह बढ़े परन्तु मैं घटूंगा"।

यहुन्नाका अपने शिष्योंको इस बातकी खोजमें भेजना कि आया ईसू (आत्मा) मसीह अर्थात् मुक्तिदाता है या नहीं? बावजूद इसके कि वह उसकी गर्भवती माताकी आवाज सुनकर हर्षसे उछल पड़ा था, बुद्धिकी विलक्षणताको प्रकट करता है जो सदैव सशंक अवस्थामें पड़ी रहती है और अपने परिणामोंसे कदाचित ही संतोषित होती है। अतः यह प्रकट है कि यहुन्ना बपतिस्मा देनेवालेका ख्याल उस मानुषिक बुद्धिकी ओर संकेत करता है जिसको आत्माके परमात्मा होनेका पता लग गया है। पवित्र आत्मा वह आत्मिक विशुद्धता है जो जीवको पवित्र वा पूर्ण बनाती है। वह सन्तपनकी देनेवाली है। अर्थात् स्पष्ट

शब्दोंमें पवित्रात्मा वैराग्यहीका द्वितीय नाम है जिसका अर्थ सांसारिक सम्बन्धोंसे प्रबल विरक्तता है। अग्निका भाव तपस्या है। जैसे व्रत उपवास आदि। वैराग्य और तप आत्माके पवित्र करनेके दो मार्ग हैं। इसलिए मसीह पवित्रात्मा और अग्निसे बपतिस्मा देता है। पवित्रात्माको शांतिप्रदायक भी कहते हैं क्योंकि यद्यपि तपस्या प्रारंभमें अति कठोर और असह्य प्रतीत होती है तो भी उच्चपदके साधुओंको इतना आनन्द अनुभवमें आता है कि जिसका वर्णन जिह्वासे नहीं किया जा सक्ता है। तपस्यासे सर्वज्ञताकी प्राप्ति भी ईसूके निम्नलिखित वक्तव्यसे प्रकट है (देखो यहुन्नाकी इन्जील अ० १४ आ० २६ और अ० १६ आ० १२-१३):—

"परन्तु शांतिप्रदायक जो पवित्रात्मा (Holy Ghost) है जिसे पिता मेरे नामसे भेजेगा वह ही तुम्हें सब बातें सिखायेगा और जो कुछ मैंने तुमसे कहा है वह सब तुम्हें याद दिलायेगा।

"मुझे तुमसे और भी बहुतसी बातें कहनी हैं परन्तु उनको अभी तुम सहन नहीं कर सक्ते हो। अलबत्ता जब वह सत्यताकी आत्मा आवेगी तब वह तुमको सब बातें बतादेगी।"

अब इस विषयके सम्बन्धमें कि यह सर्वज्ञता कहांसे उत्पन्न होगी हमको पहिले ही मालूम हो चुका है कि शिक्षाका अर्थ ज्ञानका आत्माके भीतरसे ही निकलना है। अंग्रेजी शब्द

Education का भी यथार्थ भाव यही है जिसके शब्दसाधन अर्थ E+duco= बाहिर निकालनेके हैं । मत्तीकी इन्जीलमें भी ऐसा लिखा है (देखो अ० ५ आ० १४-१५):—

"तुम संसारके नूर हो जो नगर पर्वत पर बसा हुआ है वह छुप नहीं सक्ता । और लोग दीपक जला कर बर्तनके नीचे नहीं बल्कि दीवट पर रखते हैं तो उससे घरके सब लोगोंको रोशनी पहुंचती है ।"

भक्ति और तपस्याका संबंध चौथी इन्जीलके निम्नलिखित वक्तव्यसे इस प्रकार प्रकट होता है (यहुन्नाकी इन्जील अ० १६ आ० ७):—

"परन्तु मैं तुमसे सच कहता हूं कि मेरा जाना तुम्हारे लिए लाभदायक है क्योंकि यदि मैं न जाऊं तो वह शांति-प्रदायक तुम्हारे पास न आएगा । परन्तु यदि मैं जाऊंगा तो मैं उसे तुम्हारे पास भेज दूंगा ।"

इसका भाव प्रकटरीत्या यह है कि शिष्योंकी भक्ति, तपस्या के मार्गमें, जो आनन्द प्राप्तिका द्वार है, बाधक थी । स्वयं आनन्द की दुल्हनसे उपमा दी गई है जो दूल्हाको आनन्दप्रदायक है । इसलिए यहुन्ना बपतिस्मा देनेवालेने कहा है:—

"जिसके पास दुल्हन है वह ही दूल्हा है ।"

यहुन्नाका वक्तव्य उसकी निस्वत जो पौद्गलिक है और पौद्गलिक वस्तुओंका उल्लेख करता है, और उसकी निस्वत जो

ऊपरसे आता है विशेष शिक्षाप्रद है। बुद्धि व्यक्तित्व विशुद्ध नूर (चेतना) नहीं है। सुतरां आत्मा और पुद्गलका संयोग बहिरात्मा है जो पृथ्वीकी खाकसे बना है और जिसमें जीवनका स्वांस फूंक दिया गया है। यह स्थूल व्यक्तित्व बाह्य आत्मा है जो पुण्य और पापका भेद करती है और जिसका कर्तव्य यथार्थ आत्माको अपने परमात्मापनका ज्ञान हो जाने पर पूर्ण हो जाता है। यही अर्ध पौद्गलिक अर्ध नूरानी (विशुद्ध) व्यक्तित्व है जो यहुन्ना बपतिस्मा देनेवालेके रूपमें प्रकट होता है और जो घटता है और नष्ट हो जाता है जब कि उसका रिश्तेका भाई अर्थात् विजयी जीवन बढ़ता और उन्नत होता है। दूसरे शब्दोंमें जब कि पुद्गलसे पृथक् करनेवाली क्रिया (तपस्या) जीवनकी पूर्णता और परमात्मापनको पहुंचाती है वह उन सर्व शक्तियों और इन्द्रियोंका नाश कर डालती है जो विशुद्ध नूरके लिये व्यर्थ और हानिदायक हैं चाहे वह अमुक भावके लिए कितने ही आवश्यक क्यों न हों। अस्तु; यहुन्नाका निम्नलिखित उच्च अर्थोंको लिए हुए वक्तव्य है कि:—

"आवश्यक है कि वह बढेगा और मैं घटूंगा।"

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, मसीहका विचार, हिन्दू मतमें भी कृष्णके रूपमें पाया जाता है जो गोपियों और गउओंका नाथ है। यहां पर मैं उस रूपकके मूल सिद्धान्तोंका केवल विशेष संक्षेपके साथ वर्णन कर सका हूं। इसबात पर ध्यान देते

हुए कि उसके चरित्रसे पूरे पूरे पुराण भरें हुए हैं। और इस रूपकके हल करनेकी कोई मुख्य आवश्यक्ता भी इस समय प्रतीत नहीं होती है कारण कि अब एक प्रामाणिक व्याख्या भी समस्त महाभारतकी 'गूढ शिक्षाकी जिसमें कृष्णका जीवन चरित्र भी सम्मिलित है विद्यमान है। यह आयर महाशयकी किताब है जिसका उल्लेख पी० एच० डी० के संक्षेपरूपमें हम पहिले कर चुके हैं। साधारणरीत्या जब कि शुभकर्म्मोंके फलके कारण कोई मनुष्य अपनी आत्माकी ओर आकर्षित होता है तो आत्माके परमात्मापनका विचार बुद्धिमें घटित हो जाता है और सम्यक्दर्शनके प्राप्त हो जानेसे उसकी आत्मामें जीवनका प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। पौलस रसूलने इसको निम्न शब्दोंमें खूब दर्शाया है (१-करिन्थियों १५;४५):—

"प्रथम पुरुष अर्थात् आदम जीवित प्राणी (आत्मा) था पिछला आदम जीवित नूर हो गया।"

नूर (जीव द्रव्य) का इस प्रकार जीवित होना ही कृष्णकी उत्पत्ति है जो यथार्थ मुक्तिप्रदायक है। क्योंकि जब वह पूर्णरूपमें जागृत हो उठता है तो स्वयं आत्मा ही एक पूर्ण परमात्मा हो जाता है। इस कारणवश कृष्ण समस्त ईश्वरीय गुणोंका समुदाय है। वह गोपियों और गउओं (भजन व रीति आदि) का स्वामी है। बाल्यावस्था ही में वह काली नागराजको परास्त करता है जिसका विवेचन इच्छाओं व इन्द्रिय लोलुपताके मार-

नेके रूपमें हम पहिले कर चुके हैं। जब इन्द्र (अपवित्र आत्मा) गउओंको चुराना चाहता है तो कृष्ण गोवर्धन पर्वत (इच्छाओंके मन) को अपनी छोटी उंगली पर उठा लेता है और इस प्रकार उनकी रक्षा करता है। अंधेरी रातोंमें गोपियोंको उनके पतियोंकी सेजों परसे बुलाना, जमुना तटकी चांदनी, रात्रिके मस्ताना नृत्य, चोरी छुप्पेके चुम्बन और आलिंगन जो नैतिक विचारसे पल्लेदर्जेके दुर्व्यवहार हैं यदि वे किसी यथार्थ मनुष्य द्वारा किए गए हो, मसीह या कृष्णके लिए नितान्त उपयुक्त है। कारण कि कृष्ण गोपी (आत्मा)के लिए परमात्मापनकी पूर्णता का आदर्श है जिससे उसको दिल खोल कर प्रेम करना चाहिये उसके लिए आवश्यक है कि वह रात्रिके अंधकारमें अर्थात् अपने मनसे दुनियादारीके विचार निकाल कर पतिके स्नेह और सहजोलियोंके लाञ्छनों (सांसारिक संबंध) का ख्याल हृदयसे निकाल शान्तिसे बहनेवाली जमना (चित्त या मन)के तट पर आ निकले। जब वह अपने मुक्तिप्रदायकके समक्ष अपने वस्त्र उतार कर (सांसारिक परिग्रह वा धनसम्पत्तिको छोड़ कर) खड़ी हो जाती हैं, जब वह स्त्रियोंकी लज्जाके अन्तिम चिन्हको भूल जाती है और अपनी नग्नावस्था और सामाजिक नियमोंको ख्यालमें न लाकर सीधी खड़ी हुई दशामें अपने हाथ अपने शीशके ऊपर उठाकर जोड़ती है तब प्रेमी और प्रेमके द्वैतवादका विचार हृदयसे निकल जाता है और प्रेमके परिणामका अनुभव

होता है। प्रेममें मग्न गोपियोकी आकान्क्षायें और भय, उनकी गृहस्थीके कार्य्योंसे बेसुधी, उनकी अपने प्रियके आलिङ्गनकी उन्मत्त अभिलाषा, ये सर्व रूपक मात्र हैं जो इस बातको प्रकट करते हैं कि नूरानी फजीलत (विशुद्ध आत्मोन्नति) के प्राप्त करनेकेलिए, जो मुक्तिप्रदायक क्राइष्ट या कृष्णके रूपमें बांधा गया है, कैसी उत्कृष्ट भक्ति और उत्साहकी आवश्यक्ता पड़ती है (देखो की आफ नालेज अ० सातवां) कृष्णका जन्म उस बडेसे बड़े संग्राम (महाभारत) के प्रारंभका, जो आत्माको अपने जीवनमें लड़ना पड़ता है, चिन्ह है। जागृत नूर (आत्मा) चुप नहीं रह सक्ता है। उसको बहुत काम करना है। ईसाइयोंके शास्त्रोंकी भाषामें उसको "पिता"के कर्तव्योंको पूर्ण करना है। लूकाकी इन्जीलमें लिखा है (अ० ३ आ० ५):—

"प्रत्येक घाटी भर दी जायगी प्रत्येक पर्वत और टीला नीचा किया जायगा। जो टेढ़ा है सीधा बनाया जायगा। जो ऊंचा नीचा है वह समतल किया जायगा।"

परन्तु यह कार्य अनवरोधित नहीं हो सक्ता है। अंधकारके देव संघर्षको तत्पर हैं। पहिले उनसे निर्णय करना आवश्यक है। अब वंशों और जातियोका जमाव होता है, वीर उत्पन्न होते हैं सूरमा युद्धशिक्षा पाते हैं एकत्र सेनाऐं की जाती हैं। कृष्णके पथप्रदर्शनसे कमजोर अल्पविश्वासी आत्मा (अर्जुन), शत्रुकी बलवान सेनासे प्रचंड रण करता है। अन्तमें पाप परास्त

होता है आत्माकी विजय होती है और कारावाससे मुक्ति प्राप्त होती है। फिर निर्वाण है और आनन्द एवं सुख, जहां पर न कोई संग्राम करनेको अवशेष रहता है, न कोई शत्रु भय दिखाने अथवा परास्त करनेको। साधारणरीत्या यह महाभारतका मतलब है। कतिपय स्थानों पर यह प्रचंड संग्राम देवो और असुरों (अंधकार और क्रोधके राक्षसों) का रण कहलाता है। देवोंकी सेनाका सरदार इन्द्र है जिसकी उपस्थितिमें देवता विशेष वीरतापूर्वक लड़ते हैं। इसका कारण यह है कि देवता लोग केवल आत्माके विविध प्रकारके गुण हैं और पृथक् कोई पदार्थ नहीं हैं। यह देवता अमर हैं यद्यपि संग्राममें बहुधा पराजय पाते हैं। परन्तु राक्षस नश्वर हैं। उसका अर्थ यह है कि आत्माके ईश्वरीय गुण वास्तवमें आत्माके जौहर (द्रव्य)के लक्षण हैं जो समयानुसार सीमित एवं निस्तेज तो हो सके हैं परन्तु पूर्णतया नष्ट कभी नहीं हो सक्ते। उसके विपरीत मूढ़ता और कषाय वह शक्तियां हैं जो पुद्गलके संयोगसे अपवित्र आत्मामें उत्पन्न होती हैं। और पुद्गलके पृथक् होनेपर बिलकुल जाती रहतीं है। संसारकी देवमालाओंमें प्रकाशके देवताओं और अंधकार एवं पापके राक्षसोंके मध्य इस प्रकारका संग्राम पाया जाता है। केलटिक (Celtic) ट्यूटोनिक (Teutonic) और यूनानी धार्मिक देवमाला मालूम होता है, विशाल माप पर बनाई गई है यद्यपि वह हिंदूओंकी परमोच्च कविताओं महाभारत

आदिको नहीं पहुंचती। परन्तु उनके अविश्वासी और धर्मभ्रष्ट अनुवादकोंके कृत्योंके कारण अब इन "मूर्तिपूजकों" के कथाओंके यथार्थ भावका पता हालकी लिखी हुई पुस्तकों द्वारा पूरा पूरा नहीं चलता है। यूनानी लोगोंने तो स्पष्टतया अपने पवित्र ग्रन्थोंकी विवेचना उनको आख्यानक व अलङ्कार मान कर की थी और कतिपय यूनानी कथाओंका मतलब मैंने की आफ नालेजमें भी दिया है।

परन्तु अब मुझको हिन्दूओं और ईसाइयोंके धार्मिक कथाओ पर अधिक काल तक नहीं ठहरना चाहिए। मैं अब इस्लामकी ओर ध्यान दूंगा। इसबातसे इन्कार नहीं हो सक्ता है कि कुरान शरीफ भी उसीप्रकारकी दस्तावेज है जैसे इन्जील और वेद। वास्तवमें इस्लाम यहूदियो और पार्सियोंके धर्मोंका बच्चा है जैसा कि पादरी टिज़डेल साहबने अतियोग्यताके साथ अपनी विख्यात पुस्तक दि सोर्सेज आफ दि कुरान (The Sources of the Quran) में दिखाया है। गैरमुसलिम लेखकोंने मुहम्मदकी व्यक्तिगत कमताइयो पर आक्रमण करते हुए बहुत कुछ लिखा है। परन्तु हम उसको नहीं मान सक्ते हैं। इसके लिए केवल एक यही कारण पर्याप्त है कि मुहम्मदने कभी लोगोंसे अपने चरित्रका अनुकरण करनेको नहीं कहा। महावीर, बुद्ध और अन्य भारतीय महात्माओंने तो अपने अनुकरण करनेको लोगोसे कहा था और ईसूने भी ऐसा ही कहा

था परन्तु मुहम्मद्ने नहीं। उसने कभी किसीसे नहीं कहा -जा जो तेरे पास हो वह सब बेच डाल और उसको दानमें दे दे और फिर आकर मेरी तरहसे चल। इसलिए यदि मुहम्मद्के नौ (अथवा ग्यारह) पत्नियां थीं, यदि उसने अपने लिए नियम नियोजित किए और यदि उसने अपने आपको त्याग और चारित्रमें कामिल नहीं बनाया तो यह सब उसकी निजी बातें हैं। यद्यपि इनका जानना इस बातको दर्याफ्त करनेके लिए कि उसने कहांतक यथार्थ आत्मोन्नति प्राप्तकी थी, आवश्यक है।

इसमें संशय नहीं है कि इस्लामका अभिप्राय प्रारंभमें अवश्य उन अय्याशियों और जरपरस्ती (धनमोह)के संबंधमें जो मुहम्मद्के समयमें अरबियोंमें पाई जातीं थीं एक प्रकारका रिफार्म (सुधार) से था, परंतु तलवारने, जिसको मुहम्मद् अपनी रक्षामें खींचनेके लिए बाध्य हुआ इस ख्यालको पूरा नहीं होने दिया। मेरा यहां कोई संबंध इस्लामके पोलिटिकल भावसे नहीं है। परन्तु यह प्रकट है कि इसलामकी इन्जीलमें प्राचीन धर्मों की वह शिक्षा, जो साधुको उत्तम कक्षाकी क्षमा और शान्तिका उपदेश देती है, नहीं पाई जाती है और न संभव ही थी। समयकी आवश्यकताओंके परिणामस्वरूप कुरान शरीफमें यह शिक्षा न आ सकी थी और न यथार्थमें आई कि यदि कोई एक गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा उसके सामने कर दिया जावे। जेहाद बाह्य चिन्ह इस्लामका ठहरा यद्यपि हिलाल अब तक उसका

अभ्यंतर चिन्ह है। इसमें संशय है कि आया इस समय कोई जीवित मुसलमान इस बातसे जानकार है कि यह हिलाल कहांसे आया? संभवत: उनमेंसे बहुतसे अपने मनमें उसको मोजिजह-शक-अलकमरसे संबंधित करते होंगे, परन्तु उस मोजिजे (अद्भुत कृत्य) का यथार्थ विवरण नितान्त विपरीत है जैसा कि 'की ऑफ नालेज' में दिखाया गया है। उस मोजिजेसे अभिप्राय केवल एक प्रकारको रोशन ज़मीरी (अवधि या कुअवधि) से है जिसको संभवतः थियोसोफीवाले एस्टरल तबक़ेका अथवा दृश्य कहते हैं। यह ख्याल किया गया है कि रोशन जमीरी (—) को रोकनेवाले पर्दोंमेंसे पहिला पर्दा एक सूक्ष्म पुद्‌गलका है जिसको एस्टरल पुद्‌गल कहते हैं और जिसका चन्द्रमाके साथ एक प्रकारका मकनातीसी सम्बन्ध है और इस मोजिजेसे मतलब केवल इस पौद्‌गलिक पर्देको फोड़ कर दृष्टिका पार निकल जाना है। हिलाल (अर्धचन्द्र) की विवेचनाके विषयमें मुझे यह मुनासिब मालूम होता है कि मैं आपको प्राचीन जैन धर्मके चिन्हका वृत्तान्त दूं जिसमें एक अर्धचन्द्राकार सतियेके चित्रके ऊपर मय एक बिन्दुके जो उसके ऊपर है और तीन बिन्दुओंके जो नीचे हैं बना है। यह चिन्ह निम्नाङ्कित रूपका है:—
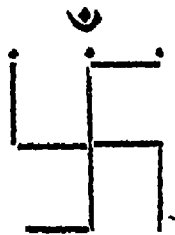
इसका विवरण इसप्रकार है कि सतिए वा क्रास (Cross) की चार बाहें चार गतियोंको बताती हैं जिनमें आवागमन करने वाला जीव बारम्बार जन्म लेता है। वे गतियां यह हैं:—

(१) देवगति, अर्थात् स्वर्गोंके निवासियोंकी दशा।

(२) मनुष्यगति, अर्थात् मानुषिक जीवन।

(३) नर्क गति, अर्थात् नर्कके निवासियोंकी दशा।

और

(४) अवशेष समस्त जीवनकी दशाएं जिनको तिर्यञ्चगति कहते हैं जैसे थलचर, नभचर, कीड़े मकोड़े, वनस्पति, पाषाण आदि आदि।

सतिएके ऊपरके तीन बिन्दुओंका भाव सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। और अर्धचन्द्राकारसे अभिप्राय जाग उठनेवाले नूरसे है जो रोज़ २ बढ़ता और उन्नत होता है, जब तक कि वह बढ़ कर चन्द्रमाकी भांति पूर्ण न हो जावे। सबसे ऊपरका बिन्दु परमात्मापन और पूर्णताको प्रकट करता है। अर्धचन्द्राकार (हिलाल)का यह विवरण है, जो गुप्त समस्यामय ज्ञान बतलाता है।

जबरैल फिरश्तेके सम्बंधमें सर सय्यैद अहमदने उसके अस्तित्वको स्वीकार करनेसे इन्कार किया और कहा कि जब पैगम्बरने कहा कि उनके पास एक फिरश्ता आया था तो उनका भाव केवल इतना ही था कि उनको एक अपरिचित मनुष्य

मिला था। (देखो ख्वाजा खाँ की Philosophy of Ishlam पत्र ५४)। परन्तु इसकी यथार्थताका पता अन्य ही स्थानसे लगता है। शैवसंगत नामक योगकी विख्यात पुस्तकमें ऐसा लिखा है:—

"जब योगी अपनी आंखोंको भीतरकी ओर उलटा कर परमात्माका ध्यान करता है और अपने मनको अपने मस्तिष्कमें लगा लेता है तब वह परमात्माके प्रतापको देख सक्ता है। वह विद्वान योगी जो इस तरह सदैव ध्यान करता रहता है वह उस परमात्माका इजहार अपनी आत्मामें करता है और उससे बातचीत भी कर सक्ता है।"

अवशेष फिरस्तोमेंसे दो वह हैं जो मनुष्यकी कर्मसूची तयार करनेके लिए नियत हैं। "एक उसके दाहिने हाथ और दूसरा बाएं बैठता है। वह एक शब्द भी नही कह पाता है परंतु उसके साथ एक निगहवान है जो तत्क्षण उसको लिख लेता है" (कुरान शरीफ अ० ५० ।) यह प्रकटरीत्या प्राणकी दो नाड़ियां हैं जिनको ईड़ा और पिङ्गला कहते हैं जो रीढ़के चक्रोंमें, जिनमें मनुष्यकी शारीरिक क्रियायों, विषयवासनायों, आदतों और विचारोंका खुलासा रक्षित रहता है, गुजरती हैं। यह मुनासिब होगा कि मैं आपको यह बता दूं कि ईड़ा बाएं नथुनेसे और पिङ्गला दाहिने नथुनेसे गुजरती है।

इसलामके वास्तविक तत्त्वोंके सम्बंधमें, इसमे संशय नहीं है

कि वह ही सब तत्त्व जो अन्य धर्म्मोंमें पाए जाते हैं, इसलाममें भी विद्यमान हैं यद्यपि उपयोगी और अनुपयोगी कृत्योंका समुदाय प्रत्यक्ष कारणोंसे कुरान शरीफमें बहुत ज्यादा चित्तको परेशान करनेवाला है। अगणित स्थानों पर कुरान शरीफमें परमेश्वरको परिभाषा इन शब्दोंमें की गई है, कि जो देखता और सुनता है। हम जानते हैं कि देखना और सुनना इदराक (चेतना) व जीवनके गुण हैं। किसी एक व्यक्ति अथवा आत्माकी सम्पत्ति नहीं है। सूरह हदीदमें ऐसा आया है:—

"परमेश्वर तुम्हारे साथ है, जहां कहीं तुम हो।"

सूरह रहमानमें कहा गया है कि वह प्रथम है और अंतिम है और जाहिरी (बाहिरी) और यथार्थ है और सर्वज्ञ है । सूरह फातहमें बताया गया है:—

"जो मनुष्य कि तुझसे हाथ मिलाते हैं वह तुझसे हाथ नहीं मिलाते हैं सुतरां परमेश्वरसे हाथ मिलाते हैं।"

एक अन्य स्थान पर यह कहा है कि-परमेश्वर मनुष्यके अतिनिकट है बनिस्बत उसके ऊँटकी गरदनके । सूरह वाकिया में कहा है:—

"हम तुम्हारी निस्बत मनुष्यसे अतिनिकट हैं परंतु तुम नहीं समझते हो।"

सूरह जरैयतमें यह लिखा है:—

"मैं मनुष्यसे बनिस्बत उसकी गलेकी रग (नाडी)के अति निकट हूं।"

और अन्तमे इसी सूरह जरैयतमें प्रकटरीत्या कहा है:—

" मैं तुम्हारे अस्तित्वमें विद्यमान हूं परन्तु तुम नहीं समझते हो।"

इन वाक्योंकी विवेचना करनेकी मुझे आवश्यका नहीं है। जिस कारणसे कि यह फिलसफाके उच्चतम नियम मनुष्योंको इस भद्दे ढंगसे सिखाए गए थे, वह विविध पैगम्बरोंके जमानेके आदमियों और सोसायटीके वर्तावसे सम्बंध रखता है। मन्सूर अन लहक (मैं परमेश्वर हूं) कहने पर, जैसा आप जानते हैं, सूली पर चढ़ाया गया था, और भी बहुतेरे ऐसे मनुष्य हुए हैं कि जिनको हठधर्मी प्रजाने धार्मिक कथानकोंके शाब्दिक ईश्वरोंके नाम पर इसी तौर पर मार डाला जिसके कारणसे कथानकोंमें धर्मोपदेश देनेका नियम चल पड़ा। (देखो यहुन्नाकी इन्जील अ० १६ आ० २५ और मत्तीकी इन्जील अ० ७ आ० ६)। इन कथानकोंका यथार्थ भाव उन लोगो पर जो मर्म्मज्ञान और मर्म्मज्ञोंके उपदेशके ढंगसे जानकार हैं, प्रत्यक्षरूपमे प्रकट है, नहीं तो कविकल्पना और अलङ्कारमें खप जाता है।

मुसलमान कवियोंने इन विषयोको क्यों कर समझा यह हज़रत अलीके शब्दोंसे प्रकट है कि जिसने अपने अनुयायियों को इस अमरकी शिक्षा दी थी कि यदि आवश्यक हो तो उनको फिलसफा काफरोंसे भी प्राप्त करना चाहिए। स्वयं पैग़म्बर साहबने कहा है:—

असहमत-

"हे मनुष्य ! तू अपनेको पहिचान।"

कवियोमेंसे हम अलहल्लाजका, जिसको साधारणरीत्या लोग मन्सूर कहते हैं और जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है, वृतांत दे सक्ते हैं। शम्सतवरेज भी इन्हींमें हुआ है, जिसने कहा है:—

"अजब मन शम्शेतवरेज़म कि गशतम शेफतह बरखुद।
चूं .खुदरा .खुद नजर करदम नदीदम जुज़ खुदा दर खुद॥"

इसका भाषान्तर निम्न प्रकार है:—

"मैं क्या अद्‌भुत शम्शतवरेज हूं कि अपने ही ऊपर मुग्ध हो गया हूं।
जब मैंने अपनेको ध्यान पूर्वक देखा तो मैंने परमेश्वरके अतिरिक्त अपनेमें और किसीको नहीं पाया।"

मौलाना रौम लिखते हैं:-"हे मेरी आत्मा ! मैंने एक सिरेसे दूसरे सिरे तक खोजकी। मैंने तुझमें सिवाय प्यारे (ध्येय)के अन्य किसीको नहीं पाया। हे मेरी आत्मा ! मुझे काफिर मत कह, यदि मैं कहूं कि तू ही (ध्येय) है। ऐ तुम लोगो ! जो परमेश्वरकी खोज कर रहे हो, खोज कर रहे हो, तुमको ढूंढनेकी आवश्यक्ता नहीं है क्योंकि परमेश्वर तुम ही हो, तुम ही हो।"

फरीदुद्दीन असारके साथ सूफी मतका विचार अद्वितीय सीमाको पहुंचता है। जिसने कहा है:—

ता तू हस्ती खुदाए दर ख्वाब अस्त।

तू नमानी चूं ऊ शवद, बेदार ॥

इसका उर्दू भाषान्तर कवितामें ही इस प्रकार है:—

तेरी हस्ती है बापस एक खुदाके ख्वाब ग़फ़लतकी।
रहे जब तू न आलममें तो वह बेदार हो जावे ॥

(अर्थः-उस समय तक कि तू प्रत्यक्ष है एक परमात्मा सुसुप्तावस्थामें है। जब तेरा अस्तित्व मिट जायगा, वह जागृत हो जायगा।)

क्या इस लेखमें प्राचीन भारतीय सिद्धांतके अतिरिक्त जो बताता है कि आत्मा स्वयं परमात्मा है कोई अन्य बात है? अथवा क्या यह मसीहकी वाणीके समान नहीं है जो बताता है (देखो मत्तीकी इन्जील अ० १० आ० ३९):—

"जो कोई अपनी जान बचाता है उसे खोएगा और जो कोई मेरे लिए अपनी जान खोता है उसे पाएगा।"

अब मैं सूफीमतके कुछ अमूल्य रत्न आपके समक्ष उपस्थित करता हूं।

(१) मुक़ाम रूह बर मन हैरत आमद,
निशां अज़बे बगुफतन ग़ैरत आमद।

(२) तूई आशिक़ बज़ाहिर दर तरीक़त,
तूई माशूक़ बातन दर हक़ीक़त।

(३) गर बकुनह खुद तुरा बाशद रहे,
अज़ खुदाओं खल्क़ बेशक आगहे।

(४) हम अजई गुफतस्त दर बहरे सफा,

नेस्त अन्दर जुब्बा अम गैरे खुदा ।

(५) पेन आबे आबमें जूई अजब,

नक़द खुदरा निस्यामी गोई अजब ।

(६) पादशाही अस्ते मैमानी गदा,

गनजहा दारी घरा ई बेनवा ।

(७) यार पिनहां नस्त दर ज़ेरे नक़ाब,

हमचु दरिया कोनिहां शुद दर हुबाब ।

(८) परदह बरदारो जमाल यार वीं ।

दीदह बाकुन चहरे इसरार वीं ।

(९) कशफ दरमानी वूअद रफअ हिजाब,

बूद तब आमद बरूए तब नक़ाब ।

इसका अनुवाद इस प्रकार है:—

(१) आत्माका स्थान मेरे लिए अति आश्चर्य्य जनक था ।

मैं लज्जित हूं कि मैं उसकी प्रशंसा करनेमें हीन हूं ।

(२) तू ही प्रकट आशिक नियमके अनुसार है ।

और तू ही वास्तवमें स्वयं माशूक भी है ।

(३) यदि तू अपने भेदको पाले,

तो ईश्वर और जगतके भेदसे अवश्य विज्ञ हो जावे

(४) इसी वजहसे बहरे सफामें कहा है—

कि मेरे जुब्बह (चोगे) में सिवाय ईश्वरके अन्य नहीं है।

(५) तू तो स्वयं आब (पानी) है और पानीको ढूंढता है !
अपनी सम्पत्तिको भूल गया है और अब कहता है आश्चर्य्य है !

(६) तू बाहशाह है, भिखारी किस लिए बनता है ।
सर्व कोषागार तेरी सम्पदा हैं फिर तू निर्धन क्यों है !

(७) माशूक पर्देके भीतर छुपा हुआ है ।
नदीके सदृश कि हुबाबसे ढका हो ।

(८) घूंघट परे कर और माशूकका रूप निरख ।
नेत्र खोल और भेदको समझ ।

(९) हिजाब (दुई) अर्थके समझनेसे जाता रहता है,
तेरी ही सत्ता तेरे रूप पर घूंघटके सदृश पड़ी हुई है ।

यह सब पैग़म्बरके उस संक्षेप वक्तव्यके विवरण हैं जो निम्न प्रकार है:—

"जो अपने आपको जानता है वह परमेश्वरको जानता है ।"

(Sayings of Muhammad)

इस्लामके अनुसार आत्माका ऐसा स्वरूप है जो ऊपर दिखाया गया है । और मुझको इस बातको मालूम करके कि कुरान शरीफमें पशुओंके प्राणोंको मनुष्यके समान दर्जेका माना है, अत्यन्त हर्ष होता है, (देखो कुरान शरीफ अ० ६)

"दुनियामें कोई किसी प्रकारका चौपाया नहीं है, न कोई पक्षी, जो पंखोंसे उड़ता हो परंतु वह सब तुम्हारी तरह जानदार हैं। हमने अपने अहकामकी किताबमें किसी बातको नहीं छोड़ा है। तब वह सब अपने प्रभु पर वापस पहुंचेंगे।"

कुरान शरीफमें ऐसी आयतोंको पा कर भी कि जिनमें इस बातकी स्वीकृति है, कि उसके पहिले अन्य जातियों और देशोंमें सत्य धर्म प्रचलित था, चित्तको आनंद होता है। वस्तुतः यह विषय कुरान शरीफकी शिक्षाका एक भाग है कि प्रारम्भमें मनुष्य केवल एक ही धर्मके विश्वासी थे परन्तु पश्चात्‌को उनमें सम्प्रदाय होगए (देखो Sale's Quran पत्र १५१)

आवागमनके विषयमें तक़दीरका मसला कि जिसके कारण इस्लाम पर Fatalism (पुरुषार्थके विरोधी होने) का दोष लगाया गया है, स्वयं आत्माओंके वारम्वार जन्ममरणको प्रमाणित करता है, यदि उसको सैद्धांतिक दृष्टिसे देखा जावे। टी० पी० ह्यूजेज़ साहब A Dictionary of Islam में लिखते हैं:—

"तक़दीर व पुण्य और पापकी न टलनेवाली डिगरी इस्लाम का छठा नियम है। और मुसलमान लोगोंका विश्वास है कि जो कुछ शुभ और अशुभ अब तक इस संसारमें हुआ है, अथवा भविष्यमें होगा वह पूर्णतया खुदाकी मर्जीसे हुआ है और वह सब सदैवके लिए सुरक्षित तख्ती पर तक़दीरकी क़लमसे अङ्कित है और कभी नहीं बदल सक्ता है।"

यह सुरक्षित तख्ती खुदाके अहकामकी पुस्तक है जो अर्बीमें लोहमहफूज कहलाती है। और इसमें वह सब अङ्कित है जो भूतकालमें हो चुका है और वह भी जो भविष्यत्में होनेवाला है।

"जिसकी उमर बढ़ाई जाती है उसकी उमरमें कुछ बढ़ाया नहीं जाता, न किसीकी उमरमें कुछ घटाया जाता है, परन्तु वह हो जो खुदाकी डिगरियोंकी किताबमें अङ्कित है।" (सूरह ३५)।

सूरह या सीनमें यह बताया गया है कि:—

"वास्तवमें वह हम हैं जो मुर्दोंको सजीवन करेंगे और उन कामोंको लिखेंगे जो उन्होंने अपने पहिले भेजे हैं और उन चिह्नोंको जो वह अपने पीछे छोड़ जांयगे। और प्रत्येक बात हमने अपनी डिगरियोंकी वाज़े (स्पष्ट) किताबमें लिख दी है।"

मनुष्योंके कर्म्म इस डिगरियोंकी किताबके अनुसार परिणत होते हैं और यह ही हाल अवशेष सर्व प्राणियोंकी निस्बत भी उपयुक्त है कारण कि:—

"सब वस्तुएं नियत डिगिरियोंके अनुसार ही बनाई गई हैं।" (सूरह ५४ आ० ४९)।

निम्न आयतोंका मतलब भी ऐसा ही है:—

"कोई मर नहीं सक्ता है इल्ला खुदाकी मर्ज़ीसे उस किताबके अनुसार जिसमें उमरकी मियाद नियत की गई है।" (सूरह ३ आ० १३९)।

"खुदाने सब चीजोंको बनाया और वज़न किया है और उनकी तक़दीर नियत की है और उनकी रहबरी करता है।" (सूरह ३७ आ० २)।

"किसी प्रकार भी हम पर कोई आफत नहीं आ सकी, परन्तु वह ही जो खुदाने हमारे लिए नियत कर दी है।" (सूरह ६ आ० ५१)।

बाजे (स्पष्ट) पुस्तकका ऐसा स्वरूप है। परन्तु जो प्रश्न यहां पर उठता है वह यह है कि तकदीरकी किताबके अहकाम (आज्ञायें) मनुष्योंके संसारमे क्योंकर प्रचिलित होते हैं? आकाशीय कोषागारमें सम्भव है कि एक पुस्तक व पूरा पुस्तकालय विद्यमान हो परन्तु जब तक कोई शक्ति ऐसी न हो कि जो मनुष्योको उन कृत्योंसे जो उनसे उत्पन्न होंगे बांध सके, उस समय तक यह विचारके बाहर है कि तक़दीरके अहकामका उस तख्तीके मूल्यसे जिस पर वह अङ्कित हैं, किसी तरहसे अधिक मूल्य हो सके। यदि हमारे मुसलमान मित्र तक़दीरके अहकाम और मनुष्यों और अवशेष तीनों लोकोके जीवोंके कर्मोंके सम्बंधके हल करनेका कष्ट सहन करेंगे तो वह इस बातके जाननेसे वंचित नहीं रहेंगे कि वह शक्ति जो तक़दीरके अहकामकी पाबन्दी करा सक्ती है, वह केवल कर्म्म शक्तिकी है, और यह कि किताबवाजे अर्थात् लोहमहफूजसे भाव वास्तवमें कर्म्मोंके स्वयं लिखे जानेवाले वहीखातेसे है जिसमें वह सब बातें अङ्कित हैं जो

भूतकालमें हो चुकीं हैं, और वह भी जो भविष्यमें होनेवाली हैं। अथवा कुरान शरीफकी इबारतमें वह समस्त मानुषिक कृत्य जिनमें सम्मिलित हैं वह कृत्य भी जो उन्होंने अपने पहिलेसे भेजे हैं और वह चिह्न भी जो अपने पीछे छोड़ेंगे। किताब तकदीरका विवरण और उस कार्रवाईका हाल जो स्वयं मनुष्योंके कृत्य और उनके नियत फलको अङ्कित करती रहती है, जैन सिद्धांतकी कर्म्म फिलासफी* से साफ और प्रकट तौरसे समझ

---

* निम्नलिखित आएतें कुरानकी इस विषयमें ध्यान देने योग्य हैं (देखो कुरान शरीफ, अनुवादित अब्बुलफजल भाग २ पत्र ३८६)-

"वस्तुत खुदा नहीं बदलता है उसको जो मनुष्योंके पास है जब तक कि वह उसको जो उनके भीतर है नहीं बदलते हैं।"

इसी आयतका अनुवाद सैल साहबने निम्नके अर्थसे भरपूर शब्दोंमें किया है (देखो Sale's Quran पृ० १८२) -

"वस्तुत: अल्लाह अपने फजल (—)को जो मनुष्योंमे है नहीं बदलेगा जब तक कि वह अपनी आत्माकी (अभ्यंतर) तवियतको पापोंसे न बदल दें।"

जिन शब्दोंके नींचे लकीर खींची गई है वह सेल साहबके अनुवादमें भावको प्रकट करनेके लिये व्यवहृत किए गए हैं जो यूं भी पर्याप्तरीत्या विदित है। यहां स्पष्ट तौरसे मतलब उस वस्तुके दुष्कृत्योंसे परिवर्तित

में आ आता है । अतः यह कुल मसला कर्मसिद्धांतका अति संक्षेपित और गठा हुआ खुलासा है ।

यह विषय कि:—

"ऐ मेरे लोगों ! यह क्या बात है कि मैं तुमको मुक्तिकी ओर बुलाता हूं (मुक्तिका उपदेश देता हूं) परन्तु तुम मुझको अग्निकी ओर बुलाते हो (नर्कके सुपुर्द करते हो ।)"

जो ४४ वें सूरह (आयत ६६) में आया है, कुरानके नियमों पर बहुत बड़ा प्रकाश डालता है और आवागमनके सिद्धान्तके अनुसार ही समझमें आ सका है । कारण कि अर्बी शब्द निजात जो इस विषयमें आया है अर्थहीन होगा सिवाय इस अवस्थाके कि जब वह किसी कैद या बन्धनसे मुक्तिपानेको प्रकट करे । और इसका यथार्थ विवेचन उसी तरहका होगा जैसे इन्जीलके उस विख्यात और प्रचलित वक्तव्यका जो यहुन्नाकी इन्जीलके आठवें अध्यायके ३२ वीं आयतमें निम्नके शब्दोंमें अङ्कित है:—

"और तुम सत्यको जान लोगे और सत्यका ज्ञान तुमको मुक्त करेगा ।"

करनेसे है जो मनुष्योंके भीतर है । अन्य शब्दोंमें तबियतके कृत्यसे बदल जानेसे । यह विश्वसतः यथार्थताके अनुसार है, जैसा कि हम पहिले प्रमाणित कर चुके हैं ।

यह सब इस बातके प्रमाणित करनेके लिए पर्याप्त हैं कि कुरान शरीफ और इन्जील मुकद्दस दोनोंमें कर्मसिद्धान्त गुप्तरीत्या सिखाया गया है।

अब हम उन द्वारों पर विचार करेंगे जो इस्लाममें मुक्ति पानेके लिए नियत किए गए हैं। उनमें (१) बलिदान (कुरबानी) (२) प्रार्थना (दुआ) (३) उपवास (रोजा) (४) तीर्थ-यात्रा (हज) और (५) साधारण|नियम धर्मपरायणता सम्मिलित हैं। हम इनमेंसे पहिले दोका विवेचन किसी अन्य व्याख्यानमें करेंगे परन्तु हज (यात्रा) प्रत्येक धर्ममे बताई गई है कारण कि वह श्रद्धान बढ़ानेका एक प्रबल उपाय है।

और रोजा (उपवास) और साधारणनियमधर्मपरायणताके विषयमें इस स्थान पर कोई मुख्य विवेचन करनेकी आवश्यक्ता नहीं है। इन सबका अभिप्राय यह था कि इच्छाके विषयुक्त वृक्षको जो समस्त दुःखोंकी जड़ है, उखाड़ कर फेंक दिया जावे और इस्लाममें बड़े बड़े दरवेश हुए हैं जिन्होंने इन उपदेशोंको इसी भावमें समझा है। मैं शम्सतबरेज और फरीदुद्दीन अत्तारके लेखोंमेसे निम्नके कुछ छन्द अपनी इस व्याख्याके समर्थनमें उपस्थित करता हूं:—

(१) ज़े दुनिया तर्क मीर अज़ बहर दीं तू,
तव कुल बर खुदा कुन बिलय कीं तू।

(२) क़लम अन्दर बसूरत खेश दरज़न,

हसारे नफसरा अज वेख, वरकन ।

(३) हवासे खमसह राचूँ दुजद वरवंद,

चूं वस्तन दुज्द पेमन वाशमें खन्द ।

(४) चूं वायद रफतन्त जीं दारे दुनिया,

चरा वन्दी तो दिल दरकारे दुनिया ।

(५) ब गफलत हाय दुनिया खल्क मगरूर,

वकरदा याद मर्ग अज दिल हमा दूर ।

(६) अलाइकहाय दुनिया कर्तें गरदां,

हर्जी दिल वाश दर वे चूं गरीवां ।

(७) जहे गफलत कि मारा कोर करदस्त,

कि याद मर्ग अज दिल दूर करदस्त ।

(८) तान गरददनफ्सताबे कहरा,

कैदवा यावी दिल मजरूहरा ।

(९) मुकाम फुकर वस आलीमुकाम अस्त,

मनी व मादर ओं जा वस हराम अस्त ।

(१०) दर आँ मन्जिल शुअद कश्फो करामात,

वले वायद गुजशतन जॉ मुकामात ।

(११) अगर दुनिया व अकवा पेश आयद,

नजर करदन दर ओं हरगिज न शायद ।

(१२) अगर गर्दी तो दर तवहीद फानी,

वहक यावी वकाए जिन्दगानी ।

इनका अर्थ इस प्रकार है:—

(१) तू दीनके वास्ते दुनियाको छोड़ दे, तू ईश्वरपर श्रद्धापूर्वक भरोसा कर।

(२) खुदीकी सूरतमें तू कलम मार दे। तू इच्छाकी गढ़ीको जड़से उखाड़ कर फेंक दे।

(३) इन्द्रियोंको तू चोरकी तरहसे कैद करले। जब चोर पकड़ लिया तो शांतिसे हर्ष मना।

(४) जब तुझे इस संसारसे जाना है तो फिर अपने चित्तको सांसारिक कार्य्योंमें क्यों लगाता है।

(५) संसारके कामोंमें जन साधारण संलग्न हैं। सबोंने मृत्युका ध्यान चित्तसे विसार दिया है।

(६) संसारके सम्बन्धोंको छोड़ दे। तू उसमें यात्रियोंकी भांति उदासीन चित्तसे रह।

(७) क्या निद्रा है कि हमको अन्धा कर दिया है कि मृत्युका विचार हृदयसे निकाल दिया है।

(८) जब तक इन्द्रियां आत्माके आधीन नहीं हो जातीं, पीड़ित हृदयका इलाज कैसे संभव है।

(९) साधुताका स्थान बस उच्चस्थान है। मैं और मेरेका गुजारा उसमे नहीं है।

(१०) उस अवस्थामें अद्भुत कृत्य होते हैं। परन्तु वहांसे गुजर जाना चाहिये।

(११) यदि दोनो संसार साधुके सामने आ जावें, तो भी उन पर दृष्टि न डालना चाहिए।

(१२) यदि तू तवहीद (अद्वैतरूप) में विनाशको प्राप्त हो जावे, तो सत्यतामें अमर जीवन पावे।

कुरान शरीफकी निम्नलिखित आयतोंमें उन्नति करनेके मार्गोंमें ज्ञान पर जोर दिया गया है। उल्लेख सेल (Sale) साहबके अंग्रेजी अनुवादके पृष्ठोंका है:—

(१) "सहनशीलताको अमलमें ला और उच्च शिक्षा दे और नीचसे दूर हटजा।" (प० १२५)।

(२) "......कि वह अपने तईं धर्ममें उसको समझ कर शिक्षा दे सकें।" (प० १४६)।

(३) "कितने आदमी इन बातोंपर अपने मनमें विचार करते हैं।" (प० ३५३)।

(४) "यह एक मनुष्यके लिए उपयुक्त नहीं है कि खुदा उसको एक ईश्वरीय किताब दे और बुद्धि दे और भविष्य वक्तव्यकी योग्यता दे। और वह मनुष्योंसे कहे कि तुम खुदाके अतिरिक्त मेरी पूजा करो। परन्तु उसको यह कहना चाहिए कि तुमको ज्ञान और चारित्रमें पूर्ण होना चाहिए क्योंकि तुम शास्त्रोके जाननेवाले हो। और तुमको उन पर चलना चाहिये।" (प० ४१)

अन्तिम उल्लेख इस बातको प्रकटरीत्या प्रमाणित करता है कि मुक्ति पानेके लिए ठीक चारित्रकी आवश्यका है। अब मैं आज यहीं पर रुक जाऊंगा और कल अन्य दिशामें देवी देवताओंवाले धर्मोंकी खोज प्रारंभ करूंगा।

छठा व्याख्यान।

प्राचीन एवं लुप्त प्राय: धर्म्मोंका वर्णन।

आज मेरी इच्छा कुछ प्राचीन धर्म्मोंके वर्णन करनेकी है। अब पूर्णरूपेण विदित हो गया है कि बबेलोनियाके प्राचीन निवासी अपने देवता 'तम्मुज'के सम्बंधमें एक प्रकारकी गुप्त रीति काण्डका रहस्य, (नाटक) किया करते थे। 'तम्मुज' 'इन्नीनी' (Innini) की सहायतासे, जो उसकी विलाप करती हुई माता थी और जो अन्ततः उसकी स्त्री हुई, जीवित हो उठा था। यहूदियोंकी देवी 'इस्टार' (Istar) की व्याख्या भी जो नवयुवक 'तम्मुज'की खोजमें 'मृत्युलोक' (Hades) में पहुंची थी इसी प्रकारकी एक कथा है। इसी ढंग पर मिश्रवासियोंकी 'ओसाइरिस'की उपासना भी है, जिसके सम्बंधमें कुछ गुप्त क्रियायें जो "रहस्य" कहलाती थीं, प्रत्येक वर्ष गुप्तरीत्या की जाती थीं। निम्नलिखित वर्णन इस प्राचीन धर्मका ई० रि० ए० भाग ४ पत्र २४३ में दिया हुआ है:—

"इस रीतिके ब्योरेसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु साधारणतया मिश्रवासियोंके धर्मकी शिक्षा इस प्रकार है कि 'ओसाईरिस' जो एक दयालु परमात्मा एवं राजा था

अपने द्रोही विपत्ती 'सेट' (Set) के छलके कारण मारे जानेके उपरान्त पुनः जीवितावस्थामें लाया गया । और सेटके अभियोगोंके विपत्त देवताओंके समत्त निर्दोष प्रमाणित किया गया। और मृत्युलोकमें परमात्मा एवं न्यायाधीश बनाया गया। पंचम वंशके समय तक ही यह विचार पुख्ता हो गया था कि प्रत्येक 'फिराऊन'के जीवनमें ओसाईरिस की कथा पुनः दुहराई जाती थी । अन्ततः स्वच्छ होते होते लोगोंका श्रद्धान यह हो गया था कि प्रत्येक मनुष्य जो आवश्यक विद्याका धनी है मृत्युके उपरांत ओसाईरिस बन सक्ता है, पुनः जीवितावस्थामें लाया जा सक्ता है और देवताओंके समत्त निर्दोष प्रमाणित होकर अनादिनिधन सुखको प्राप्त कर सक्ता है। यह श्रद्धान अनुमानतः समग्र मिश्रवासियोंका प्राचीनसे प्राचीन कालसे था कि जब कि ओसाईरिस पुनः जीवित हुआ और निर्दोष प्रमाणित होनेके पश्चात् पुनः सदैवके लिए अमर हो गया तो उसके श्रद्धानी (उपासक) भी वैसे ही हो सक्ते हैं। ....यह श्रद्धान समस्त ऐतिहासिक कालमें बिदून किसी आवश्यकीय विभिन्नताके चालू रहा।"

'दी बुक आफ दी डेड' नामक पुस्तकके अध्याय १५४ में यह आया है कि:-

"'ए मेरे परमात्मपिता 'ओसाइरस' तुझको नमस्कार हो !

तू.........नष्ट नहीं हुआ......... तू भ्रष्ट नहीं हुआ। मैं नष्ट नहीं होऊंगा......मैं भ्रष्ट नहीं होऊंगा......मेरा अस्तित्व रहेगा। मैं जीवित रहूंगा। मैं बढ़ूंगा। मैं शांतिमें जागृत होऊंगा।"

हिरोडोटस (Herodotus) ने इन रहस्योंका निम्न प्रकार उल्लेख किया है (ई० रि० ए० भा० ९ पृ० ७४):-

"सैस' (Sais) में एक पूर्वज [ओसाईरिस] का मृत क्रिया स्थान है जिसका नाम लेनेमें मुझे ताम्मुल होता है।....मन्दिरके सरोवर पर मिश्रवासी रात्रिमें इसकी सहन की हुई कठिनाइयोका नाटक करते हैं। और इस नाटकको वह 'रहस्य' कहते हैं। इन रहस्योंकी सर्व क्रियायें मुझे पूर्णरूपेण ज्ञात हैं परन्तु मेरे ओंठ उनका उच्चारण करनेसे भक्तिपूर्वक बाज़ रहेंगे।" (Herod. ii. 170 f)

और प्लूटार्क (Plutarch) इतना और कहता है कि:—

"आइसिस (Isis) नहीं चाहती कि स्वयं उसके शोक एवं क्लेशसे पूर्ण पर्य्यटन और ओसाईरिसकी बुद्धि एवं वीरताके कार्य भूल एवं मौनावस्थामें डाल दिए जांय। इस कारणवश उसने पवित्र एवं पूजनीय 'रहस्य' स्थापित किये हैं जो ओसाईरिसके शोकका अभिनय नाटक द्वारा करते हैं जिससे कि वह उन स्त्री पुरुषोंके लिए जो वैसे ही कष्टोंमें फंसे हैं एक धार्मिक शिक्षा एवं सांत्वनादायक आशाके रूपमें

कार्य्यकारी हों।" Plutarch de. Is.Osir ct XXV. ii)

एक मिश्रदेशीय कथानकके अनुसार औसाइरिसको उसके भाई सेथ (Seth) ने जिसके नामका अर्थ तुन्द तूफान है मार डाला था। और उसका शरीर तावूतमें बन्द करके नील नदीमें वहा दिया गया था। वह वहांसे वह कर एक ऐसे स्थान पर पहुंचा कि जहां आइसिसने उसका पता लगा लिया। और वह वहांसे उसको मिश्र ले गई। यहां पर सेथको वह शरीर मिल गया जिसने उसके अंश अंश करके नील नदीमें डाल दिए। आइसिसने इस शरीरकी पुनः खोज प्रारंभकी। और जहां जहां उसको कोई अंश इसका मिला वहां वहां उसने एक कब्र बना दी। उसके पश्चात् होरस (Horus) (औसाइरिसका पुत्र) और उसके मित्र थोथ (Thoth) एवं अनूबिस (Anubis) ओसाइरिसका बदला लेनेके हेतुसे आइसिसके सहायक हुए। इन्होंने देवताओंके दरवारमें उसको निर्दोष प्रमाणित किया। और उसके रक्तमज्जामय शरीरको जीवित किया और अमर कर दिया। इस प्रकार ओसाइरिसने अपना देश अपने पुत्र होरसके अधिकारमें कर दिया जो मिश्रके फिराऊओंका संरक्षक व पूर्वज हुआ (ई० रि० ए० भाग ६ पृष्ठ ७४)।

ओसाइरसके रहस्योंका क्रम, जो एक प्राचीन लेख द्वारा जिसकी तिथि सन् १८७५ मसीहके पूर्वकी है पुनः नूतन-रीतिसे स्थापित किया गया है, इस प्रकार है:—

"५ (१) आइसिस और नेफ्थिस (Nephthys) ओसा-
इरिसके मुरदा शरीरको खोज करके नेडिट (Nedit) नदीपर ढूंढ निकालते हैं। और वहां देर तक विलाप होता है।

(२) विलापको सुन कर देवता तत्क्षण आते हैं। होरस, अनूबिस, और थोथ जादूके यंत्रों और ताजे जलसे भरे हुए कटोरे लेकर आते हैं। ओसाइरिसके शरीरसे जलकी चार धाराओ एवं धूनियोंके द्वारा सब धब्बे धो डाले जाते हैं।

(३) दैवी मंत्रोंके प्रभावसे अद्भुत घटनाएं होती हैं। (अ) ओसाइरिसके शरीरके सर्व पृथक् अंश जुड़ जाते हैं। (ब) तेलों और लेपोके व्यवहारसे और अनूबिसके वसूलेकी सहायतासे मुख, नेत्र, एवं कान ओसाइरिसके शरीरमें खोले जाते हैं। (ज) सर्व शारीरिक स्नायुओंको संजीवित किया जाता है। और प्रत्येक भागमें जीवन डाला जाता है। (क) ओसा- इरिसके शरीरमें पुनः जीवन संचार करनेके हेतु अनन्य रीतियां व्यवहृत की जातीं हैं। वह दफन किया जाता है। (स) पशु जन्मके बहाने भी ओसाइरसमें जीवन संचारित किया जाता है। वह पुजारी, जो अनूबिसका पार्ट करता है एक होमित

पशुकी खाल ओढ़ कर इस प्रकार लेटता है जिस प्रकार बालक माताके गर्भमें उपस्थित होता है। यह इस बातको प्रगट करता है कि ओसाइरिस पुनः नूतनावस्थामें गर्भमें आया है। मानो अपने होमित शत्रु सेथ (Seth)के जीवनको सोख (नष्ट) करके खालमें नए सिरेसे उत्पन्न हुआ है। इन सब रीतियोंका फल यह होता है कि ओसाइरिस पुनः जीवित होता है। इस समय इसको भेंट अर्पण की जाती हैं। और इसको आभूषणों आदिसे अलंकृत करते हैं एवं छत्र धारण कराते हैं। इसको एक अद्भुत भाषा भी प्राप्त हो जाती है, जिसके द्वारा वह सर्व भयोंको पार कर सक्ता है और प्रत्येक इच्छित पदार्थको शीघ्र ही उत्पन्न कर सक्ता है।" (ई० रि० ए० भाग ९ पृ० ७५)।

इन रीतियोके अतिरिक्त ज्ञात होता है कि और भी रीतियां थीं, जिनका संबंध ओसाइरिसके पवित्र किए जानेसे था जो संभवतः मुख्य मुख्य गुप्तसमस्यापरिचायक सज्जनोंको ही ज्ञात थीं। ये रीतियां इस कारणसे की जाती थीं जिससे कि वह उन स्त्री पुरुषोंको जो इस प्रकारके कष्ट सहन करें, सांत्वना दें। और सत्य मार्ग दर्शा दे। ई० रि० ए० में मिश्रीय रहस्योंके विषयके लेखक लिखते हैं कि "मिश्रीय रहस्य एलुसिनियन (Eleusinian) और आइसियक (Isiac) रहस्योके सदृश......

उस मार्गको प्रदर्शित करनेकी हामी भरते हैं जिस पर चल कर मनुष्य एक नूतन एवं शुभ जीवनको प्राप्त कर सक्ता है। हमको जितना परिचय इनका है वह सब ओसाइरिसके संबंधमें है, जो मिश्रके देवालयोंमें मर कर जी उठनेवाले देवताके विख्यात है।"

अब मैं यूनानी रहस्यों (गुप्तसमस्या)की ओर ध्यान देता हूं जिनके कई भेद हैं। और जिनके विषयमें लोगोंको यह विश्वास था कि उनसे मनुष्योंको मृत्यु लोक (आकबत)के क्लेशोंसे छुटकारा मिलता है जब कि इन पर अमल न करनेसे मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त होता है। यह प्रत्यक्षरूपमें बतलाया गया था कि अन्तमें केवल उन्हीं मनुष्योंको सुख प्राप्त होगा जिनका इन रहस्योंमें प्रवेश होगा। और रहस्यज्ञाताके संबंधमें निम्नलिखित ध्यान देने योग्य शब्दोंमें शिक्षा थी:—

"अपने हृदयमें इस बातका अबसे विशेष विचार रक्खो और समझ लो कि तुम्हारा शेष जीवन इस संसारमें मुझे अर्पण किया जा चुका है। और तुम अपने अस्तित्वके लिए मेरे ऋणी हो।" (इ० रि० ए० भाग ९ पृ० ८२)।

इन रहस्योंकी शिक्षाके विषयमें वही पुरानी व्याख्या-एक परमात्माकी मृत्यु और उसके उपरान्त जीवित होनेका इन सबमें उल्लेख है। इन गुप्त उपासनाख्यायोंमेंसे एकका मनोरंजक वर्णन इ० रि० ए० में निम्नोलिखित शब्दोंमें दिया हुआ है:—

"डायोनिसियसकी उपासना ....का मुख्य रूप जेगरीयस के नामसे संबंध रखता है जिसकी डायोनिसियस........ ... से एकाग्रता थी। वह कथायें जो जेगरीयसके जन्म, मरण एवं पुनः जीवोत्थानके विषयमें है, हृदयमें विशेषतया घृणा पैदा करानेवाली हैं।. ..जेगरीयस, जीयस और परसीफोनी (Persephone) के व्यभिचारका फल था। बाल्यावस्थामें ही टायटिन्ज (Titans) ने उसको खिलोने आदि देकर फुसलाया था और पकड़ कर उसके टुकड़े टुकड़े करके खा गये थे। केवल हृदय अवशेष रहा था। जिसको अथीनी (Athene)ने छीन कर जीयसको देदिया। जिसने उसके संहारकोंको अपने वज्रसे मार डाला। और उस हृदयसे एक अन्य जेगरीयस उत्पन्न कर लिया।"

इस कथानकका भावार्थ ओरफियस (Orpheus) के अध्यापक इस प्रकार बतलाया करते थे:—

"हम सबमें एक ईश्वरीय अंश है, जो पापमें जिसके टायटन्ज (Titans) चिन्ह हैं, पूर्णतया लिप्त नहीं हो गया है। अपने साथ लगी हुई अपवित्रताके कारणवश मनुष्य जन्ममरणके चक्रमें पड़ते हैं जिससे वे केवल पवित्रता और रहस्योंकी गुप्त शिक्षाके द्वारा बच सक्ते हैं एवं परमात्माओंकी संगतिमें बैठने योग्य बन सक्ते हैं।" (इ० रि० ए० भाग ६ पृ० ८०)

मैं नहीं विचार सका हूं कि मुझे इस अर्थके संबंधमें एक शब्द भी और लिखनेकी आवश्यक्ता है। कारण कि अब आपको यह पूर्णतया ज्ञात हो गया होगा कि इन गुप्त रहस्योंमें मृत्युको प्राप्त हो कर पुनः जीवित होनेकी व्याख्या स्वयं आत्माके अपने ही स्वाभाविक गुणमें परमात्मा होनेकी सदृशता पर निर्भर है, जिसको कि टायटन्ज (Titáns) अर्थात् कर्म्मों और आवागमनमें फांसने एवं फंसाए रखनेवाली शक्तियोंसे छुडाना है और अमर करना है। और जिसके समस्त शारीरिक अवयवों एवं शक्तियों (=स्वाभाविक आत्मगुणो) को पुनः निर्मित करना है । इसकी सदृशता हिन्दू पुराणोकी निम्न व्याख्यासे पूर्णरूपेण होती है, जो हम अपने पहिले व्याख्यानमें दे चुके हैं:—

" समस्त कमताइयोंको छोड़,
अपना प्राचीन रूप पुनः एकवार प्राप्त कर,
उन सर्व अवयवों और गुणोंके साथमें, जो पहले तेरे थे,
प्रत्येक प्रकारके सांसारिक (पौद्गलिक) मलसे पवित्र हो कर।"

अब मैं चीन देशके उस प्राचीन धर्मकी शिक्षाका साधारणतया दिग्दर्शन कराऊंगा जो तावइजम (Taoism) के नामसे प्रसिद्ध है। उसको पुनः नए सिरेसे एक चीनी रहस्यज्ञाताने जो लावटजे (Lao-tze) के नामसे विख्यात था ईसाके पूर्वकी

छठवीं शताब्दिके लग भग स्थापित किया था। लावटजेके विचार बहुत अंशोमें भारतीय विचारोंसे सादृश्य रखते हैं। और यथार्थ भावकी अपेक्षा जैनधर्मकी शिक्षाका ही खुलासा है।

शब्द ताव (Tao) का अर्थ, जिसने अंग्रेजी भाषाकारोको विशेष कष्ट दिया है (देखो भूमिका से० बु० ई० भाग ३९ पृ० १२—१५) जीवन है। और उन विविध रूपोंके कारण जिनमें जीवन अपना प्रकाश प्रगट करता है उसने मनुष्यके मस्तिष्कको विशेष चक्करमें डाल दिया है। कुछ सज्जन इसका अर्थ मार्ग वा सड़क बताते हैं। कितनेकका यह विचार है कि वह बुद्धि को प्रगट करता है। परन्तु इसका यथार्थ अर्थ जीवन है, जिसके विविध रूप हैं। और जो मुख्यतया "मार्ग, सत्य व जीवन" के तोर पर है (Cf यहुन्ना १४।६)। अपरंच लावटजे अपने तावका अर्थ अन्तिम सत्ता व वास्तविक पदार्थके रूपमें करता है, जो आकाशसे पूर्वका और उससे उच्च है; और जो कालके प्रारम्भसे और प्रत्यक्षमे आए हुए परमात्मासे पूर्वका है। वास्तवमें जीवन अनादिनिधन है। और जीवनत्व (जीव) अपने आपको एक पूर्ण परमात्माके रूपमें प्रगट करनेके पूर्वसे है। सामान्य अपेक्षासे इसमें मनुष्यत्व (Personaly) नहीं है और न व्यक्तिगत (मनुष्यके) गुण हीं, जिनमे बुद्धि भी सम्मिलित है, इस रूपमें इसमें पाए जाते हैं। इसका कार्य्य आवश्यकीय एवं कलके पुर्जोंके कार्य्यके सदृश होता है। और यह अमूर्तीक है अर्थात्

इंद्रियों द्वारा नहीं जाना जा सका है। सत्ताका अन्तिम निकास: यह समस्त प्राकृतिक घटनाओंमें विद्यमान है और सर्व पदार्थों पर अपना रंग जमाता है। और उनमें समानता उत्पन्न करता है। और इसका गुप्त; परंतु पूर्णतया समर्थ वा फलदायक कार्य्य-क्रम मनुष्योंके कार्य्योंकेलिए एक नमूना अथवा दृष्टांत है जिसको प्रत्येक बातमें हस्तक्षेप करनेवाले बड़प्पन और खलबली उत्पादक अहंमन्यतासे, जो साधारणरीत्या मनुष्योंमें पाए जाते हैं, न्यारा समझना चाहिए। ताव वास्तवमें मनुष्यका स्वाभाविक अधिकार है परन्तु विशेषतया वह अधिकार दूसरे प्रकारकी चित्ताकर्षक वस्तुओंके कारण हृदयसे भुला दिया गया है। तावके प्राप्त कार्य्यमें हमें अवश्य अग्रसर होना चाहिए यदि हम उस शांति और पूर्ण संतोषका उपभोग करना चाहें जो संसारी आत्माको कभी नसीब नहीं हो सकते हैं। कारण कि ताव ही वह आदर्श भी है जिसकी ओर सर्व पदार्थ आकर्षित होते हैं। यथार्थ इच्छित स्थान पर पहुंचनेके उपाय साधारणतया प्रत्येक मनुष्यको प्राप्त हैं। कारण कि इसके लिए केवल अहंमन्यताको पूर्णरूपमें छोड़ना होता है। विद्वानोंकी शेखीकी भाषामें अपना वर्णन करनेवाली विद्वत्तासे बचना, हृदयसे पूर्णतया स्वार्थको दूर कर देना और तावके आगमनके लिए मन और इंद्रियोंके सब मार्गोंको खोल देना, इस अन्तिम ध्येय पर पहुंचने अर्थात् ताव पर पुनः लौटनेकेलिए आवश्यकीय पादुकाएं हैं। तृष्णा, विषय-

पोषण, धनसम्पत्ति और ऐन्द्रियजनित सुख तावक अनुयायीको अपने जीवनक्रममेंसे निकाल डालना चाहिए। उसको केवल शांतिकी प्राप्तिके लिए ही दत्तचित्त रहना चाहिए। किसी अन्य वस्तुके लिए नहीं। पुण्यके बढ़ावकेलिए भी नहीं और न अपने धर्मके फैलानेके लिए ही। तावका श्रद्धानी बाह्य पुन्यको उस अन्तरंगके पुन्यके सामने जो तावका स्वाभाविक प्रकाश है बहुत ही मूल्यहीन जानता है। अस्तु; हर प्रकारसे तावको प्राप्त करना चाहिए। फूल उसी समय खिल सक्ते हैं जब जड़ विद्यमान हो। उपायों (मार्गों)में सर्व प्रथम पादुका अथवा उपाय मनकी स्वच्छता है। केवल वह ही मनुष्य जिसने सदैवके लिए सांसारिक प्रलोभनोंसे छुटकारा पा लिया है ताव तक पहुंच सक्ता है। द्वितीय पादुका बुद्धिका प्रकाश है जब उदासीनताका पूर्ण प्रभाव नैतिक चरित्र पर पड़ जाता है। तृतीय पादुका एकाग्रताको प्राप्त करना है "जब कि बिदुन घरसे बाहर निकले समस्त संसारका हाल मालूम हो जाता है।" परन्तु इसका मार्ग विशेष लंबा एवं कठिनसाध्य है। शिष्यको अवश्य ही किसी गुरुके चरणोंमें प्रथम गुप्त ज्ञानको प्राप्त करना चाहिए। इसके पश्चात् अपने आपको 'शांति'के सिद्धांतमें स्थित करना चाहिए। और अपना सर्व अवकाश अपने ही आत्माके जानने में व्यय करना चाहिए। और उसको पौद्गलिक वस्तुओं एवं सांसारिक सम्बन्धोंके लिए अपने हृदयमें पूर्ण वैराग्य उत्पन्न

करना चाहिए। तब ही वह ताव अर्थात् सद्देवके जीवनमें प्रवेश करनेका अधिकारी होगा।

उपर्युक्त वर्णन जो ई० रि० ऐ० के चीनी रहस्योंके अध्यायसे लिया गया है वास्तवमें निश्चय धर्म्मकी शिक्षाका भावार्थ है और इस बातको प्रगट करता है कि प्राचीनकालमें उसके सिद्धान्त किस प्रकार दिगदिगन्तरों तक फैले हुए थे। एक फ्रान्सीसी पुस्तक 'Histoire des Religions (Vol. iii) नामकमें जिसका उल्लेख मेचनीकॉफ साहबने अपनी Nature of Man नामक पुस्तकमें किया है, यह लिखा है कि:—

"ताव मतके मुख्य मुख्य दावोंमेंसे एक दावा अमृत गुटकाकी निसबत था जिससे मनुष्य मृत्युसे बचसक्ता था।...... और तावमतके कुछ नेता जैसे चेङ्ग–ताव–लिङ्ग एक परवतके उच्च शिखिरसे आकाश पर चढ़कर दृष्टिगोचर हो गए और स्वर्गमें जीवित ही प्रवेश कर गये। ...... इस उद्देश्यको प्राप्त करनेके लिए लावट्स्यु (Lao-tseu) ने केवल जीवके लगातार जन्मोंमें क्रमवार आवागमन करनेके विचारको जिससे वह पहिलेका परिचित था संवर्द्धित करके मनुष्योंपर लगाया। पापोंके विशुद्ध होते हुए... वह मनुष्य भी जो एक जन्ममें जीवन पवित्रताको नहीं पहुंच सका है लगातार जन्मोंमें उत्कृष्टताको प्राप्त करता हुआ देवताओं और मुक्त जीवोंके अमरत्वको प्राप्त कर सकता है।"

मैं विचार करता हूं कि इसका अर्थ केवल यह है कि यदि कोई मनुष्य एक जन्ममे अमरत्वको आवागमनके कारणोंके नाश होनेके पहिले मृत्यु हो जानेकेकारण प्राप्त नहीं कर सका हो तो इसके श्रमका फल नष्ट नहीं होगा सुतरां दूसरे जन्ममें उसके पास रहेगा जिससे कि पूर्ण प्रयत्न करनेसे थोड़े ही जन्मोंमें निर्वाण प्राप्त हो सका है ।

यह कोई विस्मयदायक बात नहीं है कि इस साधारण व्याख्याने पाश्चिमात्य सत्यखोजियोंको असमंजसमें डाल दिया हो कारण कि अब तक इनको सत्य सिद्धान्तके यथार्थ तत्त्वोंसे परिचय नहीं हुआ है। जो कुछ इन्होंने अब तक पढ़ा है वह यथार्थ धर्मका वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं है। सुतरां केवल गुप्त रहस्यों वा कथा पुराणोवाले धर्म्मोंके क्रमहीन सिद्धान्त हैं जो धर्म्मके नामसे प्रचिलित हैं।

चेङ्ग-ताव-लिङ्गका आकाशमें विलीन हो जाना इस प्रकार से० बु० ई० भाग ३९ की भूमिकाके पत्र ४२ में वर्णित हैः—

"हमारी प्रथम शताब्दिमें लियाङ्ग (Liang) की संतानोंमेंसे एक मनुष्य चेङ्ग-ताव-लिंग हुआ है जिसने राज्यकी नौकरी करना पसन्द न करके अपने मनको रसायन विद्यामें लगाया। और अन्ततः जीवन अमृत वा नित्य जीवनकी गोली बनानेमें सिद्धहस्त हुआ। और १२३ वर्षकी अवस्थामें क्षणिक शरीरके पंकजोंसे स्वतंत्र होकर अमर जीवनके आनन्दमें प्रवेश कर गया।"

मेरे विचारसे यह विशेषतया एक गुप्त शिक्षा है बनिस्वत किसी घटना या घटनाके शाब्दिक वर्णनके। और इस शिक्षाके गुप्त रहस्यका एक प्रबल चिन्ह, उस भागमें मिलता है जिसमें शरीरके पंकजोंसे छुटकारा पानेका उल्लेख है; जो वास्तवमें निर्वाणका चिन्ह है और शारीरिक सत्ताको रसायनिक रसों वा गोलियोसे सदैव जीवित रखनेके विपरीत है।

तावमतके रहस्यमय ग्रन्थ ताव-तेह-चिङ्ग (Tao-Teh-Ching) में लिखा है कि:—

'जितना ही विशेष दूर कोई मनुष्य अपनी सत्ता (आत्मा) से वाहर जाता है उतना ही कम वह अपनेको जानता है।"
(से० बु० ई० भाग ३९ पृ० ८९)।

और निम्नलिखित वर्णन भी उसी पुस्तक का:—

' "वह मनुष्य जिसकी जातिमें तावके गुण विशेषरूपमें हैं एक बालकके सदृश होता है। विषैले कीड़े उसको डंक नहीं मारते। क्रूर पशु उसको नहीं पकड़ते। शिकारी पक्षी उसको नहीं खाते।" (पूर्व पृ० ९९)—

उसी भावमें है जैसी कि मरकसकी इन्जीलके सोलहवें अध्यायके अन्तमें वर्णित भविष्यद्वाणी और हिन्दू धर्मकी शिक्षा (देखो योगवाशिष्ठ) परमात्माको जाननेके लिए अपनी आत्माका ज्ञान आवश्कीय बतलाया गया है।

"मनुष्य अपनी मानसिक शक्तियोंको पूर्ण रूपसे काममें

जानेसे अपने स्वभावको समझ जाता है। और जब वह अपने स्वभावको समझ जाता है तो वह परमात्माको समझ जाता है।" (देखो गाइल्ज साहबकी रिलीजन्ज ओफ एनशियन्ट चाइना पत्र ४३)

शाव-यङ्ग (सन् १०११-१०७७ ई०) परमात्माके निवास स्थान के सम्बंधमे कहता है कि:—

"आकाश शांत है। कोई शब्द नहीं होते है।
तब परमात्मा कहां मिलेगा?
दूरस्थ व्याप्त आकाशोंमें उसकी खोज मत करो,
वह स्वयं मनुष्यके हृदयमे विराजमान है।" (पूर्व पृ० ५८)

अन्तिम ध्येय भी परमात्मा है (पूर्व पृ० ५०)।

प्रत्येक मनुष्य जो बाह्य वस्तुओंमें विशेषरूपेण लिप्त रहता है (अर्थात् उनसे मोह करता है) वह अन्तरंगमें निर्धन होता है (देखो दि म्यूजिंगज ओफ ए चाईनीज मिस्टिक पत्र १००)। पूर्णता नहीं बनती है—

"......दानशीलता और पड़ोसीके साथ योग्य व्यवहार करनेसे। यह तावके प्राप्त करनेमें पाई जाती है। सुननेकी शक्तिकी पूर्णता दूसरोंके सुननेसे नहीं होती सुतरां अपनेको सुननेसे।.........दृष्टि शक्तिकी पूर्णता अन्योंके देखनेसे नहीं होती सुतरां अपने ही को देखनेसे। कारण कि वह मनुष्य जो अपनेको नहीं देखता बल्कि अन्योंको देखता है,

अपनेको नहीं पकड़ता है बल्कि अन्योंको। और इसप्रकारसे वह उस वस्तुको पकड़ता है, जो औरोंको पकड़नी चाहिए। न कि उस वस्तुको जिसको उसे स्वयं पकड़ना चाहिए। अपने स्वरूपमें स्थित होनेके स्थान पर वह वस्तुतः कोई अन्य व्यक्ति हो जाता है।" पूर्व पृ० ६७).।

मानसिक पूर्णतासे पुण्य और पापका अभाव हो जाता है। एक चीनी भक्तका मत है कि:—

"प्रश्न यह है कि मनको शांतिकी अवस्थामें किस प्रकार लावें, जिसमें विचार करना वा मानसिक वक्रावस्था अवशेष न रहे। होठोंको किस प्रकार मौनसाधन करावें जिससे कि केवल प्राकृतिक स्वांस ही अन्दर जा सके एवं बाहर आ सके। यदि तुम मानसिक पूर्णताकी प्राप्तिमें दत्तचित्त हो जाओ तो पुण्य और पाप सत्ताहीन हो जावें। यदि जिह्वा अपने प्राकृतिक नियमके आधीन हो जावे तो उसको लाभ और हानिका भान न होगा।" तावइस्ट टीचिंग पृ० ४७)।

इसी ज़रियेसे हमको यह भी विदित होता है कि:—

"शरीरसे छुटकारा पानेके लिए केवल एक ही मार्ग है जो मनसे कषायोंका निकाल डालना है।" (पूर्व पृ० ४२)।

मन शुभ भावोंका स्थान है:-

"उस (झरोके) छिद्रको देखो; उसके द्वारा शून्य गृहमें

प्रकाश आता है। शुभ भाव (मनमें जिसकी यहां पर सदृशता है) इस प्रकार पर रहते हैं जैसे कोई अपने मुख्य आनन्द भवनमें रहे।" (S B E Vol XXXIX- P. 210)

पूर्ण पुरुष अर्थात् तावका आचार्य, अथवा आत्माके सदृश मनुष्यकी परिभाषा "एक पहाड़ीमें रहनेवाले वानप्रस्थके प्रकार की है, जिसकी शारीरिक अवस्था बदल गई है और जो आकाश पर चढ़ जाता है।" (Ibid. 237. Footnote) महात्मा पुरुष "सर्वोत्तम विजयी है" (Ibid. p. 385.). । "वह मनुष्य जिनमें उत्कृष्ट गुण पाए जाते हैं प्रकाश पर अवस्थित हो कर ऊपर चढ़ जाते हैं। और शरीरके बंधन नष्ट हो जाते हैं" (Ibid. 324) सांसारिक आत्मा, यह कहा जाता है (Ibid. p p 367), सर्व वस्तुओके रूप बदल देती है और उनको बल पहुंचाती है। और किसी भी रूपसे उसकी समानता नहीं दी जा सक्ती है। उसका नाम "(मनुष्यमें) परमात्मापन" है। चीनी भाषाका शब्द जो यहां व्यवहृत हुआ है वह ती (Ti) है जो अनुवादकके वर्णन (पत्र ३६७) के अनुसार "मनुष्यकी आत्माके लिए ईश्वरके भावमें अत्यन्त ही विलक्षण व्यवहार इस शब्दका है।" वह मनुष्य जो लाभ और हानिको एक दृष्टिसे नहीं देखता है उत्तम पुरुष नहीं है. (Ibid. P. 239.) उद्देशकी प्राप्तिका अर्थ क्या है इसके विषयमें ऐसा कहा है:—

"उद्देशकी प्राप्तिका अर्थ पूर्ण आनन्द है।.........आज कल

ध्येय प्राप्तिका भाव गाड़ियों और छत्रकी सिद्धिसे है। परन्तु गाड़ियों और छत्रका प्रभाव शरीर पर पड़ता है। उनका कोई सम्बंध हमारे स्वरूपसे, जैसा वह वास्तवमें है, नहीं है। जब यह वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं तो वह अल्प समयके लिए होती हैं। क्षणिक होनेके कारणसे उनका आगमन नहीं रुक सक्ता, और न उनका जाना बन्द किया जा सक्ता है।.........इनमेंसे एक अवस्था हमारे आनन्दका वैसा ही कारण हो सक्ती है जैसे दूसरी। कारण कि आनन्दसे भाव केवल क्लेशोंसे मुक्त होना है। अब यदि एक क्षणिक वस्तुके दूर हो जानेसे हमारा सुख जाता रहे तो इससे यह प्रकट होता है कि वह सुख जो उससे हमको मिलता था वह एक व्यर्थ वस्तु थी। इसलिए यह कहा गया है 'कि वह मनुष्य जो सांसारिक वस्तुओंके पीछे अपने आपको भूल जाते हैं और पौद्गलिक वस्तुओंके ध्यानमें अपने असली स्वरूपको गंवा देते हैं उनकी बाबत कहना पड़ता है कि वे ऐसे मनुष्य हैं जो प्रत्येक कार्य्यको उलटा करते हैं'।" पूर्व पृष्ठ ३७२-३७३)।

यह सब यथार्थ वैज्ञानिक (Scientific) धर्मकी शिक्षाके पूर्ण समान है जैसा कि अब हम जानते हैं।

यहां पर हम इन्जीलकी उस आयतके यथार्थ भावके निर्णय करनेके लिए रुकेंगे जिसका मूल "मैं मार्ग, सत्य एवं जीवन हूं।" है। (यहुन्ना १४। ६)।

यह वास्तवमें दूसरे शब्दोंमें यथार्थ शाब्दिक भाषांतर, सम्य-क्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके रत्नत्रयका है जो मिलकर जैनधर्मके अनुसार मुक्तिका मार्ग है।

मार्ग = सत्य, योग्य वा सम्यक् दर्शन (श्रद्धान)।

सत्य = सत्य, योग्य वा सम्यक् ज्ञान।

जीवन = सत्य, योग्य वा सम्यक् चारित्र।

सबसे प्रथम सूत्र जैनियोंके पवित्र शास्त्रका जिसको श्रीतत्त्वार्थसूत्रजी कहते हैं, हमको शिक्षा देता है कि:—

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः॥'

इसका अर्थ यह है कि सत्य श्रद्धान, सत्यज्ञान, और सत्य चारित्र तीनो मिलकर मुक्तिका मार्ग हैं। और द्रव्यसंग्रहके २७ वें श्लोकमें यह बताया गया है (से० बु० जै० भाग १ पृष्ठ ११०)

"कारण कि नियमके अनुसार बुद्धिमान पुरुष निर्वाणके दोनों कारणोंकों ध्यानसे प्राप्त कर लेता है। अतः प्रयत्नशील हो ध्यान करो।"

मुक्तिके उल्लिखित दोनों कारण निश्चय और व्यवहार कहलाते हैं। इनकी विभिन्नता इस पर अवलम्बित है कि किस अपेक्षासे इन पर विचार किया जावे। व्यवहार पर्य्यायार्थिक दृष्टि है। परन्तु; निश्चय द्रव्यार्थिक वा स्वाभाविक दृष्टि है। व्यवहारके अनुसार तीर्थंकरो द्वारा प्रतिपादित तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यक् दर्शन है। तत्वोंका ज्ञान जैसा जैन शास्त्रोंमें वर्णित है

सम्यक्ज्ञान है। और उन नियमो पर अपने जीवनमें अमल करना जो जैनधर्ममें गृहस्थ और साधुके लिए निर्णीत हैं सम्यक् चारित्र है। परन्तु; चूंकि आत्मा स्वयं वास्तवमें परमात्मा है इसलिए वह स्वयं ही सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी मूर्ति है। द्रव्यसंग्रहकी अंग्रेजीकी टीकामें जिसका उल्लेख अभी किया गया है मि० एस० सी० घोषाल साहब लिखते हैं:—

"पूर्ण श्रद्धान (सम्यक्दर्शन) सम्यक्ज्ञान, और सम्यक् चारित्र साधारणतया मोक्षके कारण हैं यद्यपि इन तीनों गुणोंसे व्याप्त आत्मा ही स्वयं मोक्षका कारण है।"

यही कारण है जो एक स्वस्वरूपज्ञाता आत्मा अपने संबंधमें यह कहता है कि:—

"मैं मार्ग, सत्य एवं जीवन हूं।"

वह क्रम भी, जिसमें इन तीनों गुणोंका उल्लेख है एक विशेष अर्थमय है। कारण कि वे इस ही क्रममें सदैव जैनधर्मीय शास्त्रोंमें पाए जाते हैं। यह क्रम मि० जे० एल० जैनी साहबके तत्त्वार्थ सूत्रजीके अंग्रेजी अनुवादसे पूर्णतया प्रगट होता है, जो से० बु० जै० सीरीजका द्वितीय ग्रंथ है:—

"इनमेंसे सम्यक्दर्शन भित्ति है जिस पर शेषके दो स्थित हैं। सम्यक्ज्ञानके पूर्व इसकी प्राप्ति होना आवश्यकीय है। वह कारण है और सम्यक्ज्ञान कार्य्य है। सम्यक्ज्ञान

में सम्यक्दर्शन सदैव सम्मिलित है। इसी प्रकार सम्यक् चारित्र सम्यक् ज्ञानसे होता है। जो इसके पूर्व होता है। और सम्यक् चारित्रमें सम्यक्दर्शन एवं सम्यक्ज्ञान सम्मिलित हैं। इसी कारणवश हम सूत्रमें पहिले सम्यक्दर्शन, फिर सम्यक्ज्ञान, और अन्तमे सम्यक् चारित्र पाते हैं।" (से० बु० जै० भाग २ पृ० २)।

अब हम मिथराई मत (Mithraism) का कुछ दिग्दर्शन करेंगे। जो एक समयमें एशियाके समस्त पाश्चिमात्य भागोंमें भारतकी सीमासे लेकर रोम (Rome) तक फैला हुआ था। यह कमसे कम अपने यथार्थभावमें तो अवश्य ही था, चाहे नामसे कहीं कहीं न भी हो। साधारणतया मिथरा मतका निकास अब वैदिक मित्र कहा जाता है। उन लेखोंके अनुसार जो एच० विन्कलर साहबको बोगाज क्युई नामक स्थान पर सन् १९०७ ई० मे मिले थे और मुख्यतया उसके अनुसार जिसमें राजा हुब्बीलूल्युमा और तुशरतके पुत्र मितन्नीके राजा माट्टियूजा के संधिपत्रका उल्लेख है। मित्र, वरुण, इन्द्र और युगल अश्विनी कुमारोंकी उपासना मितन्नीके प्रान्तमें चौदहवीं शताब्दि ईसाके पूर्वके समयमे होती थी। यह इस बातका प्रबल प्रमाण है कि इस प्राचीन कालमें भारतीय आर्य्यगण एशियाकोचक (Asia Minor) तक शासनाधीश थे। मेरा मत मौलटन साहबकी उस सम्मतिसे सहमत है जिसमें वे कहते हैं कि इस घटनासे

संभवतया इसके अतिरिक्त अन्य कोई भाव नहीं निकलता है कि आर्य्यलोग शासक थे, एवं प्रजा वहाँके असली निवासी थे जिन पर आर्य्योंने विजय पाई थी। इससे यह भी भाव हो सक्ता है कि कुछ आर्य्य लोग ऐतिहासिक समयसे पहिले पश्चिमकी ओर गए थे, जैसा कि कितनेक विद्वानोंका मत हैं। ईरानके पारसी अवश्य ही भारतीय आर्य्य लोगोंकी एक शाखा ज्ञात होते हैं। जो कि अतिप्राचीन समयमें ईरान (Persia) में आकर बसे थे। और भारतीय आर्य्योंके विचारों एवं रीति रिवाजोको अपने साथ ले गए थे जैसा कि बाबू गंगाप्रसाद साहबने जिनका मत योरोपीय विद्वानोंके मतसे सहमत विदित होता है, अपनी फाउनटेन हेड ओफ रिलीजन नामक पुस्तकमें पूर्णरूपेण प्रमाणित कर दिया है। असेरियाके बादशाह असुरबनीपाल (६६८–६२६ पूर्व ईसा) के ग्रंथालयकी एक तख्ती मिली है, जिसके लेखसे मिथरा और शम्सका एक होना पाया जाता है। जब कि असरमजाश वास्तवमें असेरियावासियोंकी भाषामें ईरानके ईश्वर अहुरा (संस्कृत भाषाका असुर) मजदाका नाम है (ई० रि० ए० भाग ८ पृ० ७५४)। प्लूटरक हमको बताता है कि मिथराकी उपासना रोममें सिसिलीके सामुद्रिक डाकुओंने को सन् ६७ ईसाके पूर्वमें पकड़े गए थे, प्रचलित की थी। (ई० रि० ए० ८ पृ० ७५५)।

मिथरासे क्या उद्देश्य है ? इसके विषयमें कोई संशय नहीं

है कि मित्र प्रकाशका देवता माना जाता है जिसका अर्थ यह है कि वह ज्ञान वा धर्म्मके किसी रूपका रूपान्तर है। मित्र दिनका देवता है और वरुणसे जो रातका स्वामी है, पृथक् है। दिन और रात संभवतः आत्माकी विशुद्ध और मलिन अवस्थाओंको जाहिर करते हैं। इस प्रकार मित्र (जिसका शब्दार्थ सखा है) ईश्वरीय ज्ञान वा ईश्वरीय वाणी अथवा बुद्धिको जो मनुष्यकी अतिउपयोगी मित्र है, प्रगट करता है। और वरुण जीवनके किसी मुख्य कर्तव्यको, जो संसारी अवस्थामें पाया जावे, प्रकाशित करता है। अस्तु; वरुण हमारे भाग्यका विधाता एवं न्यायाधीश है, जो स्वयं प्रकृतिके नियमानुसार बनता रहता है। वरुणका हिंदू पुराणोंमें इस प्रकार वर्णन आया है:—

"उसकी दृष्टि उत्तम कही जाती है कारण कि वह मनुष्योंके हृदयोंकी बातको जानता है। वह देवताओं और मनुष्योंका राजा है। बलवान और क्रूर है। कोई उसकी आज्ञाको टाल नहीं सका है। वह जगतका शासनाधीश है वह ही सूर्य्यको आकाशमें प्रकाशित करता है। वे पवन, जो चलतीं हैं केवल इसकी स्वांस प्रस्वांस हैं। उसने नदियोंके मार्ग खोदे हैं, जो उसकी आज्ञासे बहती हैं। और उसने समुद्रकी गहराईको बनाया है। उसकी आज्ञाएं निश्चित हैं उनको कोई रद्द नहीं कर सका है। उनके कार्य्यसे चन्द्रमा प्रकाशमें चलता है। और तारे जो रात्रिको आका-

शमें दृष्टिगोचर होते हैं दिवसमें लुप्त हो जाते हैं। पवनमें उड़नेवाले पक्षी और कभी न सोनेवाली नदियां उसकी शक्ति एवं रोषको नहीं जान सके हैं। परन्तु; वह आकाशमें पक्षीके उड़ानको, विशेष दूरस्थ दिशाओंमें पर्य्यटन करनेवाली पवनके मार्गको और समुद्रमें जहाजोंके रास्तोको जानता है। और सर्व गुप्त बातोंकी जो आज तक हुई हैं वा भविष्यमें होंगी, देखता है। वह मनुष्यकी सत्य और असत्य चर्य्याका द्रष्टा है।

"इसके गुप्तचर आकाशसे उतर कर इस सर्व जगतमें
चहुंओर भ्रमण करते हैं।
इनके सहस्रो नेत्र दूरसे दूर अवस्थित स्थानोंको पृथ्वीमें
देखते हैं।
जो कुछ स्वर्गमे और पृथ्वी पर है और जो आकाशके
बाहर है।
वह सर्व वरुण सम्राट्के समक्ष प्रत्यक्ष रूपमें विद्यमान है।
प्रत्येक संसारी आत्माके नेत्रोंकी गुप्त झपकियोंको
वह गिनता है।
वह इस संसारके ढांचेको इस रूपमें साधे हुए है जैसे
कोई पासा फेंकनेवाला पासा फेंके।
वह गॅठीले फंदे, ऐ ईश्वर! जो तू फेकता है।

"उनमें सर्व असत्यवादियोंको फँस जाने दे, परन्तु सब सत्यवादियोंको उनसे बचा।"

(देखो विल्किन्ज़ हिंदू मिथोलोजी)

वरुणकी सर्वज्ञता अवश्य ही कविकल्पनामें प्रकृतिकी सर्वज्ञता है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती; न जिसको ठगा जा सकता है; और न जिसके साथ छल संभव है। जब कि एक ऐसे नियमकी कभी न भूल करनेवाली सेहत जो विविध पदार्थोंके गुणोंके द्वारा क्रियात्मक होता है निष्पक्ष न्यायका ऐसा नमूना है कि जिस तक पहुँचनेमें प्रयत्नशील मानुषिक जज कभी सफल नहीं हो सके हैं। परन्तु मित्रकी सर्वज्ञता विशुद्ध आत्माकी सर्वज्ञता है और वरुणकी इस कविकाल्पनिक सर्वज्ञतासे नितान्त विपरीत है।

पारसियोंमें मिथराने अहूरामज़दाकी बराबरीका पद प्राप्त किया है, जो कहता है कि:—

"जब मैंने मिथराको विशाल चरागाहोंका अधिपति बनाया; तब ऐ सिपतम मैंने उसको अपने अर्थात् अहूरामज़दाके सदृश बलिदान और प्रार्थनाके योग्य बनाया।" (यश्त १०-१)।

मिथराको मध्यमा भी कहते हैं, जिसका यह अर्थ है कि वह मसीहाके रूपमें माना जाता था।

मिथरा साधारणतया चित्रोंमें बैलको वध करते हुए पाया जाता है, जो बलिदानके भावमें-पाशविकता अर्थात् नीचता

(विषयवासनाओं) का चिन्ह है। हिन्दू और पारसी विचारा-वतरणकी उपर्युक्त सदृशता दिखानेके लिए मैं निम्नोल्लिखित वर्णनको अंकित करता हूँ (इ० रि० ए० भाग १ पृ० ५६८):—

"जैसे अहुरामज़्दाके चहुं ओर नैतिक महात्माओंका दरबार लगता है इसी रूपमें भारतका विद्वान असुर भी धार्मिक सिद्धांतोंके रूपान्तरों (Personifications) अर्थात् आदित्यों वा प्रकाशके देवताओंमें प्रथम है।......भारतमें इन सिद्धांतोंमें हम भाग्य अर्थात् शुभ क्रिया, अंश अर्थात् भाग, दक्ष अर्थात् योग्यता आदिको पाते हैं। यदि वे वे ही नहीं हैं जो पारसियोंके फिरश्ते हैं तो यह केवल संयोगकी बात है। कारण कि ईरानके विविध धार्मिक सिद्धांतोंके रूपान्तरोंसे समानता रखनेवाले रूपान्तर वेदोंकी गुप्त समस्यामें भी पाए जाते हैं। केवल ऋता ही अशा (Asha) अरता (Arta) के अनुसार नहीं है। बल्कि अरमिति 'ईश्वर भक्ति' 'प्रार्थना' बराबर है अरमैती 'ईश्वरभक्ति' 'वुद्धि'के। क्षत्र (Kshatra) वरुणका राज्य है जैसे क्षथरावैरया (Kshathra Vairya) मज़्दाकी बादशाहत (राजधानी) है। सौर्वातातिं अर्थात् 'सफाई' हौरवतातके बराबर है जब कि पवित्र मन (वहुमनाः = Vobo Manah) की धारणा, यद्यपि वेदमें उसका उल्लेख नहीं आया है, संभवतः वह प्राचीन भारतीयोंकी नैतिक शिक्षामें विदित पाई जाती थी

कारण कि वेदके पुजारियोंमेंसे एक वसुमनस (Vasu-Mans) अर्थात् पवित्र हृदयवाला कहलाता था।"

रात्रिसे वरुणके सम्बन्धकी सदृशता भी पारसी मतमें पाई जाती है:—

"जब अहूरामजदा, जिसने अपना वस्त्र, जो फरिश्तोंका बनाया हुआ है एवं तारिकामंडल द्वारा अलंकृत है, पहन लिया है मिथरा और रशनौ और पवित्र अरमैतीके साथ जिसका न आदि है और न अन्त है, वहां है।" (यश्त १३-३= इ० रि० ए० ६ पृ० ५६८)।

जगतके ओवरसीयर (Overseer) के रूपमें वरुणकी सदृशता चन्द्रमासे दी जा सकी है; जो रात्रिका राजा है। असेरिया बेबिलोनियाके देवालयोंमें चन्द्रमा देवता कहा जाता है कि ऊंचे दर्जेका देवता था (इ० रि० ऐ० भाग ६ पृ० ५६६)। जरदस्तके धर्ममें भी चन्द्रमाको बड़े फरिश्तोंका निवासस्थान बताया है। "वह बारम्बार ऋतु, अर्थात् 'भक्त' वा संरक्षक' व अशा (न्याय) कहा गया है।" (इ० रि० ऐ० भाग ६ पृ० ५६८ वा यश्त ७। ३)

सृष्टिके सम्बंधमें भी ईरानी विचारावतरणकी गुप्तसमस्या प्रत्येकस्थान पर प्रकट है।

एल० एच० मिल्स साहबके अनुसार (से० बु० ई० भाग ३१ पृ० २६):—

"इससे इन्कार नहीं हो सका है कि वह बहुत सामान्य

रूपमें है। और ठीक उस सीमा तक कि जहां तक इसमें रङ्ग और ब्योरा नहीं पाए जाते हैं इसकी गंभीरता प्रकट है।"

परन्तु यथार्थ यह है कि वह सामान्य और कथानक दोनों अपेक्षाओंको लिए हुए है। इसका कोई भाग ऐतिहासिक रूपसे पढ़नेके लिए नहीं लिखा गया; न वह भाग भी जिसमें शताब्दियों, युद्धों, राज्यो और वर्षोंका उल्लेख है। यह सम्भव है कि हम आज प्रत्येक एक्टरके भेदको जिसने जीवनके इस पवित्र नाटकमें भाग लिया है न समझ पाएँ। परन्तु तिस पर भी हमारा ज्ञान इतना कम नहीं है कि हम उसकी प्लॉट (Plot) का सेहत और विश्वासके साथ खाका न खींच सकें।

अहूरामज़्दासे भाव जीवनके उस भागसे है जिसे धर्म्म कहते हैं अर्थात् धर्म्म मार्गसे। शब्द अहूरा संस्कृत असुर शब्दके समान है जिसका अर्थ ईश्वर वा प्रभू है। और मज्दाकी सदृशता मेधस्से है जिसका अर्थ संस्कृतमें विज्ञान (Science) है। इस प्रकार अहूरामज़्दा ईश्वरीय धर्मज्ञान अर्थात् विज्ञान (Science) का रूपक है और मज़्दा जो पहलवी और हुमज़्द का जिसको साधारणतया अहूरामज़्दा कहते हैं फ़ारसी रूप है, अनन्त एवं नित्य प्रकाशमें रहता है, कारण कि धर्म्मका यथार्थ अस्तित्व विशुद्ध आत्माहीमें संभव है जो कभी न अन्त होनेवाला नित्य प्रकाश है।

शत्रु पाप है अर्थात् अंधकार है जो इस प्रकार गहरा है कि

तुम उसे हाथसे पकड़ सके हो (इ० रि० ऐ० भाग ६ पृ० ५६७) यह पूरा चिह्न पुद्गलका है जिसमें पापका निवासस्थान है।

जीवोंके भृष्ट कर्त्ताका अस्तित्व शिकण्ड-गूमानिक-विजारके कर्त्ताने निम्नलिखित तर्कसे प्रमाणित किया है:—

"....आत्माकी रक्षाकी आवश्यक्तासे आत्माकी अशुद्धता और भृष्टता प्रमाणित है। और आत्माकी अशुद्धता और भृष्टतासे मनुष्यके शब्दों और कार्योंके एक अशुद्ध और भ्रष्ट कर्त्ताका अस्तित्व प्रमाणित होता है। अतः सर्व वार्तोंपर लिहाज करनेसे यह प्रकट है कि आत्माओंका कोई मार्गभ्रष्टा है।" (से० बु० ई० भाग २४ पृ० १६७)।

उल्लिखित कर्त्ता विदून किसी भ्रमके इतना और कह सक्ता था कि एक सतात्मक द्रव्यको अशुद्ध करनेके लिए अशुद्ध कर्त्ता भी अवश्य कोई द्रव्य होना चाहिए। इस अशुद्धताका फल दिनाए-मैनोग-खिर्दमें इस प्रकार अंकित है। (से० बु० ई० भाग २४ पृ० ३२):—

"और अहरमन शैताननें राक्षसों और पिशाचोंको एवं अन्य अवशेष शैतानोंको अपने अयोग्य संभोगसे उत्पन्न किया।"

ये राक्षस विषयवासनाएँ, लोभ, क्रोध एवं जीवकी अन्य दुर्गुण व क्रियाएँ हैं। जो उसमें पुद्गलके संयोगसे उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु यह यथार्थमें जैनियोंके आश्रव और बन्धके सिद्धांत हैं, जिनका उल्लेख हम धार्मिक विज्ञानके मध्य कर चुके

हैं। यह व्याख्या ज़ाद्-सपेरम (अध्याय २-६) से भी प्रकट है:-

"........सर्व भूमण्डल पर सर्प, बिच्छू एवं अन्य प्रकारके पीड़ादायक प्राणी थे। और इस वास्ते अन्य प्रकारके चौपाए रेंगनेवाले कीड़ोंमें खड़े थे। पृथ्वी किसी स्थान पर इन प्राणियोंसे ख़ाली न थी यहां तक कि सुईके नोकके बराबर भी पृथ्वी नहीं बची थी जिसमें यह कीड़े न भर गए हों।"

जादसपेरमके चतुर्थ अध्यायकी दसवीं आयतमें अहूरमनके संबंधमें यह कहा गया है कि वह अहूरामज़दाके प्राणियोंके रूपोंको बिगाड़ डालता है जिससे भी एक पौद्गलिक द्रव्यकी सत्ताका भान होता है।

इस कुरूपका विवरण शिकन्द-गूमानिक-विजार (अध्याय २। ६-६) में निम्न प्रकार है:-

"पीड़ा पहुंचना वा पहुंचाना चाहे किसी प्रकारसे क्यों न हों, उत्पन्न नहीं होतीं जबतक कि स्वभावोंमें विभिन्नता न हो अथवा ऐसी वस्तुओंसे हो जिनके स्वभाव विभिन्न हों। कारण कि एक ही स्वभाववालोंमें इच्छा एवं ऐक्य एक दूसरेके साथ समान होते हैं और वहां न पीड़ा पहुंचाना होता है और न पीड़ा पहुंचना और वह जो विभिन्न स्वभावके हैं- वह अपने विपरीत स्वभावोंके कारण एक दुसरेके संहारक और पीड़ा उत्पादक होते हैं चाहे ज़िसप्रकारसे उनका मिलना हो। एक समान समस्वभावी अपने ऐक्य एवं

चित्तकी एकाग्रताके कारणसे घटक, कार्य्यक्षम और एक दूसरेके सहायक होते हैं जब वह आपसमें मिलते हैं।" (से० बु० ई० भाग २४। १२३)।

तब अहुरामजदाकी अनन्त शक्तिका क्या मूल्य है यदि वह अहरमनको नहीं रोक सक्ता है? इसका उत्तर यह है (से० बु० ई० भाग २४ पृ० १२४–१२५):—

"......अहरमनके दुष्कृत्य उसके दुःस्वभाव और दुरूइच्छाके कारणवश होते हैं जो पिशाच होनेके कारण उसके सनातनी गुण हैं। अहुरामजदाकी अनन्त शक्ति वह है जो सर्व संभव कार्योंके ऊपर है और इससे सीमान्तरित है।...... यदि मैं यह कहूं कि सृष्टिकर्त्ता अहुरामजदा अहरमनको दुर्गुणोंसे, जो उसका सनातनी स्वभाव है रोक सक्ता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि पिशाचको देवता और देवताको पिशाच बनाना संभव है। और अंधकारको प्रकाश और प्रकाशको अंधकार बनाना भी संभव होगा।"

धन्य है! उत्तम भाव ऐसे ही होते हैं निःसंदेह अनन्त शक्तिमें असंभवको अस्तित्वमें लाना सम्मिलित नहीं है। तथैव अंगरा मैन्यू निम्नके सार्थक शब्दोंमें अपने अविनाशी होनेकी शेखी मारता है:—

"सर्व देवतागण भी एकत्र होकर मुझे न मार सके मेरे स्वभावके विपरीत। और केवल जबर्दस्तकी पहुंच मुझ

तक हो सक्ती है मेरे स्वभावके विपरीत। वह मुझे आहूना वैरयासे जो शिला जैसा भारी है एवं गृह जैसा विशाल है, मारता है। वह मुझे अशा-वहिश्तसे जलाता है मानो वह पिघला हुआ पीतल है। वह प्रमाणित कर देता है कि मेरे लिए इस संसारको त्याग देना उपयुक्त होगा। वह स्पीतम जरदश्त केवल एक ही मनुष्य है जिससे मैं भय खाता हूं।" (से० बु० ई० भाग २३ पृष्ठ २७४-२७५)।

आहूना वैरया पारसियोंकी प्रार्थना है और अशा-वहिश्त उनका एक पवित्र मंत्र है। अस्तु, भावार्थ यह है कि जिस शत्रुको सर्व देवतागण नष्ट नहीं कर सक्ते है उसको एक सच्चा साधु, जिसने अपने आपको धर्म्म और वैराग्यमें पूर्ण बना लिया है, परास्त कर सक्ता है।

इन दोनो विपरीत शक्तियोंका मिलाप इनके मध्यके अवस्थित प्रान्तमें होता है जो एक प्रकारका 'निवासहीन' प्रान्त है जिसमें अंततः उनका अन्तिम संग्राम भी होता है। इसका कारण यह है कि न तो आत्माके यथार्थ स्वभाव (धर्मज्ञानके प्रान्त) में और न पुद्गलके यथार्थ स्वभाव (अहरमन अर्थात् अधर्मके प्रान्त) में एक दूसरेका प्रवेश किसी प्रकारसे भी संभव है। इस कारण उनके मिलापका प्रभाव केवल उनके गुणोंपर पड़ सक्ता है। अतः अहुरामजदा और अहरमनके विषयमें यह कहा जाता है कि "उनके मध्य शून्य स्थान था

अर्थात् जिसको वे पवन' कहते हैं जिसमें अब उनका मिलाप है"
(बुंदेश १ । ४ ; से० बु० ई० भाग ५ पृ० ४)

विपक्षी, प्रकाशके फरिश्ते और अंधकारके वंशज अर्थात् राक्षस हैं। प्रथमके नेता अहूरामजदा हैं, जो सर्वज्ञ हैं। परन्तु राक्षसोंका अधिकारी अंधा और नीच है (बुंदेश १ पृ० १९)। और अपनी भविष्यमें होनेवाली नष्टताको नहीं देख सक्ता है (दिनकर्त; ई० रि० ऐ० भाग १ पृ० २३७)। इसी हेतु अहूरा-मजदा पापके राक्षससे कहता है:-' ऐ दुरात्मा ! तू सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान नहीं है इसलिए तू मुझे नष्ट नहीं कर सक्ता और मेरे प्राणियोंको मेरी ओर आनेसे नहीं रोक सक्ता।" (बुंदेश १ । १६)

अहरमनकी अन्तिम पराजय मनुष्यके हाथ है (ई० रि० ऐ० भाग १ पृ० २३७)।

—अर्म्मज्ञान (अहूरामजदा) इस हेतुसे अपने अंधे और नीच विपक्षीसे अवकाश हासिल करता है जिसमें लड़नेवाले भिढ़े रहें।" (बुन्देश अध्याय १ आयत १८) कारण कि पापकी पूर्ण पराजय सत्यानुयायी मनुष्यके उत्पन्न होनेतक असंभव है। अतः अहूरामजदा, जो असंभवको संभव नहीं कर सक्ता है अपने निःकृष्ट विपक्षी पर विजय प्राप्त नहीं कर सक्ता है। यह काल लड़नेवालोंके भिढ़े रहनेका है जिसमें आत्मा पृथ्वीकायिक, वनस्पतिकायिक, पशुकायिक और निःकृष्ट मनुष्य योनियोंमें आवागमन करती रहती है।

मुख्य फरिश्ते निम्नप्रकार हैं:—

(१) वोहुमनाः = पवित्र विचार।

(२) अशावहिश्त = पूर्ण पवित्रता।

(३) क्षत्रवैर्या = उद्देशित राज्य।

(४) स्पेनता अरमैती = शुद्धता।

(५) हौर्वतात = रक्षक स्वाथ्य, और

(६) अमेरेतात = अमरजीवन

ये छै बड़े फरिश्ते हैं। पिशाच इनके विपक्षी हैं। पिशाचोंका सरदार अहरमन है। जिसका स्थान नर्क है और जो अहुराम-ज़्दाके प्राणियोंका मन, वचन, काय द्वारा दुश्चेता है (बुंदेश २८। १-२) अवशेषमेंसे अकूमनका यह कार्य है कि वह "दुष्ट विचारों और झगड़ों" को उत्पन्न करता है। तरमत अवज्ञाका उत्पादक है। मितोख्त असत्यवादी है। अरस्क कपट है। अकताश विपरीत अर्थवाचक है। अज लोभ है। ऐश्म क्रोध है। और नस अशुद्धता और अपवित्रताका उत्पादक है। और "इनमेंसे प्रत्येकके साथ बहुतसे राक्षस और पिशाच सहकारी हैं।......वर्षा, दुःख और वृद्धावस्थाके शैतान हैं।......दुर्गंध, सड़न, और भूखके लानेवाले हैं जो बहुत हैं अनिगिणत हैं और पापमें प्रसिद्ध हैं। और उन सबके अंश मनुष्योंके शरीरोंमें सम्मिलित हैं। और उनके गुण मनुष्योंमें प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर होते हैं।......कितनेक नवीन पिशाच मनुष्योंके नित्यनूतन पापा-

-चरणोंसे उत्पन्न होते हैं" (बुन्देश अ० २८) इस कारण कि निःकृष्ट विचारों, निःकृष्ट शब्दों और निःकृष्ट आचरणोंसे पिशाच उत्पन्न होते हैं और इनसे उनको पुष्टि पहुंचती है, यह कहा गया है:—

"विषय लोलुपता मत कर, जिससे तेरे ही कर्मोंसे तुझको हानि और शोक न प्राप्त हों" (दिनाए-मैनोगे-खिर्द, अध्याय २ । २३-२४) यही विचार निम्नके लेखमें पाया जाता है:—

"... राक्षसोंकी पूजा तूने की थी । और दैत्यो पिशाचोंकी सेवा की थी (पूर्व २।१७२-१७३) । ... और जो पूजा वह अग्नि मन्दिरमें करते हैं, जब कि वह ठीक भी नहीं होती है, तो वह दैत्यो तक नहीं पहुंचती । परन्तु वह पूजा जो अन्य स्थानों पर की जाती है जब कि लोग उसे योग्य रीति पर नहीं करते दैत्यों तक पहुंचती है । कारण कि पूजामें कोई मध्यस्थिति नहीं है । या तो वह फरिश्तो तक या दैत्यों तक पहुंचती है ।" (शायस्त ला शायस्त अ० ६ । ५) ।

फरिश्ते (देवता) हमारे कृत्योंसे उत्पन्न नहीं होते हैं, कारण कि वह तो पहिले ही से आत्माकी दुष्ट क्रियायोंके विपक्षी रूपमें अवस्थित हैं । अस्तु; पैशाचिक क्रियायोंके नाश करने ही से उनका प्रकाश होता है । परन्तु वह इससे उत्पन्न नहीं होते हैं । इस कारणवश वे धर्म्मवान (ओहार-मज़्द) को सृष्टि समझे जाते हैं; जिसके सनातनी वैभवसे वे उत्पन्न होते हैं । इनके

विपयमें कहा जाता है कि वे मनुष्योंको सुख और आनन्द देते हैं। कारण कि मङ्गल ऐसे शुभ कृत्योंका फल है, जैसे पवित्र-विचार, आत्मविशुद्धि आदि। फरिश्ते (देवता) प्रकाशके राज्य में—धर्मज्ञानके प्रतापसे निवास करते हैं, जिनकी रक्षाके लिए बुद्धिका कोट अवस्थित है, (ज़ाद्-सूपेरम अ० ५।१) जिसको शुभदाता अहूरामज़दाने बनाया है।

सृष्टिके विविध रूपोंमें प्रत्येक वस्तु किसी न किसी गुणको प्रकट करती है जो धर्म वा उसके विपरीत अधर्मसे संबंध रखता हो। मृत्यु आत्मिक शून्यताको कहते हैं। भ्रष्टता अश्रद्धाके मलको और गऊ आत्मिक विशुद्धताको कहते हैं। ईरानी लोगोंसे भाव अहूरामज़्दाके धर्मात्मा अनुयायियोंसे है। अरमैती परम विशुद्धता है। और गऊकी आत्मा धर्मात्माओंकी आत्मा है जो मसीह (मोक्षदाता) के शुभागमनके लिए रो रही है। सृष्टिके अन्य सर्व विभागोंमें भी इसी प्रकारके रूपान्तर पाए जाते हैं। इस व्याख्याका वर्णन विशेप प्रत्यक्ष रूपमें बुन्देशेके १९ वें अध्यायमें किया गया है जिसमेसे मैं निम्न लिखित उपर्युक्त पूर्ण वर्णन उद्धृत करूंगाः—

'भावार्थ यह है कि समस्त पशुओं, पक्षियों और मछलियों को प्रत्येक किसी न किसी विषैले प्राणीके विरुद्धमें उत्पन्न किया गया है।......मुर्गा दैत्यों और जादूगरोंके विरुद्ध उत्पन्न किया गया है जिसका सहायक कुत्ता बनाया गया

है। जैसा कि शास्त्रमें कहा है, कि संसारके प्राणियोंमेंसे वह जो दैत्योंको नष्ट करनेमें सरोशकी सहायता करते हैं, वे मुर्गा और कुत्ता हैं।. कुत्ता ऐसे दैत्यका नाश करनेवाला है जैसे मनुष्यो और पशुओंमें लालच, (आयतें ३०-३३-३४) ......कुत्ते भेड़ियोंकी जातिके शत्रु और भेड़ोंकी रक्षाके लिए उत्पन्न किए गए हैं, (आयत २७)।...अहूरामजदाने कोई वस्तु व्यर्थ नहीं बनाई, कारण कि सर्व वस्तुऐं उपयोगी बनाई गई हैं। जब कोई उनकी यथार्थता नहीं समझता है तो उसको चाहिए कि दस्तूर (पुरोहित) से अच्छा करले। कारण कि उसकी पांच प्रवृत्तियां इस ढंगसे बनाई गई हैं कि वह बराबर दैत्योंको नष्ट करता रहे" (आयत ३६)।

मैं नहीं समझता हूं कि आजकलके समयमें कोई दस्तूर ऐसा है, जो औहारमजदकी सृष्टिका अर्थ समझता हो। विदित होता है कि उन सबने शाब्दिक विवरणका जहर खूब पिया है। उनको फेशनेबिल उच्च ईश्वरभक्तिके (देखो एस० ए० कापड़िया साहबकी: टीचिंग ओफ ज़ोरोआष्ट्रियनइज़म पृष्ठ १७) अतिरिक्त अपनी पवित्र पुस्तकोंके प्रत्येक पत्र व पंक्तिमें और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता है। बुन्दाहिसका अध्ययन करनेके पश्चात् मुझे इस विषयमें कोई संशय नहीं रहा है कि वह यहूदियों, ईसाईयों और मुसलमानोंके अद्भुत (अजीब व गरीब) कथानकोंकी कुञ्जी हैं। और यह असम्भव नहीं है कि अन्य बहुतसे

धार्मिक कथानक भी उसीके ढांचे पर बनाए गए हों, जो ईरान के पाश्चिमात्य एवं उत्तरीय पाश्चिमात्य देशोंमें भूतकालमें प्रचिलित थे।

मैं आशा करता हूं कि पारसी लोग अब ससंतोष नहीं बैठे रहेंगे जब तक कि वे इस सम्पूर्ण मर्म्मको हल न करलें, जो स्वभावत: उनके लिए एक नितान्त विदेशी मनुष्यकी अपेक्षा जो उनके रीति रिवाजों और मुख्यतः उनकी भूतकालीन भाषा एवं परंपरीण कथाओंसे अनिभिज्ञ है, विशेष सहल होगा। मैंने खोज करनेकी दिशाका संकेत करनेके लिए यहां पर उपयुक्त विवेचन कर दिया है। और मेरे विचारसे एक कार्य्यशील और योग्य बुद्धिशील छात्रोंके, समुदायके लिए एक अल्पसमयमें अपने धर्म्मके पवित्र एवं उच्च मंदिरको पुनः नूतनरीत्या निर्मापित करनेमें कोई कठिनाई न होगी। परन्तु उनको इस बातका सदैव ध्यान रखना चाहिए कि उनके पवित्र ग्रन्थोंके अनुसार ईश्वरीय वाणी "अद्वितीय ओहार-मजदकी पवित्रता और सर्वज्ञता" है, (बुन्दाहिश अ० १-२) और उसका सम्बंध "दोनों द्रव्योंके मेलके विवरण"से है (आयत ३)। इससे यह प्रत्यक्ष है कि शास्त्रका पौराणिक विषय केवल वैज्ञानिक सत्य धर्मके सिद्धांतोंको ध्यानमे रखनेसे समझमें आ सक्ता है, जिसके अगणित मत व मसले (Principals) फिरश्तों, मनुष्यों आदिके रूपमें बांधे गए हैं। इसलिए ठीक ठीक सत्य धर्म (या

विज्ञान = Science) ही धर्मके पौराणिक एवं गुप्त कथानकोंके मुर्चा लगे तालोंको खोलनेके लिए वास्तविक कुञ्जी है।

सृष्टिके क्रमके परिणामका ध्यान रखते हुए यह बात विचारणीय है कि स्वयं क़यामत (Resurrection = मृतोत्थान) का ठीक वह ही वैज्ञानिक अर्थ है जो मोक्ष अथवा निर्वाणका है। कारण कि यह कहा गया है:—

"और उन दोनों रूहों (द्रव्यों)मेंसे विशेषतया दातार (अहूरा मज़्दा) ने मुझ (जरदुस्त) को पवित्रताकी समस्त सृष्टि बतला दी जो अब विद्यमान है, और जो अस्तित्वमें आ रही है एवं जो भविष्यमें अस्तित्वको प्राप्त होगी, ऐसे जीवनके चारित्र और ध्येयकी अपेक्षा जो अहूरामज़्दाको भक्तिमें सरबोर हो।" (यासना. १९।९.)।

विद्वानोंके लिए यह एक संकेतके रूपमें है (यासना १९, ११)। तीसवें यासनामे इस विषयके सम्बन्धमें यह विशेष प्रत्यक्षतया दर्शाया है कि इसका सम्बंध मनुष्योसे है। देखो दूसरी आयत जो निम्न प्रकार है:—

"तब तुम अपने कानोंसे सुनो और उत्तम हृदयकी दृष्टिसे चमकदार अग्निको देखो। यह धर्मके सम्बधमें प्रत्येक मनुष्य के लिए पृथक् पृथक् प्रबंध करता है। उद्देश (ध्येय) के प्राप्त करनेके बड़े प्रयत्नके पहिले तुम सब हमारी शिक्षाको समझो।"

फिर तीसरी आयतमें यह उपदेश है कि मनुष्य अपनी इच्छाको पापात्माओंके ढंगसे काममें न लावे:—

"इस प्रकार प्रारंभिक द्रव्य प्राचीनकालसे विख्यात हैं जो युगलरूपमें अपने विरुद्ध कृत्योंके साथ एक दूसरेसे सम्मिलित हैं। और तब भी प्रत्येक इनमेंसे अपने स्वाभाविक कार्य्यमें स्वतंत्र है। इन दोनोंमेंसे मन, वचन, कार्य्यकी अपेक्षासे एक उत्तम और एक निकृष्ट है। इनमें समझ कर कार्य्य करनेवालेको ध्यानपूर्वक चुनना चाहिए, न कि पाप करनेवालेके ढंग पर।"

अंततः जादस्पेरममें यह कहा है (अध्याय ५ आयत ४):—

"शास्त्रमें इस प्रकार लिखा है 'अस्तु; यह दोनों द्रव्य (आत्मा)भी पहिली सृष्टिमें एक दूसरेसे मिल गए अर्थात् दोनों गायोमर्दके शरीरमें प्रवेश कर गए। जो कुछ जीवनमें है अहूरामजदाके इस अर्थसे है कि मैं उसको जीवित रक्खूं जो कुछ मृत्युमें है वह पापके पिशाचके इस अर्थसे है कि मैं उसको पूर्णतया नष्ट कर दू। जो कुछ इस ढंग पर है, वह संसारमे अन्तिम जीवित आत्मा तक है। जिससे कि वे (दोनों द्रव्यों) अवशेष मनुष्यमे भी प्रवेश करते है। और पापात्माओंके नितांत दुष्टात्मा होनेके कारण उनका नाश पूर्णरूपेण जाना हुआ है। और इसीप्रकार उस मनुष्यका पूर्ण ध्यान, जो धर्मात्मा है, ओहारमजदकी सनातनी (नित्यताकी) आशा है'।" (से० बु० ई० भाग ५।१६८)।

अत' जुरदस्त संसारका मोक्षदाता नहीं है, सुतरां उसी प्रकार की मानसिक मूर्त्ति है जैसे विविध धर्म्मोंके मसीह अर्थात् कृष्ण, ईसू, तम्मुज आदि।

क़यामत (मृतोत्थान) में पदार्थोंके नूतनरीत्या शोधे जाने (या स्थापित होने) से केवल जीव द्रव्यकी विशुद्धतासे अर्थ है, जिसको कविकल्पनामें संसारका नूतनक्रम (प्रबंध) बांधा है। कारण कि आत्मद्रव्यको, उसमेंसे समस्त पौद्गलिक परमाणु-ओंको पुण्य एवं पापके विचारोंको त्याग करके निकाल देनेसे नवीनरीत्या विशुद्ध करना है। परमात्मापन पुण्य और पाप दोनोंसे उच्च है। और अपने ही स्वभावकी विशुद्ध ध्यान अवस्था को कहते हैं। क्योंकि पुण्य भी आवागमनरूपी कारागृहका इतना ही कारण है जितना कि पाप। दोनोंमें अंतर केवल इतना है कि पुण्यसे उत्पन्न कारावास कम दुःखदायक एवं विशेष सुखदायक प्रतीत होता है और जो पापसे उत्पन्न होता है वह विशेष दुःखदायक एवं दुस्सह होता है।

क़यामतकी अन्तिम नवीन क्रमरचनाके विषयमें यह प्रत्यक्ष रूपमे कहा गया है कि वहां किसी नितान्त ही नूतन पदार्थकी सृष्टि नहीं होगी कि जिसका कोई अस्तित्व ही पहिले न था। अर्थात् उन गुणोंके सदृश न होगी जो आत्मा और पुद्गलके मिलनेसे उत्पन्न होते हैं, जो न तो विशुद्ध आत्मा और न पुद्-गल हीमें पाए जाते हैं सुतरां जिनकी उत्पत्ति कहना चाहिए

कि अद्भुतरीत्या शून्यतासे होती है। इस कारण यह कहा गया है:—

"देखो, जब कि वह उत्पन्न कर दिया गया जो सत्तामें नहीं था, तो उसका जो पहिले था नूतनरीत्या उत्पन्न होना क्यों असम्भव है? कारण कि उस समय पृथ्वीकी आत्मासे हड्डी मांगी जायगी, जलसे रक्त, वृक्षोंसे बाल, और अग्निसे जीवन क्योंकि प्रारंभिक सृष्टिमें यह उनके सुपुर्द किए गए थे" (वुन्दाहिश, अ० ३० था० ६)।

उल्लिखित पदार्थ आत्माके कुछ गुण हैं, जो पुद्गलके मेलसे गुणहीन हो जाते हैं और जिनका कर्तव्य (स्वाभाविक कृत्य) अशुद्धताकी अवस्थामें बन्द रहता है।

यिमके वाड़ेकी कथा इस सिद्धांतको पूर्णतया प्रकट करती है। वह कथा यह है:—संसारमें एक बड़ी आफत आनेवाली थी। अहूरामज़्दाने स्वर्गके राजा यिमको एक वाड़ा बनानेकी आज्ञा दी जिसमें पशु, बोझ ढोनेवाले चौपाए; उपयोगी पशु, पुरुष एवं स्त्री सबसे उत्तम और बहुत ही सुंदर जातिके; पक्षियों, जलती हुई अग्निके ढेरों और सर्व प्रकारके बीजोंके साथ, जिनमें प्रत्येक प्रकारके युगल हों, और जो पाप द्रव्यके लक्षणोंसे पवित्र हों, आ सकें। यह वाड़ा अब पृथ्वीके नीचे छुपा हुआ है। परन्तु होशेतरके सहस्र वर्षके कालमें फिर प्रकट होगा, जब उसमेंसे मनुष्य और पशु, निकलेंगे। और फिर सृष्टिकी क्रमरचना

नूतनरीत्या करेंगी, और सुख एवं आनन्दका काल होगा,
(टीचिंग ओफ जोरोआष्टर पृष्ठ ३०, इ० रि० ए० भाग १।२०७)।

इसका अर्थ यह है कि आत्माके उच्चतम गुण अब पुद्गल की अपवित्रताके नीचे दबे पड़े हैं। और अपना स्वाभाविक कर्तव्य नहीं कर सके हैं। परन्तु जब धर्मालु मोक्षदाता उत्पन्न होगा जो अपनी आत्मासे अपवित्रताओंको दूर करेगा, तो वह सर्व उच्चतम गुण, जो इस समय कार्यहीन दबे पड़े हैं, प्रकट हो जावेंगे और जीव द्रव्य (आत्मा) की शुद्धता एक सर्वज्ञ परमात्माके रूपमें जो अपने स्वभावमें सम्पूर्ण एवं भरपूर है प्राप्त हो जावेगी। संसारकी नूतन क्रमरचनाका अन्तिम क्रम बुन्दाहिश्में निम्न प्रकार वर्णित है, (देखो अ० ३०):-

'पश्चात् अग्नि और हाला शतवैरूकी धातोंको पहाड़ियों और पहाड़ोंमें गला देंगे। और वह एक नदीके सदृश इस संसारमें रहेगा। तब सर्व मनुष्य उस पिघली हुई धातुमें से निकल कर शुद्ध होंगे।.........सोश्यानूस अपने सहकारियोंके साथ मृतकोंको आयोजित करनेका एक जशन करेगा। और उस जशनमें ह्धायूस नामक बैलको वध करेंगे। उस बैलकी चर्वी और श्वेत होमसे वह हुश तयार करते हैं। और सर्व मनुष्योंको देते हैं। और सर्व मनुष्य सदैवके लिए अमर हो जाते हैं।.........अतः वह संसारमें जीवन व्यय करते हैं, परंतु सन्तान उत्पन्न नहीं होती......

इसके उपरांत अहूरामज़्दा पापके पिशाचको दवा लेता है। वेहोमन अकोमनको, अशावहिश्त अन्दरको, शतवैरू सावरको, सपेन्द्रमद तरोमतको जो, नोन्घाज है, होर्वदाद और अमेरेदाद तैरव और ज़ैरिचको, सत्यता असत्यताको, सरोश एशमको। फिर दो पिशाच अहरमन और अर्ज़ स्वतंत्र रह जाते हैं। अहूरामज़्दा स्वयं ज़ोता सरोश और रस्पी बन कर संसारमें आता है। और कुस्तीको हाथमें लेता है। कुस्तीके मंत्रसे पराजय खा कर पापके पिशाच और अजकी शक्ति नीच हो जाती है। और जिस मार्गद्वारा पिशाच आकाशमें आया था उसी मार्गसे वह अंधकार और ज़ुलमातमें जा गिरता है। गोचिहर सर्पको इस गली हुई धातुमें जला देता है। और नर्ककी दुर्गंध और भृष्ठ उस धातुमें जल जातीं हैं। और नर्क पूर्णतया पवित्र हो जाता है। अहूरामज़्दा उस मण्डलको जिसमेंसे पापका पिशाच भग गया है उसी धातुमें डाल देता है। वह नर्ककी पृथ्वीको संसारके बढ़ानेके लिए पुनः वापस लाता है। संसारका नूतनक्रमसंचार उसकी इच्छासे पुनः प्रारम्भ हो जाता है। और संसार सदैवके लिए अमर और नित्य हो जाता है।...... यह संसार बरफ एवं ढालों से वंचित होता है। और वह पर्वत जिसकी शिखिर पर चिवर नामक पुल अवस्थित है वह भी नीचे दब जाता है। और वह सत्ताहीन हो जाता है।"

यह मनोमोहक पौराणिक वर्णन उन घटनाओंका है जो शुद्धात्माके अनुभवमें आवेंगीं। जब जब एक संसारी जीव मोक्ष प्राप्त करता है तब तब यह नाटक प्रत्येक बार होता है। उस समय सर्व प्रकारके अभिप्राय और रुझान एवं विचार और भावना जड़से उखाड़ कर वैराग्यकी घिरियामे डाल दिये जाते हैं, जहाँ वह समस्त परपदार्थ, जो आत्मा नहीं हैं सर्वके सर्व तपकी अग्निसे जल कर भस्म हो जाते हैं। वह इच्छाका छिद्र जिससे पापका पिशाच अहूरामज़्दाके प्राणियो पर दौडता हैं अब सदैवके लिए बन्द हो जाता है। और उस पर आकाङ्क्षाका गुम्बज़ निर्मित कर दिया जाता है जो परमात्मापन अर्थात् सर्वज्ञता, ईश्वरीय शक्ति, परमानन्द, पूर्णता और अमरपनेका चिन्ह एवं गारन्टी हैं। जो आत्माएं मोक्ष प्राप्त कर लेती हैं, वे वास्तवमें न तो बिवाह करतीं है और न उनका विवाह रचा जाता है। वे वस्त्र धारण नहीं करती हैं। और न भोजन करती हैं और न उनकी छाया पड़ती है।

हमारा विवेचन पारसी मतके विषयमें अब पूर्ण हो गया है और वह हमको यह कहनेका अधिकारी ठहराता है कि इस धर्मकी यथार्थ शिक्षामें कोई ऐसी बात नहीं है जिसके कारणसे उसको बुद्धिकी उस विशाल सभामें जहां धर्म्मोंकी कान्फरेन्समें विवेक (Rationalism) सभापतिका आसन ग्रहण किए हुए है, स्थान न मिल सके। मेरा यह ख्याल होता है कि पारसी धर्म्मके

उस पुराण ही वह नींव हैं जिनके ऊपर आस पासके कितनेक धर्म्मोंने अपने कथानक निर्मित किए हैं। सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलय अन्य नियमोंके साथ विविध धर्म्मोंमें एक विचित्र सदृशता रखते हैं। उनका विवेचन भी उसी प्रकार करना चाहिये जिस प्रकार हम पहिले बतला चुके हैं, न कि ऐतिहासिक भावमें। संभवतः वह दिवस विशेष दूर नहीं है जब इन समस्त धार्मिक कथानकोंका अर्थ व्यक्त हो जावेगा। इस कालान्तरमें हमारा मोजूदा ज्ञान हमको पूर्णतया यह विश्वास दिलाता है कि इनका भाव कदापि संसारकी उत्पत्तिसे, जैसा कि साधारण लोग विचार करते हैं, नहीं है। वास्तविकता यह है कि इन धार्मिक कथानकोंके रहस्य इतने गहरे और सूक्ष्म थे कि साधारण मनुष्यकी बुद्धिके बाहर थे। और कमसे कम यहूदियोंने तो इनके अध्ययनको जब तक कि वह भ्रमसे बचनेके लिए पूर्ण ध्यानसे न पढ़े जावें, पूर्णतया मना कर दिया था। मिशनाका उपदेश है कि "उत्पत्तिके कथानकको दो मनुष्योंके समुदायमें अध्ययन न करना चाहिए। और सिद्धान्तोंको एकान्तमें भी नहीं पढ़ना चाहिए उस अवस्थाको छोड़ कर जब कि स्वाध्याये च्छु बुद्धिमान है और ठीक भावको ग्रहण करनेके योग्य है। (ई० रि० ए० भाग ४ पृ० २४५)। हिन्दूओंने भी शूद्रों (रहस्योंसे अनभिज्ञ मनुष्यों) को वेदोंका पाठ करना वर्जित रक्खा है।

पारसीमतमें भी यह लिखा है कि:—

"पवित्र आत्माका समझना पूर्ण प्रबल समझ, तेज मन और तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा संभव है।" (शिकन्द-गूमानिक-विजार अध्याय ५; से॰ बु॰ ई॰ भाग २४। १४०)

पवित्र आत्माके समझनेके विषयमें पुनः इसी पुस्तकमें लिखा है (अ॰ १०। ३३-३७):—

"प्रत्येक बुद्धिमान पुरुषके लिए इतना जानना आवश्यक है कि हमें किससे भागना और बचना चाहिए और किसके साथ आशा है, और कौन हमारी रक्षा कर सक्ता है। इसकी प्राप्तिका मार्ग पवित्र आत्माके समझनेके अतिरिक्त अन्य और कुछ नहीं है कारण कि......इसकी सत्ता ही का ज्ञान लेना उपयुक्त नहीं है बल्कि इसके स्वभाव और रक्षाका समझना भी आवश्यकीय है।"

अब मैं इस व्याख्यानका अन्त करनेके पहिले पारसी मतके यथार्थ सिद्धान्तोंकी इस साधारण विवेचनाको पूर्ण करूंगा। यह व्याख्या कि इसके सिद्धान्तोंमें आवागमन सम्मिलित है, इसीकी साधारण शिक्षासे, जिसका उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूं, साफ प्रगट है। आत्माके नित्य होनेका प्रमाण भी पारसियोंके शास्त्रोंमें पाया जाता है।

दादिस्तानेदीनिक (अध्याय १७। ४) में लिखा है:—"शरीरकी आत्मा इस कारणसे कि शरीरमें हृदयके लिए आत्मिक जीवन

है, अविनाशी है। और इसी तरहसे इच्छा (Will) भी है जो इसके भीतर रहती है। उस समयमें भी जब कि इसको शरीरसे छुटकारा मिल जावे।"

शायस्त-ला-शायस्त (आ० १७। ७) के अनुसार:—

"इग्लाम करनेवालेकी आत्मा एक पिशाच बनेगी, और धर्मभ्रष्टकी आत्मा एक झपटनेवाला सर्प।"

शिकन्द-गूमानिक-विजारके चौथे अध्यायमें आत्माका आगामी भाग्य इस प्रकार वर्णित है:—

"यदि उत्पत्तिका वर्णन संसारमें मृत्युके होनेके कारणसे विशेषतया होता है तो भी यह देखा जाता है कि मृत्युमें सत्ताका पूर्णतया नाश नहीं होता है, बल्कि वह एक आवश्यक्ता है एक स्थानसे दूसरे स्थान, वा एक कर्तव्य (Duty) से दूसरे कर्तव्य पर जानेकेलिए। चूंकि समस्त प्राणियोंका जीवन चार भूतों (तत्त्वों) से बनता है इस लिए यह बात दृष्टिको प्रकट है कि इनके सांसारिक शरीर पुन: इन्हीं भूतो (तत्त्वों) में मिल जावेंगे। आत्मिक भाग जो शरीरके प्राण-प्रदायक जीवनके प्रारंभिक प्रवर्तक हैं, आत्मामें संयोजित हो जाते हैं। स्वभावकी एकताके कारण वे पृथक् नहीं होते हैं और आत्मा अपने कृत्योंकी जिम्मेवार है। इसके कर्मोंके कोषाध्यक्ष भी, जिनके सुपुर्द इसके शुभ और अशुभ कृत्य होते हैं सामनेके लिए अग्रसर होते हैं। जब कि ग्रामें

कृत्योंकी रक्षिका विशेष बलवान होती है, तो वह दोष लगानेवालेके हाथसे उसकी रक्षा अपनी विजयसे करती है। और उसको बडे आसन पर बैठने और प्रकाशोंके आपसके आनन्दके लिए अवस्थित करती है। और इसकी सत्यतामें उन्नति प्राप्त करनेके लिए सदैव सहायता प्राप्त होती रहती है। और जब अशुभ कृत्योंकी संरक्षिका विशेष प्रबल होती है तो उसकी विजयके कारण आत्मा सहायता प्रदायकोंके हाथोंसे छिन जाती है। और भूक और प्यास और अतिदुःखप्रदायक रोगोंके स्थान पर पहुंच जाती है। और वहां भी वह छोटे छोटे शुभकृत्य जो उसने संसारमें किए थे व्यर्थ नहीं जाते हैं। इस कारणसे कि भूक, प्यास और दण्ड पापकी अपेक्षासे होते हैं न कि अंधाधुंध तौर पर, कारण कि इसके दण्डका एक निरीक्षक है। और अन्ततः वह दयालु कर्त्ता जो प्राणियोंको क्षमाप्रदायक है किसी आत्माको शत्रुके हाथमें नहीं छोड़ता है। बल्कि एक दिन वह पापात्माओंको भी और धर्मात्माओंको भी पवित्र करनेवालेके हाथोंके द्वारा पापकी निवृत्ति होने पर बचा लेता है। और उनको सुखके मार्ग पर चलाता है जो नित्य है।"

(से० बु० ई० भाग २४ पृष्ठ १२६-१२८)

दादिस्तानेदीनकके ३५ वें अध्यायमें यह आवश्यकीय प्रश्न

उठाया गया है कि "अथवा यह संसार पूर्णतया मनुष्योंसे रहित हो जाता है, अर्थात् उसमें किसी प्रकारकी शारीरिक सत्ता नहीं रहती है जब कयामत होती है वा यह क्योंकर है ?" इसका उत्तर निम्न प्रकार दिया गया है:—

"उत्तर यह है कि यह संसार अपनी प्रारंभिक अवस्थासे अपने नूतन क्रमसे बनने तक न बिदून मनुष्योंके रहा है और न रहेगा। और पापकी आत्मामें जो नीच है उसके कोई उत्तेजक इच्छा नहीं उत्पन्न होती। और नूतनक्रमके समयके निकट शारीरिक सत्ता भोजन त्याग देते हैं। और बिदून आहारके जीवित रहते हैं। और इनसे जो संतान उत्पन्न होती है वह अमर होती है। कारण कि इनके शरीर पायदार और रक्तसे शून्य होते हैं। ऐसे वह मनुष्य हैं जो शरीरमय मनुष्य संसारमें हैं। जब कि ऐसे मनुष्य हैं जो निकल चुके हैं और पुनः उत्पन्न होते हैं और जीवित रहते हैं।"

इसके अतिरिक्त बाबू गंगाप्रसादकी फाउनटेन हेड आफ रिलीजनमें बहुतसी पुस्तकोंका उल्लेख* है, जो आवागमनके

---

* उल्लिखित पुस्तकोंके कुछ अंश इस प्रकार हैं:—

(१) "पुराने शरीरका छोड़ना और नवीन शरीरका धारण करना आवश्यकीय है।" (होशांग १४)

सिद्धान्तको पूर्णतया स्पष्ट प्रदर्शित करती हैं। मजूसियोंके मजदाकिया सम्प्रदायके लोग प्रत्यक्ष रूपमें आवागमनको स्वीकार करते हैं (होग साहबके एस्सेज ओन दि पार्सीज पृष्ठ १५)

इन उल्लेखोंसे प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि आत्मा मृत्युके उपरान्त स्थित रहती है और विविध गतियोंमें आवागमन करती रहती है जब तक कि वह पवित्रकर्त्ताकी सहायतासे मृत्युके प्रान्तसे बाहर निकलनेकी योग्यता प्राप्त न करले जिसकी प्राप्ति पर वह विशुद्ध और पवित्र ज्योतिके रूपमें जो पवित्र, अमर और ईश्वरीय है, पूज्य परमात्माओंके निवासस्थान पर जा पहुंचती है।

---

(२) "........शुभ कर्म्मोंका कर्त्ता...... .अपने कर्म्मोंके फल भोगने के लिए राजा, मंत्री, सरदार वा धनवानके रूपमें जन्म पाता है।... ... . .राजाओंको सुखमें जो दुःख, क्लेश, एवं रोग आ घेरते हैं वह उनके गत जीवनके कर्म्मोंका फल हैं। .. ...शेर, चीता, तेंदुआ, भेड़िया और समस्त क्रूर पशु जो अन्य पशुओंको कष्ट देते है पिछले जन्ममें.............. अधिकारी एव शासनाधीश मनुष्य थे और वह पशु जिनको मनुष्य मारते है इनके मंत्री, सेवक और कार्यकर्त्ता थे जिन्होंने अपने मालिकोंकी आज्ञा और सहायतासे अशुभ पापपूर्ण कृत्य किए थे और अक्षत एवं गरीब पशुओंको कष्ट पहुंचाया था।" (नामा-मिहाबाद ६७-६८-६९,७१)

तपस्याके विषयमें हमारे वर्तमान समयके शक्तिहीन मनुष्य सब या थोड़े बहुत इस बातके इच्छुक हैं कि उसको अनिच्छित नियत करें। और पारसी लोग भी उससे पृथक् नहीं हैं जैसा कि मि० कापडियाकी टीचिंग ओफ जोरो अस्टर (पृष्ठ ४४) नामक पुस्तकके निम्न कथनसे प्रगट हैः—

"अन्य धर्म्मोंके विपरीत वह (पारसीमत) उपवास करनेको वा भोजन बिल्कुल न करनेको एक नीचता और मूर्खताका कार्य्य ठहराता है जिससे शरीरको हानि पहुंचती है और वह क्षीण पड़ता है।"

परन्तु यह हमारे ज्ञानकी अपेक्षा नितान्त भूल है। दादिस्तानेदिनेकसे ज्ञात होता है कि पापको दूर करनेके लिए व्यक्तिगत प्रयत्न उस सीमा तक पहुँचना चाहिए जो बेचैनीका स्थान कहा गया हैः—

"... शुभ विचारों, शुभ शब्दो और शुभकृत्योंके द्वारा पापकी कमी और पुण्यकी वृद्धि वास्तवमें उस प्रयत्न और बेचैनीसे जो आत्माके धार्मिक क्रियायों पर अमल करनेका फल हैं, होती है और प्रयत्नकी कठिनाई चारित्रकी दृढ़ता और आत्माकी रक्षासे होती है जो ईमानदारको प्राप्त होती है।" (से० बु० ई० भाग १८ पृष्ठ ३४)

शारीरिक जीवन बलिदानके रूपमें प्रदान करना पड़ता है। यासना ३३ (आ० १४) में ऐसा लिखा हैः—

"अस्तु; ज़रदस्त बलिदानके रूपमें स्वयं अपने शारीरिक जीवनको देता है।" (से० बु० ई० भाग ३१ पृष्ठ २५८)

यासना १४ (आयत २) में पुनः यह आया है:—

"और तुम पर ऐ आनन्दप्रदायक अमर देवताओ ! मैं अपने शरीरका माँस भी प्रदान कर दूंगा । और उत्तमताके सर्व शुभ पदार्थोंको भी।" (से० बु० ई० भाग ३१ पृष्ठ २५३)

इन आयतोंकी जो शिक्षा है वह वही प्राचीन सिद्धान्त, शरीरिक इच्छाओं और विषयवासनाओंके निरोध करनेका है यद्यपि वास्तवमें उपवास करना ही अन्तिम ध्येय नहीं है।

"हम लोगोंमें उपवास करना यह है कि हम नेत्रोंसे, जिह्वासे, कानोंसे, हाथोंसे और पगोंसे पापोंसे उपवास करें।" (टीचिंग ओफ जोरो अष्टर पृष्ठ ४४)

मैं यह नहीं समझता कि जिह्वा और हाथोंके संबंधमें यह कहा जा सक्ता है कि वह उपवास करते हैं जब कि वह किसी निरपराधको मारने और उसका माँस निगलनेमें व्यस्त हो। यह भी प्रत्यक्ष रूपमें कहा गया है कि नूतन क्रमरचनाके समयके निकट शारीरिक सत्तायें भोजन त्याग देतीं हैं और भोजन बिदून जीवन व्यतीत करतीं हैं। (दादिस्तानेदिनक अध्याय ३२-३७ से० बु० ई० भाग १८ पृष्ठ ७७)

इति।

सातवां व्याख्यान।

ईश्वर।

आजके व्याख्यानका विषय ईश्वर अथवा ईश्वरका विचार है, जिसके कारण अत्यन्त फिसाद मनुष्योमें उत्पन्न हो गये हैं। ईश्वरके सम्बंधमें विशेष प्रचलित विचार यह है कि जीवित प्राणियोंके भाग्योंका विधाता एवं इस संसारका कर्त्ता और शासक एक सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर है, जो मनुष्योंके कर्म्मोंकी तुलना करके उनके कृत्योके अनुसार उनको फल देता है। आज हम इस विचारकी उसके विविध अपेक्षाओ और रूपोंमें जाँच करेंगे।

सर्व प्रथम प्रश्न जो ऐसे परमेश्वरके विचारके संबन्धमें उत्पन्न होता है वह प्रमाणके विषयमें है जो उस परमेश्वरकी सत्ता व गुणोंकी पुष्टिमें उपस्थित किया जावे। पदार्थोंकी प्रमाणता तीन प्रकारसे प्रमाणित होती है, अर्थात् (१) स्वयं व्यक्तिगत प्रत्यक्ष से (२) अनुमान अर्थात् बुद्धिसे, और (३) किसी विश्वास पात्रकी साक्षीसे। अब देखना यह है कि इस प्रचलित विचार की पुष्टि किस प्रमाणसे होती है। हमारा व्यक्तिगत प्रत्यक्ष तो यकीनन किसी ऐसे ईश्वरकी सत्ताको सिद्ध नहीं करता, किसी भी मनुष्यने विशुद्ध आत्माका वास्तवमें भान नहीं किया है न

देखा है और परमेश्वर विश्वस्ततः एक विशुद्ध आत्मा कहा जाता है। इसके अतिरिक्त विशुद्धात्मामें मूर्त्तिक (इन्द्रियोंसे जानने योग्य) गुण नहीं होते हैं। मनुष्योंके आंतरिक अनुभवों (Intuitions) का विवेचन करना नितान्त व्यर्थ है कारण कि कोई ऐसा देवता नहीं है जिसके भक्त उसे अनुभवगम्य न कहते हों। इसके अतिरिक्त जैसा प्रथम व्याख्यानमें ही उल्लिखित है, यदि योग्य न्याय बुद्धिके स्थान पर मनुष्योंके भ्रमपूर्ण थोथे विश्वास मान लिए जांय तो फिर सिद्धान्त और विज्ञानकी आवश्यक्ता ही क्या है? मनुष्योंके आंतरिक अनुभवोंकी पूर्ण अनर्थकता इसी बातसे प्रकट है कि मानुषिक मनकी यह भ्रमात्मक कल्पनायें सावधानतापूर्वक जाँच करने पर स्वतः अपने को धोखा देनेवाले विश्वास पाए जाते हैं, जिनके प्रवर्त्तक धार्मिक अन्ध विश्वास एवं हठाग्रह हैं।

साक्षीके सम्बंधमें भी यह प्रत्यक्ष है कि कोई मनुष्य अपने व्यक्तिगत ज्ञानसे साक्षी होनेके योग्य नहीं है। कारण कि साक्षी के लिए यह आवश्यक होगा कि उसने यथार्थमे विशुद्धात्माको देखा हो। परन्तु यह बात जैसे कि अभी देखी जा चुकी है असम्भव है। अस्तु; हमारे पास केवल एक ही योग्य साक्षी रह जाती है अर्थात् पवित्र धार्मिक ग्रन्थोंका वचन। परंतु शर्त यह है कि वह ग्रंथ जिससे किसी परमेश्वरकी सत्ताको प्रमाणित किया जावे एक सर्वज्ञ ईश्वरका कहा हुआ हो, और वह उस

ईश्वरके उपदेशको पूर्णरूपेण विदून किसी कमीवेशीके प्रकट करता हो। परन्तु उन पवित्र ग्रंथोमेंसे जिनके विषयमें विचार किया जाता है कि वे एक परमेश्वर अथवा सृष्टिकर्त्ताके अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं, एक भी ऐसा नहीं है जो किसी सर्वज्ञका वचन कहा जा सके और न हो सक्ता है। वे सब कथानकोंसे भरे हुवे हैं। और प्रत्येक अवसर पर अपनी सीमित बुद्धिकी मानुषिक रचनाको प्रमाणित करते हैं। इस बातको प्रमाणित करनेके लिए केवल एक ही साधारण प्रमाण उपयुक्त है, और वह यह है कि उनके रचयिता इस भ्रम, द्वेष एवं रक्तपातको जो उनके कथानकोंमें गढे हुए देवी देवताओंको यथार्थ ऐतिहासिक पुरुष माननेका फल हैं, देखनेसे वञ्चित रहे। एक ऐसे सर्वज्ञके सम्बधमें जो मनुष्योंको उनकी भलाईके लिए उपदेश देता है यह मानना पडेगा कि उसने इस बातको जान लिया होगा कि दार्शनिक सिद्धांतोको कथानक रहस्योंका जामा पहना कर उपस्थित करनेका फल इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सक्ता है कि मुसलमान, यहूदी, ईसाई, हिन्दू और उसके अन्य अनुगामी (भक्त) एक दूसरेसे लड़ मरें, जिससे इस संसारमें जो लूट-मार नाश और रक्तपात धर्म्म एवं ईश्वरके नामसे हुए हैं उन सबका दोषी (कर्त्ता) वह ही परमेश्वर ठहरता है। मुझे विश्वास है कि कोई ईश्वरभक्त इन सब बातोंका दोष अपने इष्ट देव पर नहीं लगाना चाहेगा।

एक सर्वज्ञ ईश्वरकी शिक्षाके यथार्थ लक्षण श्रीरत्नकरण्ड-श्रावकाचारमें निम्नप्रकार दिए हुए हैं-

(१) वह एक तीर्थंकरकी वाणी होती है जो प्रत्येक कालमें २४ होते हैं, (एक काल असंख्यात वर्षोंका होता है)।

(२) वह वादी प्रतिवादी द्वारा खण्डित नहीं हो सकी है।

(३) वह प्रत्यक्ष अनुमान व साक्षी द्वारा असत्य नहीं ठहरायी जा सकी है।

(४) वह वस्तुके स्वरूपको यथार्थ रूपमें प्रकट करती है।

(५) वह सर्व हितैषी होती है अर्थात् वह सर्व प्राणियों—मनुष्य, पशु एवं अन्य प्राणियों—के लिए हितकारी होती है। और

(६) वह आत्मा सम्बंधी सर्व भ्रमात्मक शंकाओंको नष्ट करनेमें प्रबल होती है।

दया और सत्यका धर्म (अर्थात् विज्ञान=Science) जिसको सर्वज्ञके ओठोने वर्णित किया है यथार्थ ईश्वरीय शिक्षा है। कारण कि दया—न कि वलिदान, सर्व हितकारी है। और ठीक ठीक वैज्ञानिक (Scientific) सत्यमें ही अवशेष प्रकार के उपर्युक्तोल्लिखित लक्षण पाए जाते हैं। और इस शिक्षाकी अखण्ड सत्यताकी पूर्ण गॉरन्टी गुरुकी सर्वज्ञता है, जो अपने विस्तारमें सर्व विषयोंको सीमान्तरित करती है। कथानकोंसे भरपूर ग्रंथोंमें इन गुणोंकी खोज करना व्यर्थ है। इनका जैन-

धर्मके वैज्ञानिक सिद्धान्तोंमें मिलना विशेषतया बुद्धिगम्य है। यदि विविध ईश्वरवादी धर्मोंके भक्त अपने अपने ईश्वरके गुणों, कर्तव्यों, सम्बन्धों एवं कृत्यों पर ध्यान देंगे तो वे अति शीघ्र ही यह निश्चय कर लेंगे कि वह ईश्वर, जो ईसाका पिता कहलाता है इस्लामका खुदा या हिन्दुओंका ईश्वर नहीं हो सक्ता है जो कि इस बातको नहीं मानते कि ईश्वरके कोई पुत्र है। न अरबोंका अल्लाह जो इस बातका दावा करते हैं कि उनको ईश्वरीय वाणी प्राप्त हुई थी, वह ईश्वर हो सक्ता है जिसके अनुयायियोंको अरब और फलस्तीनमें ईश्वरीय वाणी होनेसे सर्वथा इन्कार है। ऐसी दशामे ईश्वरीय वाणीका उल्लेख व्यर्थ है। इसके स्थानमें विशेष हितकर यह होगा कि हम विविध पवित्र ग्रंथों और पुस्तकोंका अध्ययन उन नियमों पर जो इन व्याख्यानोंमें स्थापित हो चुके हैं, करें, जिससे उनका यथार्थ भाव ज्ञात हो। वास्तवमें जो हम अब तक कह चुके हैं वह इस व्याख्याको असत्य सिद्ध करनेके लिए उपयुक्त है कि धार्मिक ग्रंथोंमें सृष्टिकर्त्ता की मान्यता सिखलाई गई है। विचार और विवरण दोनोंमें कथानक विद्याके रूपमें ये ग्रन्थ एक बातमें भी इतिहास नहीं माने जा सक्ते हैं।

अब केवल अनुमान प्रमाण अवशेष रहा कि जिससे एक सर्वज्ञ सृष्टिकर्त्ता एवं शासनकर्त्ता परमेश्वरका अस्तित्व प्रमाणित किया जावे। इस विषयमें मैं आपके समक्ष मि० जोज़ेफ मैककेब

साहबकी सम्मति, जो एक दीर्घ समय तक ईसाई धर्मके पादरी रहे हैं, उपस्थित करता हूं। वह फर्माते हैं:—

"हमारे समयके स्त्री पुरुषोंको पर्वतों, चन्द्रमाओं और तारागणोंके परमेश्वरसे विशेष प्रेम नहीं है। एक कठोर हृदय मस्तिष्क (चेतना) जो परमाणुओं सितारों एवं कुसुमोंको अलंकृत करनेमें व्यस्त है, और मनुष्योंको उनके निर्बल उद्योगों पर छोड़ देता है, उस प्रकारका ईश्वर नहीं है जैसा कि ईसाई धर्मने उनको बतलाया था। वह परमेश्वर कहां है जो हमारे सिरके बालोंको गिनता है और पत्तिओंकी मृत्युका ध्यान रखता है और जो मनुष्योंसे अपनी समस्त सृष्टिकी अपेक्षा विशेष स्नेह करता है। योरोपीय महाभारतने यह विशेष जटिल प्रश्न धर्मके संबंधमें उठाया है। पादरी कैम्पबेल साहबने जिन्होंने मनुष्योंकी शंकाओंकी उमड़ती हुई लहरके रोकनेके लिए सराहनीय प्रयत्न किए हैं, कहा है कि—इस महाभारतने यथार्थमें कोई नवीन प्रश्न उपस्थित नहीं किया। वे कहते हैं कि उनकी समझमें नहीं आता कि धार्मिक मनुष्य क्यों एकदम घबराते हैं। वास्तवमें कोई नवीन प्रश्न इस महाभारतसे उत्पन्न नहीं हुआ है। जो कुछ उसने किया वह यह है कि उन प्रश्नोंका जो मनुष्योंके हृदयोंमें दीर्घकालान्तरसे उठते रहते हैं जोर दे दिया है अर्थात् बेहद प्रबलताके साथ उपस्थित कर दिए हैं। जैसा

मैंने कहा है कि साधारण पुरुष वा स्त्रीको पर्वतों एवं तारों आदिके परमेश्वरसे कम प्रेम है। जिस परमेश्वरकी मनुष्यको आवश्यक्ता है वह सहायताप्रदायक परमेश्वर है। हम जिस बातकी प्रतीक्षा करते हैं वह यह है कि इस विशाल समभको ठोकर खाते हुए की सहायता करते और आहत पगोवाले यात्रीकी रक्षा करते देखें। हम इस परमोत्कृष्ट हितेच्छामें जो कि जंगली कौओंको भोजन देती है यह बात देखना चाहते हैं कि वह मानुषिक क्रममें कुछ उत्तमताके लक्षण उत्पन्न करे। अर्थात् संसारके अश्रुपात एवं रक्तके बहावको रोकनेमें हमारी लड़खड़ाती हुई बुद्धिको सहायता करे। निरपराधोंको दुःख और भूखप्याससे रक्षा करे और स्त्रियो एवं बालकोंको समर-उन्मत्त असभ्यसे बचावे। अथवा यह और भी अच्छा हो जो असभ्यका जन्म ही न होने दे अथवा उस असभ्यताको न बढ़ने दे। ठीक यही प्रश्न ईश्वरभक्तकी परेशानीके कारण सदैवसे रहे हैं। वह हमको मानुषिक क्रममें परमेश्वरकी सहायताका प्रत्यक्ष कोई चिन्ह नहीं दिखा सक्ता है। वह कभी कभी ऐसी कहानियोंको जैसे मोन्स (Mons) के स्थान पर फरिश्तोंका दिखाई देना या लूर्दज (Lourdes) के अद्भुत करिश्मे जो खोज करनेपर झूठे पाए जाते हैं सुन कर आनन्दित होता है। परंतु सामान्यतया वह इससे बेचैन रहता है कि मानुषिक क्रममें

परमेश्वरका सहायक हाथ दृष्टिगोचर नहीं होता है। वह धीरे धीरे बुड़बुड़ाता है कि परमेश्वर गुप्तमें और हृदयके भीतरसे अत्यन्त अदृश्यतामें कार्य्य करता है, कि उसने मनुष्योंको स्वतंत्रता प्रदान की है जिसका उसके लिए लिहाज करना आवश्यक है और यह कि स्यात् सर्वोत्तम कृपा यह है कि—वह मनुष्यको इस बातका अवसर प्रदान करता है कि वह अपनी स्वयं सहायता करके अपनेको बलवान बना लेवे। इन सर्व निर्बल दावोंके पीछे एक निराशाजनक बोध है कि उस परमेश्वरका पता, जिसको वह इतने स्पष्ट रूपसे सूर्य्यास्त, गुलाबों एव सुन्दर पत्तके बनानेमें देखता है, मनुष्यके जीवनमें, कहीं भी यथार्थ दृष्टिमें नहीं चलता है। क्या उपस्थित मनुष्यजातिके समयमें कोई भी बात ऐसी (पृथ्वीके किसी भाग पर) हुई है जिसमें परमेश्वरका संबंध पाया जावे? क्या मनुष्यके कृत्योंकी विशाल सूचीमें एक घटना भी ऐसी है जिसमें परमेश्वरका हाथ पाया जावे? वह घटना कहाँ है जिसके प्राकृतिक कारणोंका हम विश्वसनीय पता नहीं लगा सके हैं? वह यह शंका है जिसको समरने पुख़ता कर दिया है। यह बात नहीं है कि मनुष्यको सहायताकी आवश्यक्ता न थी। हमारी जातिका घटनाक्रम कैसा हृदयदाही है!—सभ्यताकी ड्योढ़ी तक पहुंचनेके पहिले प्रारम्भिक

मनुष्योंको दारुण गतियोंमें सैकड़ों और हजारों वर्ष टकराते व्यतीत हुए! उस पर भी यह सभ्यता ऐसी अपूर्ण थी; और इसमें इतने पाशविक विचार घर किए हुए थे कि लोगोंको दुःख फिर भी भोगना पड़ता था। आज भी हम समर, रोग, दरिद्रता, अपराधों, हृदयसंकीर्णता एवं संकुचित स्वभावोंको, जो हमारे जीवनको अंधकारमय बनाते हैं, असहाय्य अवस्थामें देखते हैं। और ऐसा ज्ञात होता है कि परमेश्वरको इस सम्पूर्ण समयमें सूर्य्यास्तको सुनहरा करने और मोरके पंखोंमें बूटे बनानेसे अवकाश नहीं मिला। ईश्वरभक्त कहते हैं कि परमेश्वरने पापोंके कारण समरको रवा रखा (होने दिया) प्रयोजनसे यहां कुछ अर्थ नहीं है। ऐसा रवारखना फिर भी पाशविक बदला लेना है। आप उस पिताको क्या कहेंगे जो पास खड़े होते हुए अपनी पुत्रीके शीलको बिगड़ते देखे, और जो उसकी रक्षा करनेकी पूर्ण योग्यता रखता हो? और क्या आप संतोषित हो जांयगे यदि वह उस बातको प्रमाणित कर दे कि उसकी पुत्रीने किसी प्रकार उसकी अवहेलना की थी?" (दि बैंक्रप्सी ओफ रिलीजन पृ० ३०-३४)।

मेरे विचारमें मैककेब साहबने एक दयालु परमेश्वरके शासनकर्त्ता होनेके खंडनमें कोई बात नहीं छोड़ी है। अतः अब मैं परमेश्वरके सृष्टिकर्त्ता होनेके सिद्धांतकी खोज प्रारंभ करता हूं।

अब वह प्रमाण, जिसके द्वारा ईश्वरके भक्त सृष्टिकर्त्ताके सिद्धान्तकी पुष्टि करना चाहते हैं, एक प्रकारकी संसार और घड़ीकी सदृशता है अर्थात् जैसे विदून घड़ीसाजके घड़ी नहीं बन सकती है, उसी प्रकार विदून किसी सृष्टिकर्त्ताके संसार नहीं बन सक्ता है। अस्तुः जो कुछ न्याय सृष्टिकर्त्ताकी पुष्टिमें है, वह केवल इसीप्रकार है । और यह भी विशेष निर्बल प्रकारका न्याय है। कारण कि प्रत्येक न्यायवेत्ता इस बातको जानता है, कि उदाहरण (सदृशता) कोई यथार्थ प्रमाण नहीं है । हम अपने द्वितीय व्याख्यानमें देख चुके हैं कि व्याप्ति (एक यथार्थ न्याय संबंध) का होना न्यायके परिणामकी पुष्टिके लिए आवश्यक है। यह वास्तवमें सार्वभौम सत्यसिद्धान्त नहीं है कि प्रत्येक पदार्थका कोई रचयिता (उत्पादक) होता है। आप उस भोजन एवं जलकी बावत क्या कहेंगे जो मनुष्यों और पशुओं के पाचनालयमें जाकर मल मूत्र बन जाते हैं? क्या यह कार्य्य किसी देवी देवताका है? शरीरमें अन्य प्रकारके मल भी होते हैं। मैं यह कभी नहीं मानूंगा कि कोई देवता मनुष्य और पशुके पाचनालय और आंतोंमें घुस जाता है और वहां स्वयं मलको बनाने, एकत्र, करने और व्यय करनेमे संलग्न होता है। अब यदि; यह घृणित कृत्य किसी देवी देवताका नहीं है, सुतरां विविध प्रकारके अंशो और पदार्थोंके एक दूसरेके साथ मिलने और अपना अपना प्रभाव प्रकट करनेका नतीजा है.

अर्थात् यदि हाजिमा केवल शारीरिक और रासायनिक कृत्यका नतीजा है जो कि पाचनालय आंतों आदिमें जारी है तो यह कहना नितान्त असत्य है कि नियमानुसार पदार्थोंका कोई रचयिता वा घड़नेवाला होना चाहिए। यह विवाद स्वयं इस संसारके सृष्टिकर्त्ताके संबंधमें पूर्वापरविरुद्ध है कारण कि इस नियम पर कि प्रत्येक पदार्थका कोई रचयिता अवश्य होना चाहिये इस संसारके सृष्टिकर्त्ताका भी कोई रचयिता अवश्यम्भावी है। और फिर उस रचयिताके रचयिताका भी एक रचयिता और फिर इसीप्रकार आगे भी। इस पेचसे छुटकारा उसी समय मिल सक्ता है जब हम यह समझें कि इस संसारका सृष्टिकर्त्ता किसी अन्य कर्त्ता पर अवलम्बित नहीं है अर्थात् स्वतंत्र है। परन्तु यदि प्रकृति एक स्वतंत्र सृष्टिकर्त्ताको उत्पन्न कर सक्ती है तो यह कोई अचम्भेकी बात नहीं है कि वह एक ऐसे संसारको उत्पन्न कर सके जो अपने अस्तित्वमें हर प्रकारसे पूर्ण हो और उन्नति शील होने और भविष्यमें जारी रहनेकी योग्यता रखता हो। इसका केवल यही अर्थ है कि यदि सृष्टिकर्त्ताके विषयमें हम यह विचार कर सक्ते हैं कि वह किसीका बनाया हुआ नहीं है तो यह माननेमें कि यह संसार नित्य और अविनाशी है किसी प्रकारकी मानसिक एवं न्यायके सिद्धांतोंकी अवहेलना नहीं होती है। यह प्रमाणित हो चुका है कि आत्मा और पुद्गलके छुद्रसे छुद्र अंश, चाहे उन्हें परमाणु कहें अथवा

अन्य किसी नामसे कहें विभागोंसे रहित हैं एवं इसलिए अवि- नाशी हैं। न वह किसी प्रकारसे घढे जा सक्ते हैं कारण कि उनमें कोई अंश नहीं हैं जिनके एकत्र होनेसे उनका बनना या बनाना संभव हो। विशुद्धात्माकी बात, जिसको अशुद्ध अव- स्थामें संसारी आत्मा कहते हैं [विशुद्धात्मा (Spirit) आत्मा (Soul) और शरीर (Body) का भेद पाल रसूलने १-थेसे लोनियन अध्याय ५ आयत २३ में दिखलाया है] और भी विशे- षरूपमें अद्भुत है, कारण कि उसका बनानेवाला भी एक विशुद्धात्मा है। विशुद्धात्मा एक पत्तमें नित्य और सर्व अन्य पक्षोंमे शून्यतासे उत्पन्न किया गया पदार्थ क्योंकर हो सक्ता है? मेरे विचारमें यह सैद्धान्तिक मूर्खताकी सीमा है।

तो फिर मनुष्योंके पुण्य व पाप कृत्योंके शुभ अशुभ फल कहांसे मिलते हैं? हाँ! वास्तवमें कहांसे मिल सक्ते हैं यदि उसी द्वारा नहीं, जो उस मनुष्यको जो एक वृक्षकी शाखा पर बैठ कर उसकी जड़ काटता है दण्ड देनेके लिए जिम्मेवार है। यदि मैं अपना हाथ अग्नि पर रक्खूं तो मैं अपनी मूढ़ताका ठीक ठीक नतीजा पा सक्ता हूं, इसके पहिले कि कोई आकाशी जज उसको ढूंढ निकाले। प्रकृति सर्व शक्तिमान है। उसको अपने अभियुक्तोंके लिए न जजकी, न पुलिसकी, और न कारा- गारो हीकी आवश्यक्ता है। उसके दण्ड तत्काल सही, और कभी न बदलनेवाले होते हैं। यदि हमको यह विदित हो जावे

कि उनकी कहाँ खोज करें तो हम उसके निर्णयोंमें कभी गलती नहीं पावेंगे। वह मनुष्य जो क्रूर और स्वार्थी है, जो अधर्म रीतिसे जीवन व्यतीत करता है, जो निर्दयतासे प्राणियोके हृदयोंको पीड़ा पहुंचाता है; इस बातसे अज्ञात है कि भाग्यका विधाता इसके सर्व पापाचरणोंको कर्मके स्वयं लिखे जानेवाले खातेमें जिसकी बाकी सदैव अपने आप निकलती रहती है; लिखा करता है। उसको इसका विचार नहीं है कि उसकी पवित्र मानुषिक भावनायें धीरे धीरे दुष्ट आचरणों और दुर्गुणोंमें बदलती जाती हैं। और उन दारुण परिवर्तनोंका उसे तनिक ध्यान नहीं है जो उसके अभ्यंतर कार्माण शरीरके निरूपणमें गठित हो रहे हैं, जो इस बाह्य चोलेके छूटने पर उसको दुर्गतियों और दुःखदायी स्थानों पर खैंच ले जांयगे। वह मनुष्य जो पवित्र हृदय है और अपनी इच्छाका निरोध करता है, इसी प्रकार अपने पुण्य कृत्योंसे प्रभावित होता है। वह उन शक्तियोंको उत्पन्न करता है जो उसको भविष्य जन्ममें आनन्द एवं सुखके स्थानमें पहुंचायेगीं। और अनन्तः पुद्गलके आत्मासे सम्पूर्णतया विलग हो जाने पर मोक्ष प्राप्त करायेंगीं। इस सर्व कार्य्य क्रमके लिए किसी जज अथवा मजिस्ट्रेटकी आवश्यका नहीं है। विविध द्रव्योंके विविध गुण जीवोंको उनके पुण्य पापका फल प्रदान करनेके लिए पूर्णतया उपयुक्त हैं।

यदि ईश्वरभक्त जरा धीरज धरके अपने मनसे यह प्रश्न पूछे

कि उसके परमेश्वरने इस संसारको क्योंकर उत्पन्न किया ? अथवा वह दंड अथवा पुरस्कार (सुख) क्योंकर देता है ? तो वह अपने दावेकी निर्बलताको स्वयं देख लेगा। कारण कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर एक विशुद्धात्मा है जिसके अंशोंके एकत्र करने और पदार्थोंके गढ़ने वा मनुष्योंकी दशाओंको रचनेकेलिए हाथ नहीं हैं। उसके अतिरिक्त परमात्मावस्था विशुद्धताकी सम्पूर्णता है। और उसके सम्बन्धमें यह विचार नहीं किया जा सक्ता है कि वह मनुष्यो और पशुओंके शरीरोंको ऐसे निःकृष्ट स्थानों पर जैसे कि कोई कोई गर्भाशय प्रत्यक्षतया होते हैं अपने हाथसे बनानेमें प्रसन्न होगा परन्तु अभी एक और गुंजायश धर्म ग्रंथोके शब्दार्थ लगानेवालेके लिए अवशेष रह जाती है। और वह स्वयं आत्माके कृत्योंका उदाहरण है। अब मैं उसको यह कहते हुए खयाल करता हूं कि जिस प्रकार आत्मा अपने पौद्गलिक शरीरके अवयवोको कार्य्यरत करती है यद्यपि उसके हाथ पाँव नहीं होते, उसी प्रकार तुमको सृष्टिकर्त्ताके कृत्य समझना चाहिए। परन्तु इस स्थान पर भी एक आवश्यक बातकी उपेक्षा कर दी गई है। और वह यह है कि उदाहरण कोई प्रमाण नहीं है। तिस पर भी यह उदाहरण ही स्वयं ठीक नहीं है। कारण कि यह एक अत्यन्त उपयुक्त अन्तरकी उपेक्षा करता है जो परमेश्वर और एक संसारी आत्मामें पाया जाता है। वह अंतर यह है कि एक संसारी जीवमें आत्मा दो अभ्यंतर सूक्ष्म

शरीरोंके द्वारा बाह्य शरीरसे क्रिया (हर्कत) की तालियों एवं पेचों से कसा हुआ है, जब कि ईश्वर पूर्णरूपेण मुक्त है, अर्थात् सर्व प्रकारके बंधों और जकड़नेवाले तारों और प्रत्येक प्रकारके सूक्ष्म एवं स्थूल शरीरोंसे विलग है। संसारी आत्माके इस प्रकार नाडियोंसे एवं उनके द्वारा हाथपाँवोंके गठनसे बंधा होनेके कारण इसकी हर प्रकारकी क्रियायें एक दम ही शारीरिक अवयवोंके हलन चलनकी कारण होतीं हैं। परन्तु एक विशुद्धात्मा जैसा कि सृष्टिकर्त्ता समझा जाता है, ऐसे अथवा किसी अन्य प्रकारसे किसी पदार्थसे बन्धनयुक्त नहीं है, और इस कारणवश किसीके हस्तपगोंको क्रियामय नहीं कर सकता है। इसके अतिरिक्त यदि इसको अल्पसमयके लिए विवादार्थ मान भी लिया जावे कि सृष्टिकर्त्ता सृष्टिसे एक संसारी आत्माके सदृश बन्धा हुआ है, तो भी हाथोंके न होनेके कारण उसकी क्रियायें सदैव फलहीन होगीं कारण कि हाथोंके न होनेसे न वह पदार्थोंको पकड़ सकेगा, न उनको मिला सकेगा और न किसी पदार्थको घड़ ही सकेगा, जिससे कि वह कुछ भी नहीं बना पायगा।

हम देख चुके हैं कि परमेश्वरकी विशुद्धताका गुण सृष्टि उत्पादक गुणसे जो उसमें माना जाता है नितांत विरोधी है। परन्तु क्या उसका पूर्ण आनन्द उसके रचयिता और कर्त्ता रूपमें सदैव संलग्न रहनेके गुणसे कुछ कम विरोधी है? हम सब जानते हैं कि पूर्ण आनन्द वैराग्यमें सम्पूर्णपना प्राप्त करने

से ही सम्भव है। अस्तु; वह मनुष्य जो कि कालके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक एक क्षण भी अपने लिए नहीं पाता आनन्दसे पूर्ण नहीं माना जा सक्ता है।

मेरे पास इस व्याख्यानमें इस विषय पर अब विशेष वक्तव्य करनेका अवकाश नहीं है। परन्तु बस एक ही प्रमाण इस प्रश्न को तय करनेके लिए उपयुक्त होगा यदि कोई मनुष्य उस पर शांतिके साथ ध्यान देगा। और वह यह है कि लक्षणों और गुणोंकी अपेक्षा एक आत्मा दूसरी आत्माके समान है। अस्तु; यदि सृष्टि रचना एक आत्माका कर्तव्य हो तो वह आत्माओंका भी कर्तव्य होगा। इस अवस्थामें प्रत्येक आत्मा सृष्टिकर्त्ता होगी जो किसी रूपमें ईश्वरभक्तका दावा नहीं है।

यह समस्त और इनसे भी बड़ी कठिनाइयां सृष्टिकर्त्ता ईश्वरके भक्तोने अपने लिए शास्त्रोंके शब्दार्थ लगानेसे, जो उन ग्रथोंमें कभी लिखे नहीं गए थे, उत्पन्न कर ली हैं।

मैं यहां पर विविध ईश्वरवादी ग्रन्थोंके वाक्योंद्वारा सृष्टि-कर्त्ता ईश्वरके गुणोंको प्रकट करूंगा:-

(१) "मैं.......बदीको उत्पन्न करता हूं।"

(यशैय्या ४५। ७ इन्जील)।

(२) "सो मैंने उन्हें वह नियम दिये जो भले न थे। और वह परिणाम बताए जिनसे वह जीते न रहें।"

(इजेकियल २०। २५ इंजील)।

(३) "तब यहोवाह पृथ्वी पर मनुष्यको उत्पन्न करनेके कारण पछताया, और अत्यन्त खेदित हुआ।"

(इंजील, पैदायशकी किताब ६। ६)।

(४) "मैं खुदावन्द तेरा खुदा ईर्ष्यालु खुदा हूं जो पुरखोंके दुष्कृत्योंका बदला उनकी सन्तानसे तीसरी एवं चौथी पीढ़ी तक उनसे जो मुझसे द्वेष करते हैं, लेता हूं।"

(इन्जील, इसजिस्ता ५।६)।

(५) "क्या कोई आफत सिर पर आवे, और ईश्वरने उसे न भेजा हो।" (इन्जील, अमुस ३।६)।

(६) "उसने आफतके फरिश्तोंको भेज कर उन पर अपना अति घोर क्रोध, और कोप और कष्ट वर्षा डाला। उसने अपने क्रोधके लिए एक मार्ग निकाला। उनकी जानको मृत्युसे नहीं बचाया बल्कि उनकी जानें मरीके सिपुर्द कीं।।" (इन्जील, जबर २८। ४९—५०)।

उपर्युल्लिखित आयतें मुकद्दस इन्जीलकी हैं। कुरान शरीफमें भी ऐसा कहा है:-

(१) "जो कुछ, कष्ट तुम पर पड़ता है वह खुदाने भेजा है।" (बाब ४२)।

(२) हमने दोज़ख (नर्क) के लिए बहुतसे जिन्नात और मनुष्योंको उत्पन्न किया है।" (आयत १८० बाब ४५)।

(३) "वह मनुष्य जिससे खुदा ग़ल्ती करायेगा कोई रह-

वरी (मार्ग) न पायेगा।" (आयत ३३ बाब १३)।

(४) "जिस किसीको खुदा चाहता है पथभ्रष्ट करता है, और जिस किसीको वह चाहता है उसकी रहबरी करता है।" (आ० ९५ बाब १६)।

(५) "वह बात जो हमने कही है पूरी की जावेगी कि मैंने कहा कि वास्तवमें दोज़खको जिन्नात और इन्सानोंसे बिल्कुल भर दूंगा।" (सूरासिज्दा)।

हिन्दुओंके शास्त्रोंमें भी यह लिखा है:-

"वह उन मनुष्योंसे शुभ कृत्य कराता है जिनको वह संसार से ऊपर ले जाना चाहता है और उनसे अशुभकृत्य कराता है जिनको वह संसारसे नीचे पटकना चाहता है।"

(कौष० उपनिषद ३।८; सि० सि० फि० पृष्ठ २१२)।

हिन्दू पुराण अपने ईश्वर पर छलका टीका भी लगाते हैं, जैसे समुद्रके मथने पर उसका एक सुंदर स्त्रीके रूपमे प्रकट होना जब कि उसने असुरोंको छल कर अमृत पीनेसे रोका ही नहीं जिसके वे देवताओंके कौलके अनुसार अधिकारी थे बल्कि राहुका शीश भी काट डाला, जिसने छलको जान कर एक बूंद अमृतका किसी तरहसे प्राप्त कर लिया था।

इस प्रकारके लक्षण ईश्वरके उन शास्त्रोंमें जिनका उल्लेख किया गया है पाए जाते हैं। मुझे नहीं मालूम कि आपने हक्सली साहबके ग्रन्थ पढ़े वा नहीं, परन्तु उनमेसे एकमें उनने हमारे

विषयके सम्बंधमें कुछ उपयोगी शब्द लिखे हैं। वह लिखते हैं (सायंस ऐंड हीब्रू ट्रेडीशन पृष्ठ २५८):-

"मेरी सम्मतिमें उन सज्जनोंकी, जिन पर ईश्वरीय गुण भूषित बतलाए जाते हैं, संख्या नहीं बल्कि गुण है, जो विचारने योग्य हैं। यदि परमेश्वरीय शक्तिमें साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा कोई विशेष उच्च नैतिक गुण नहीं है; यदि ईश्वरीय बुद्धि इस सीमाकी, हीन समझी गई है कि वह स्वयं अपने कृत्योंके परिणामोंको नहीं सोच सक्ती है; यदि सृष्टिकर्त्ता अपनी ही अनंत शक्तिसे उत्पन्न किए प्राणियोंसे सख्त क्रोधित हो सक्ता है, और अपने उन्मत्त कोपमें निरपराधोंका अपराधियोंके साथ नाश कर देता है; अथवा वह स्वयं अपने आपको किसी पूर्वीय वा पाश्चिमात्य अन्यायी राजाके सदृश भेंट वा भद्दी खुशामदसे प्रसन्न होने देता है; संक्षेपतः यदि वह क्षणिक मनुष्योंसे केवल शक्तिमें प्रबल है और नैतिक दृष्टिसे उत्तम नही है, तब विश्वस्ततः हमारे लिए आवश्यक है कि उनके प्रमाणपत्रों एवं चिट्ठियोंको ज़रा ध्यानसे देखें, और उनके अस्तित्वकी ठीक ठीक साक्षी के अतिरिक्त और किसी प्रकारकी साक्षीको न मानें।"

मैं नहीं समझता कि अब इस विषयके सम्बंधमें विशेष कहने सुननेकी आवश्यक्ता है। यह प्रत्यक्ष प्रकट है कि इस अवसर पर भी भ्रमकी जड़ शास्त्रोंका असत्य अर्थ ही है, जो उपर्यु-

कोलिखित सबके सब बिदून किसीको छोड़के कथानकरूपमें लिखे हुए हैं। मैं ईश्वरीय विषयका अर्थ भी जरा देरमें बताऊंगा, परन्तु मैं चाहता हूं कि आप इस बातको समझ लें कि [illegible] कोई ऐसा पदार्थ नहीं हैं जिसको कोई व्यक्ति हमारे बाहर से दे सके। इन्द्रियनिरोधके द्वारा इच्छाओंका विध्वंस करना ही निर्वाण प्राप्तिका कारण है न कि किसी दूसरेकी कृपा व अनुग्रह। पोलुस रसूलकी शिक्षा है:—

"आत्मा स्वयं हमारी आत्माके साथ मिल कर साक्षी देता है कि हम परमेश्वरके पुत्र हैं। और यदि पुत्र हैं तो उत्तराधिकारी भी हैं। अर्थात् परमेश्वरके उत्तराधिकारी एवं अधिकारमें मसीहके शरीक, बशर्ते कि हम उसके साथ दुःख उठायें। जिससे कि उसके साथ जलाल (ईश्वरीय) पद भी पायें। (रोमियो ८। १६-१७)।

पुनः २-टिमोथीके २रे अध्यायकी ११—१२ आयतोंमें वह लिखता है:—

"सत्य बात यह है-जब हम उसके साथ मरेंगे तो उसके साथ जीवित भी होंगे। और यदि दुःख सहेंगे तो उसके साथ राज्यभोग भी करेंगे।"

२—करन्थिओ अध्याय ४ आयत १० में वह लिखता है:—

"हम प्रत्येक समय अपने शरीरमें मानों ईसूकी मृत्यु लिए फिरते हैं जिससे कि ईसूका जीवन भी हमारे शरीरमें प्रकट हो।"

यहां पर भाव अभ्यंतर मसीहकी कृपासे है न किसी सिफारिश करनेवाले बाह्य दरबारीकी कृपासे, क्योंकि कुरान शरीफमें मुहम्मद साहबने खूब कहा है:—

"उस दिवसका भय कर, जिस दिन एक आत्मा दूसरी आत्माकी बाकी नहीं चुकायगी। और न उनकी कोई सिफारिश सुनी जायगी, न कोई मुक्ति-मूल्य लिया जायगा। और न उनकी सहायता की जावेगी।"(—सूरा बक़र)

"कोई आत्मा अपने आपके अतिरिक्त अन्यके लिए पुण्य व पाप नहीं प्राप्त करेगी। और न अपराधसे लदी हुई एक आत्मा दूसरीका बोझ उठायगी।" (सूराअनाम)।

इञ्जीलके नूतन अहदनामेमें भी ईसूने ऐसा कहा है:—

(१) "यदि तुम मुझसे प्रेम रखते हो तो मेरी आज्ञाओं पर अमल करोगे।" (यहुन्ना १४। १५)।

(२) 'जब तुम मेरे कहने पर अमल नहीं करते तो क्यों मुझे प्रभू! प्रभू! कहते हो।" (लुका ६।६)।

(३) "और जो अपनी सलीब उठा कर मेरे पीछे नहीं चलता वह मेरे योग्य नहीं है।" (मत्ती १०।३८)।

(४) "और मैं अपनी मान्यता नहीं चाहता।" (यहुन्ना ८। ५०)।

(५) 'यदि तुम पश्चात्ताप न करोगे तो सब इसी तरह नष्ट होंगे।" (लुका १३। ३)।

(६)"धन्य वह हैं जो ईश्वरकी वाणी सुनते और उस पर अमल करते हैं।" (लुका ११।२८)।

और हिन्दू धर्मकी तो सदैव यह शिक्षा रही है कि निर्वाण ज्ञान और चारित्र द्वारा प्राप्त होता है, न कि किसी अन्यकी कृपा वा अनुग्रहसे। जहां कहीं तुम इस सम्बंधमें शास्त्रोंमें अनुग्रहका उल्लेख पाओगे वहां तुमको उसका इशारा स्वयं आत्माके अभ्यंतर परमात्मापनकी ओर मिलेगा। यद्यपि शब्दोंके वास्तिविक अर्थका गुप्त अलङ्कार एवं कथानकों द्वारा अप्रगट होना विशेष सम्भव होगा।

यथार्थता यह है कि सर्वज्ञता, अमरत्व, और परमानन्द आत्मा हीके स्वाभाविक गुण हैं। और उनका बाहसे प्राप्त होना असम्भव है। आत्माकी अशुद्धताको दूर करके उनको अपने भीतर हीसे निकालना पडता है। उनका किसी अन्यको मूल्य देकर वा किसी अन्य मार्ग द्वारा प्राप्त करना-बुद्धिगम्य नहीं है। वह बंधन भी जो हमारे स्वाभाविक गुणोंकी प्राप्तिमें बाधक होते हैं हमारे स्वयं प्रयत्नोंके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार नष्ट नहीं हो सक्ते हैं, कारण कि वे पूर्णतया इच्छा और कषायों दोनोंसे रहित होनेसे नाशको प्राप्त होते हैं।

मैं ख्याल करता हूं कि यह उपयुक्त होगा कि मैं इस विषय में यह प्रकट कर दूं कि दो प्रकारकी आत्मायें संसारमें पाई जाती हैं:—

(१) वह जो कभी न कभी मोक्ष लाभ अवश्य करेंगी; जिनको 'भव्य' कहते हैं। और

(२) वह जो कभी मोक्षलाभ नहीं कर सकेंगी; जिनको 'अभव्य' कहते हैं।

अभव्य और सब बातोंमें भव्यात्माके समान ही हैं। परन्तु हतभाग्यतावश उनके कर्म ऐसे बुरे हैं जो उनको कभी भी आत्म-ज्ञानका भान नहीं होने देंगे। इस प्रकारको दो तरहको आत्मायें होतीं हैं। एक वह जिनको यथार्थ ज्ञान सदैव बुरा मालूम होगा, और इसकारण वे उसकी ओर कभी भी लक्ष्य नहीं देंगीं। और दूसरी वह जिनको यथार्थ ज्ञानसे अरुचि तो नहीं होगी परन्तु उनको कभी भी उसके प्राप्त करनेका अवसर उपलब्ध नहीं होगा। यह अभव्य आत्माओंके सम्बधमें है जो कहा गया है कि:-

"हमने दोज़खके लिए अनन्त जिन्नात और मनुष्योंको उत्पन्न किया है।" (अल्कुरान बाब १६ आ० १८०)।

उनको आत्माका प्रकाश कभी प्राप्त नहीं होगा। और इस कारणवश संसार (आवागमनके चक्र) से निकलनेका मार्ग उन्हें नहीं मिलेगा। तिसपर भी कोई वाह्य ईश्वर वा सृष्टिकर्त्ता उनके सनातनी बंधनका कारण नहीं है। उनके कर्म स्वयं उनके मार्गमे रोड़ा बन जाते हैं, और उन पाँच लब्धियोंकी प्राप्तिसे जिनका उल्लेख हम अपने तृतीय व्याख्यानमे कर चुके हैं,

उनको विलग रखते हैं। लब्धियोंकी प्राप्तिसे ही ऐश्वरीय दया या प्रसाद (Grace) के सिद्धांतका सम्बंध है। कारण कि वे स्वाध्याय, तर्क वितर्क अथवा अध्ययनसे उपलब्ध नहीं हो सकीं हैं। वह स्वयं शांति और बुद्धिकी उत्कृष्टताके लिए आवश्यक है, जिसके विदून सत्य असत्यका अन्तर नहीं जाना जा सका है, और न यथार्थ ज्ञान आत्माको अंगीकृत हो सका है। फिर वह कैसे प्राप्त हो सकीं हैं? दया, और केवल दयासे ही। अर्थात् स्वयं आत्मामें दया अर्थात् ऐश्वरीय प्रसादके अंशके प्रकट होनेसे। और किसीके प्रसादसे काम नहीं चलेगा। प्रत्येक आत्माको अपने ही अस्तित्वमें उस परमोत्कृष्ट ईश्वरीय गुणको प्रकट करना चाहिए। और इनकी प्राप्तिका मार्ग केवल एक ही है। अर्थात् क्षमा और दयाके दो उत्तम नियमों पर अमल करना। यहाँ पर अहिंसाके सिद्धांतकी उपयोगिता झलक जाती है। कारण कि दूसरोंको मार डालने, लंगड़ा करने, या पीड़ा पहुंचानेसे विलग रहना क्षमा और दयाका यथार्थ कर्तव्य है। इसलिए जो अहिंसा पर अमल करते हैं केवल वे ही निर्वाण प्राप्त करनेके अधिकारी हैं। कारण कि वे सरलता पूर्वक ईश्वरीय कृपालुताको प्राप्त कर लेंगे जो उनके आवागमनका अन्त कर देगी।

दयाका सिद्धान्त इस प्रकार स्वयं सर्व साधारणके विश्वास के विपरीत है। ईश्वरके स्वरूपमें निमग्न हो जानेके सिद्धान्तके

विषयमें भी सत्य यह है कि वह एक गुप्त शिक्षा है जिसका अर्थ केवल इतना है कि आत्मा स्वयं परमात्मपद एवं उसके प्रतापको प्राप्त कर ले। कारण कि दो अथवा अधिक यथार्थ सत्ताओंका एक दूसरेमें लय हो जाना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं हो सका। बूंदके समुद्रमें मिल जानेका दृष्टान्त वृथा है और उस बातका यथार्थमें खण्डन करता है जिसकी पुष्टि इस के द्वारा चाही जाती है। कारण कि समुद्रका वास्तविक अर्थ बूंदोंका समुदाय ही है जिसमें एक और बूंदके पड़नेसे मौजूद बूंदोंकी संख्या स्वतः अवश्य बढ़ जायगी।

कुछ सज्जन यह कहते हैं कि वे ईश्वरके दर्शनके अभिलाषी हैं। यह भी गुप्त शिक्षावाले हैं, जिन्होने अपने पूर्वजोंके आलंकारिक वक्तव्यको उसके शब्दार्थमें ग्रहण किया है। कारण कि दूसरेका दर्शन वा मिलाप क्षण दो क्षणके लिए ऐन्द्रिय उत्तेजन सुख उत्पन्न कर सका है जो यथार्थ आनन्दसे उतना ही विभिन्न है जितनी कि खड़िया मिट्टी दही (पनीर) से। वास्तवमें यथार्थ आनंद आत्माका गुण है और ज्यों ही कोई मनुष्य उसे अपने स्वभावसे विलग बाह्य वस्तुओं द्वारा प्राप्त करनेका विचार छोड़ देता है त्यों ही एकदम उसका उसे भान होने लगता है। अस्तु; जब तक हम उसको अपने स्वभावसे पृथक् बाह्य वस्तुओंमें खोजते हैं और जब तक उसको किसी ईश्वर वा ईश्वरके दर्शनसे प्राप्त करना चाहते हैं तब तक उसका भान नहीं हो सका है। और

हम उस व्यक्तिके संबंधमें क्या विचार करें जो मनुष्योंको वर-दान देनेका प्रण करके उनसे अपनी उपासना करावे। क्या वह अपने स्वभावमें पूर्ण और सिद्ध हो सक्ता है? नहीं, कदापि नहीं। वरना उपासना करानेकी इच्छा क्यों? वह अपने भक्तोंका सच्चा हितैषी भी नहीं हो सक्ता है, कारण कि वह समस्त अनु-ग्रह जो आत्माको किसी बाह्य शक्तिद्वारा प्राप्त हो सके हैं इन्द्रिय-लोलुपता वा विषयवासनाकी कोटिमें आजाते हैं, जो वर्जित फल है।

मैं विचार करता हूं कि यहां भी यह प्रकट है कि सर्व गड़बड़ हमारे शास्त्रोंके शब्दोंका भ्रामक अर्थ लगानेसे उत्पन्न हुई है। अब मैं गुप्त रहस्यवाले शास्त्रोंके ईश्वरविषयक विचारको हल करूंगा।

ईश्वरके लिए फारसी शब्द खुदा है जो एक सार्थक संज्ञा (शब्द) है जिसके अर्थ स्वतंत्र (अर्थात् स्वजातिमें स्थित रहनेवाले) के हैं। यह अवश्य ही विशुद्धात्मा वा जीवनकी ओर लक्ष्य करके है, जो अपना स्रोत आप ही है और सनातन है। शब्द जेहोवा (विशेष उपयुक्त जाहवेह) का शब्दार्थ जीवित सत्ता है (दि लोस्ट लेंगुएज ओफ सिम्बल इजम १। ३०२)। यह अर्थ यहोवाहका जीवनके लक्षणसे पूर्णरूपेण मुताबिक है, जो स्वभावसे परमात्मस्वरूप है जैसा कि हम देख चुके हैं। जेहोवाने स्वयं कहा है:—

"जिससे कि तू प्रभु अपने परमेश्वरसे प्रेम रक्खे और उसकी वाणीका इच्छुक हो और तू उससे लिपटा रहे कि वह तेरा जीवन, और तेरी वयसका बढाव है।"

(इसतिस्ना ३० । २०)।

हज़रत ईसाने भी कहा है:—

"क़यामत और जीवन तो मैं हूं।" (यहुन्ना ११ । २५)।

पोलुस रसूल मसीहका उल्लेख इन शब्दोंमें "जो जीवन है।" करता है। (कलसियों बाब ३ आ० ४)। सबसे पूर्ण सार्थक नाम ईश्वरका "मैं हूं" है। यह हिंदू, पारसी, यहूदी और ईसाई चारो धर्मोंमे एक समान पाया जाता है। ईशावास्य उपनिषद् (मन्त्र १६) सिखाता है कि:—

"योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥"

जिसका अर्थ यह है कि:—

"वह पुरुष जो जीवनमें रहता है 'अहम्' 'मैं' (अर्थात् परमात्मा) और 'अस्मि' "मैं हूं" के नामसे जाना गया है (जो सत्ताको प्रकट करता है)।"

से० बु० ई० (ईशावास्य उप०)।

यह माधवाचार्यके वक्तव्यानुसार (Ibid Intro) ईश्वरके अकथित नामका मंत्र है-सोहमस्मि (मैं हूँ जो हूं।)।

हुरमजद यश्तमें यह लिखा है:—

"तब जरदस्तने कहा-ऐ पवित्र अहुरामज़दा ! मुझे अपना

वह नाम बतला जो तेरा सर्वोच्च, सर्वोत्तम, एवं सर्वोत्कृष्ट और जो प्रार्थनाके हेतु विशेष फलदायक है।"

"अहूरामज़दाने इस प्रकार उत्तर दिया: मेरा प्रथम नाम 'अहमी' (मैं हूं) है।......और "मेरा बीसवां नाम 'अहमी यद अहमी मज़दाउ (मैं वह हूं जो हूं मज़दाउ) है।"

(होग्ज एस्सेज़ ओन दि पार्सीज पृ० १६५)।

जैसा कि डाक्टर स्पीजल साहबकी सम्मति है (फाऊन्टेन हेड ओफ रिलीजन पृ० ७२) अहूरा वा जेहोवा एक ही हैं। और अहूराका अर्थ अहु (संस्कृत असु - जीवन) का स्वामी है। यहूदियोंके मतके विषयमें इन्जीलके प्राचीन अहदनामेमें खरुज़की पुस्तकमें जेहोवा और मूसाका आपसी वक्तव्य निम्नप्रकार अंकित है —

"और मूसाने खुदासे कहा कि-"देख जब मैं इसरायलके लोगोंके पास पहुंचूं और उनसे कहूं कि तुम्हारे बाप दादोंके खुदाने मुझे तुम्हारे पास भेजा है और वे कहें कि उसका नाम क्या है तो मैं उन्हे क्या बताऊं?"

"और खुदाने मूसासे कहा कि मैं वह हूं जो हूं। और उसने कहा कि तू इसरायलके लोगोंसे यूं कहियो कि मैं हूं ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।" (खरुज ३। १३-१४)।

अन्तत: ईसा भी 'मैं हूं' का उल्लेख अपने रहस्यमय वक्तव्यमें करता है जिसको ईसाई समझनेमें चकराते हैं:—

असहमत-

"पूर्व इब्राहीमके था मैं हूं।" (यहुन्ना ८। ५८)

जिस वक्तव्यमें यह कथन आया है वह एक वाद था जो ईसा और यहूदियोंमें हुआ था। ईसाने अपनी रहस्यमय शिक्षामें कहा:—

'तुम्हारा पिता इब्राहीम मेरा दिन देखनेकी आशा पर विशेष आनन्दमय था। अस्तु; उसने देखा और आनन्दित हुआ।"

इसके उपरान्तका उल्लेख यहुन्नाकी इन्जीलमें निम्नप्रकार है:—

"यहूदियोंने उससे कहा कि तेरी अवस्था तो अभी पचास वर्षकी भी नहीं है फिर तूने इब्राहीमको किसप्रकार देखा।"

"ईसाने उनसे कहा-मैं तुमसे सत्य सत्य कहता हूं। पूर्व इब्राहीमके था मैं हूं।" (यहुन्ना ८। ५६-५८)।

यदि तुम मैं हूं को उसी रूपमें मानो जैसा कि उसका भाव था। अर्थात् एक संज्ञा या ईश्वरके नामके रूपमें, जो जीवन है, तब तुम उस मुश्किल (परेशानी) से बच जाओगे जो दूसरोंने ईसाके इस रहस्यमय वक्तव्यमें पाई है। उस समय यह स्पष्ट रूपमें यों पढ़ा जावेगा:—

'मैं हूं इब्राहीमके पूर्व था।"

और यह अर्थ वास्तवमें उपयुक्त भी है। अब आप परमात्माको समझे? उसका नाम 'मैं हूं' है, जो कि अत्यन्त उपयुक्त प्राकृतिक सार्थक नाम जीवसत्ताका है, जो यथार्थमें है। मान

लीजिए कि आपने जीवन सत्ताको एक मनुष्यकी तरहके कार्य-कर्त्ता ईश्वरके रूपमें कविकल्पनामे बांधा और उससे प्रार्थना की कि वह अपने लिए एक ऐसा नाम ढूंढे जो उसके स्वाभाविक कर्तव्योंका द्योतक हो। क्या आप विचार सक्ते हैं कि वह इससे विशेष उपयुक्त वा योग्य उत्तर दे सक्ता है कि 'मैं वह हूं जो हैं' अर्थात् "मैं हूं जो हूं" अथवा संक्षेपमें केवल 'मैं हूं"। मैं नहीं समझता हूं कि जीवसत्ताके लिए 'मैं हूं' से विशेष उपयुक्त कोई और नाम हो सक्ता है। हम इसप्रकार चक्रमय मार्ग द्वारा पुनः प्राचीन वैज्ञानिक (Scientific) धर्म पर वापस आजाते हैं जो यह शिक्षा देता है कि जहांतक जीवनके यथार्थ गुणोंका संबंध है जीवात्मा (साधारण आत्मा) और परमात्मा पूर्णरूपेण एक समान हैं। मुसलमानोंके यहां भी खुदाके नामोंमेंसे हम अल्हई (वह जो जीवनमय है) अल्कयूम (स्थित रहनेवाला) अल्समद (अमर) अलअव्वल (प्रथम) और अलखिर (अन्त) को पाते हैं। इनमेंसे अन्तके दो नाम वही हैं जो इन्जील (मुकाशफा १।८) में दिए हैं जहां कहा है कि:—

"मैं प्रथम और अन्तिम हूं अर्थात् प्रारंभ और अंत हूं जो है और जो था और जो आनेवाला है सर्व शक्तिमान।"

यशैयाह नवीकी पुस्तक (इन्जील) में भी यह लेख है:—

"मैं प्रथम हूं और मैं अन्त हूं। और मेरे अतिरिक्त अन्य कोई ईश्वर नहीं है।" (अ० ४४।६)।

यह कितने ही स्थानोंपर दुहराया गया है (विशेषतया यशैयाह ४८ । १२)

सूरा जारयातमें कहा है:—

"मैं तुम्हारे व्यक्तित्वमें हूं परन्तु तुम देखते नहीं हो ।"

वह कौन वस्तु है जो हमारे व्यक्तित्वमें है, और ईश्वरके गुण रखती है, यदि वह स्वयं जीवन सत्ता नहीं है तो ?, यहुन्ना की इन्जील अध्याय ८ आ० ५८ का यथार्थ अर्थ जो अब पूर्णतया प्रत्यक्षरीत्या समझमें आ जायगा यह है कि प्रत्येक आत्मा अपने स्वभावकी अपेक्षा अविनाशी है और उसका अस्तित्व अनादिकालसे इसीप्रकार चला आया है । इसलिए इब्राहीमके समयमें भी वह थी । यहूदियोंके उत्तरमें ईसा भगवद्गीताके निम्न वाक्य व्यवहृत करते तो भी अति उपयुक्त होता:—

"न कभी मैं न था न तू कभी न था । न यह मनुष्यके राजा कभी नहीं थे । और वास्तवमें न हम कभी अस्तित्व-हीन होंगे ।" (अध्याय २ श्लोक १२) ।

इस वर्णनके विषयमें कि "इब्राहीम मेरा दिन देखनेकी आशा पर विशेष आनन्दित था । अस्तु, उसने देखा और आनन्दित हुआ" यह प्रत्यक्ष है, मुख्य कर शब्दो "मेरा दिन" के लिखनेसे कि यहां उल्लेख एक 'ईश्वरके पुत्र' के प्रतापसे है, न कि ईसूसे जिसका दिन इब्राहीमके लिए उसी अवस्थामें देखना संभव हो सक्ता था जब कि उन दोनोंके अन्तरमय शताब्दियोंका

नाश हो सक्ता। जहाँ पर हम भूल करते हैं वह यह है कि हम एक यथार्थ वा काल्पनिक मनुष्यको चाहे वह कृष्ण हो वा ईसा अथवा और कोई हो, मूर्तिपूजकोंके ढंगमें उपासना करने लगते हैं। उपासनाका यथार्थ भाव यह है, कि मसीहको जो जैनधर्म्ममें 'जिन' कहलाता है आदर्श बना कर उसके पथका अनुयायी हूं। आदर्शका नियम, मैं पुनः कहता हूं, मुक्तिका मार्ग है। मूर्तिपूजासे तुम पाषाणोंमे ही टक्कर खाते फिरोगे। पालुस रसूलने ईसाके जीवित होनेके संबंधमें किसी मुख्य बातका ईसाके लिए दावा नहीं किया। वह स्पष्टरूपमें कहता हैः—

"यदि मृतकोंकी कयामत नहीं है तो मसीह भी नहीं जी उठा।" (१ करंथियों १५। १३)।

कुछ आयतोंके पश्चात् पुनः ऐसा ही वक्तव्य है। और अब के और भी प्रकट रूपमेंः—

'यदि मृतक नहीं जीवित होते हैं तो मसीह भी नहीं जी उठा।" (१ क० १५। १६)

यथार्थता यह है कि हमने ईसाके व्यक्तित्वके बावत भ्रममें पड़ कर बड़ा धोखा खाया है। और इसी कारणवश धर्म्मकी सत्य शिक्षाके समझनेसे वंचित रहे हैं। पालुसके मतमें ईसाका जीवित होना "मृतकों" के "जी उठने" से प्रमाणित था न कि उनके जी उठनेका प्रमाण। ईसा इस प्रकार जीवनका आत्मिक आदर्श है जो यहूदियोंके गुप्त कथानकरूपी वस्त्रावरणमें प्रकट

होता है, कृष्णके सदृश जो हिंदू धर्म्ममें इसी प्रकारका आदर्श है। इन सर्व कथानकोंके पीछे यथार्थ आदर्श सच्चा जिन-तीर्थंकर-परमात्मा ही है। अन्तिम तीर्थंकर परमात्मा महावीर हैं जिन्होंने अपनी ही पूज्य आत्मामें जीवनकी परमोत्कृष्टता एवं वास्तविक ईश्वरीयपूर्णता प्राप्त की और जिन्होंने दूसरेको सायन्स (विज्ञान) के ढंग पर पूर्णताके मार्गकी शिक्षा दी। इस कालमें उनके पूर्वमें २३ अन्य विशुद्ध तीर्थंकर हुए हैं जिन्होने अपने पवित्र चरणचिह्न समयके रेत पर हम लोगोंके चलनेके लिए छोड़े हैं। इन पवित्र आत्माओंमें सबसे प्रथम श्रीऋषभ देव हैं। जिनका नाम ही संसारकी सबसे प्राचीन कथानक वर्णनमें अर्थात् वैदिक धर्ममें धर्म्मका चिह्न है। उनकी प्रतिमाका चिह्न जो बैल है वह भी धर्मका द्योतक है।

तस्य भरतस्य पिता ऋषभः हेमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं
महद्भारतं नाम शशास ॥ —वराहपुराणम्

ऋषभो मेरुदेव्याश्च ऋषभाद्भरतोऽभवत् ।
भरताद्भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभूत् ॥
—अग्निपुराणम् ॥

इनका अर्थ यह है कि भरत ऋषभका पुत्र मरुदेवीसे है। उसने महद् भारतवर्ष पर जो हिमवत्के दक्षिणमें है राज्य किया और उसके नाम पर भारतवर्षका नाम पड़ा। उसके पुत्रका नाम सुमति है। नारदपुराणमें भी यह लेख है कि "ए राजा,

भरतखण्डका पहिले नाम भरत ऋषभके पुत्रके नामपर पड़ा।"
(प० हि० भा० १। २०५-२०७-२१०-२१३)। मि० अय्यरका
विवेचन इसके विषय में निम्न प्रकार है:—

"ऋषभका नाम जो बराबर भरतके पिताके रूपमें आया है,
उसका भाव धर्मसे है। जिसका कि पुराणोंमें सदैव वृषभ
रूपमें उल्लेख है।" (प० हि० भा० जिल्द १। २१३)।

श्रीभागवतके अनुसार ऋषभदेव नाभिराजाका पुत्र मरुदेवीसे
था और भरत उसका पुत्र था। यह उल्लेख जैन शास्त्रोंके
समान है। अस्तु, यह सर्व हिन्दू शास्त्र पूर्णतया प्रमाणित करते
हैं कि अपने कथानकोंकी आवश्यक्ताकेलिए धर्मको कविकल्प-
नामें व्यक्तिगत रूपान्तर निरूपण करते समय इन पवित्र कोमल
विचारोंके रचयिता ऋषि कवियोंका ध्यान स्वभावसे ही ऋषभ-
देवजीकी ओर जो पहिले तीर्थंकर और धर्मके संस्थापक थे,
गया। वृषभ, वह चिह्न है जिसके द्वारा परमात्मा ऋषभदेवकी
मूर्तियां जैन मंदिरोंमें अन्य तीर्थंकरोंकी मूर्तियोंसे अलग जानी
जा सकी है। और इसलिए यह कोई विशेष विसयकी वात नहीं
है कि कथानकोंकी रहस्यमय भाषामे भी वृषभका धर्मके साथ
संबंध पाया जावे।

जैसा कि पॉलस रसूलके वक्तव्यसे प्रकट है "यदि मृतक जी
नहीं उठते तो ईसा भी नहीं जी उठा है" (१ करंथियो १५।१६)
आत्माएँ सदैव आत्मिक मृतावस्थासे जीवित होतीं और

निर्वाण प्राप्त करती रहीं हैं। परन्तु तीर्थंकर प्रत्येक कालमें केवल २४ होते हैं। वह सर्व जीवित प्राणियोंमें सर्वोत्तम होते हैं, और अपने पूर्व भव वा भवोमें निम्नलिखित शुभ गुणोंमें अपनेको पूर्ण करनेके कारण सर्वसे विशेष उच्च एवं उत्कृष्ट पद प्राप्त करते हैं:-

(१) पूर्ण सम्यक् श्रद्धान (दर्शन)।

(२) सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके रत्नत्रयमयमार्गकी और उस पर चलनेवालोंकी उपासना।

(३) व्रतोंका पालन।

(४) स्वाध्याय।

(५) धर्मसे गाढ़ प्रेम एवं संसारका पूर्ण त्याग।

(६) त्याग वा अपरिग्रह।

(७) तप

(८) साधुसमाधि।

(९) सर्व जीवित प्राणियोंकी सेवा। मुख्यतया साधुओं और सम्यक्दर्शन रखनेवालोंकी।

(१०) तीर्थंकरकी, उसको आदर्श मान कर भक्ति।

(११) आचार्योंकी उपासना।

(१२) उपाध्यायोंकी वन्दना।

(१३) शास्त्रोंकी भक्ति (अर्थात् शास्त्रस्वाध्याय और यह समझ कर कि वह आप्तवचन हैं उनकी विनय करना)।

(१४) शास्त्रोंमें वर्णित आचार सम्बंधी नियमोंका पालन।

(१५) धर्म्मका प्रचार करना अर्थात् धर्म्मको फैलाना और स्वयं उस पर अमल करना।

(१६) सम्यक् मार्ग पर आरूढ़ पुरुषोंके साथ वैसा ही प्रेम जैसा गऊको अपने बच्चेके साथ होता है।

इन शुभ भावनाओंसे तीर्थंकर भगवानका सर्वोत्कृष्ट पद प्राप्त होता है। तीर्थंकर वह पुरुष है- जो अपने विषयमें किताब मुकाशफे (इन्जील) के शब्दोंमें यह कह सका है:—

'मैं वह हूं जो जीवित है और जो मृत्युको प्राप्त हो गया था। और देख ! मैं सदैव जीवित रहूंगा। और नरक एवं मृत्युकी कुञ्जियां मेरे अधीन हैं।" (बाब १ आ० १८)।

तीर्थंकरका पद सर्वज्ञता प्राप्त होने पर जो आत्माके ऊपरसे ज्ञानको आच्छादित करनेवाले आवरण (ज्ञानावरण) के हटानेका फल है, प्राप्त होता है।

तीर्थंकर (१) भूख (२) प्यास (३) जरा (४) रोग (५) जन्म (६) मरण (७) भय (८) मद (९) विषयाकांक्षा (१०) द्वेष (११) मोह (१२) व्यथा (१३) अहङ्कार (१४) शत्रुता (१५) व्याकुलता (१६) पसीना (१७) निद्रा और (१८) विस्मयसे रहित होता है। स्वर्गलोकके देव और मनुष्य उसकी पूजा करते हैं। उसकी वाणी बहुतसी धाराओंके शब्दके सदृश होती है (मुकाशिफा १। १५) जो बहुत दूर तक कर्ण-

गोचर होती है। और जिनवाणी (ईश्वरीय वाणी) वा श्रुति कहलाती है। इसका रूप ऐसा तेज पूर्ण होता है मानों सहस्रों सूर्य्य एक स्थान पर एकत्रित हो गए हों। उसके चरण भट्टीमें तपाए हुए शुद्ध पीतलके सदृश चमकदार होते हैं। उसके नेत्र अग्निके ज्वालाकी भांति होते हैं; मुकाशिफा (१।१४-१५)। दया की यथार्थ मूर्त्ति वह धर्मप्रेमियोंको सम्यक् धर्मका उपदेश निर्वाण प्राप्ति तक करता है जब कि उसकी आत्मासे पुद्गलके विलग हो जानेसे वह परमात्माका विशुद्ध स्वरूप दोष मृत्यु, दुःख और अविद्यासे रहित और सर्वज्ञता, नित्यका आनन्द, सदैवके जीवन, अनंतशक्ति, और कभी कम न होनेवाले वीर्य्य से भरपूर हो जाता है। ऐसी अवस्थामें पुद्गलके अभावमें जो शब्दके लिए आवश्यक है फिर श्रुतिका अस्तित्व नहीं रहता है। तीर्थंकरों और अन्य पवित्र परमात्माओंकी जिन्होंने निर्वाण प्राप्त किया है किसी प्रकारकी इच्छा मनुष्योंसे अपनी पूजा करानेकी नहीं होती है। और न वे बलिदान एवं प्रार्थनाके बदलेमें किसी प्रकारका सुख प्रदान करनेका प्रण देते हैं। वे इच्छा एवं आकांक्षाकी सीमासे परे हैं। उनकी पूर्णता अकथित है। उनके गुणोंका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं हो सका। उनकी उपासना मूर्त्ति पूजा नहीं है बल्कि आदर्शपूजा है। वह हमारे लिए पूर्णताका नमूना हैं जिससे हम उनका अनुकरण करें और उनके चरणचिन्हों पर चलें।

यह वर्णन परमात्माके गुणोका धर्मके सायन्सकी सीधी साधी भाषामें है जो सर्व सायन्सोंसे उत्तम है।

मैं समझता हूं कि अब आपके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि क्या कारण है कि बहुपरमात्माओके विषयमे यह शिक्षा अन्य धर्मोंमें नहीं है? परन्तु आपको आश्चर्य नहीं करना चाहिए यदि उसके उत्तरमें मैं आपको बताऊं कि जिस स्थान पर आपको ढूंढना चाहिए था उस स्थान पर आपने इसको नहीं ढूंढा। और यह कि वास्तवमें यह ही सर्व धर्मोंकी यथार्थ भित्ति है; अतिरिक्त उन मतोंके जो वर्तमानमें केवल दूसरोकी त्रुटियोंके घूरों पर उत्पन्न हो गए हैं। यह अंतके धर्म न तो ईश्वरीय वाणी पर निर्भर हैं; और न किसी सैद्धान्तिक अन्वेषण पर ही और न यह प्राचीन शास्त्रोके गूढ़ अर्थके यथार्थ परिचय ही पर अवलम्बित है। अस्तु; इनका उल्लेख अब मैं इन व्याख्यानोंमें आगामी नहीं करूंगा। बल्कि आपको स्वयं उनके विषयमें अपनी सम्मति एकत्र करने दूंगा। केवल एक ही बात इनके सम्बंधमें मुझे यहां कहनी आवश्यक प्रतीत होती है कि कुछ धर्मोंमें यह मान लिया गया है कि उनके व्यवस्थापकोंने अद्भुत कृत्य दिखलाए हैं; और अद्भुत कृत्य सर्व साधारण की सम्मतिमें ईश्वरीय गुणो वा ईश्वरकी कृपासे सम्बंधित माने गए हैं। आप मुझे क्षमा करेंगे यदि आपमेसे किसीका हृदय मेरे ऐसे कहनेसे दुःखे परन्तु मैं नितान्त इन वर्तमानके अद्भुत

कृत्योंमें विश्वास नहीं रखता हूं। इनमेंसे कितनेक अद्भुत कृत्योंका भेद तो मेस्केलिन, फारकुहर ("मोडर्न रिलिजस मुवमेंटस") जोजेफ मैककेव (इजस्पीरिचुअल इज़म् वेसड ओन फ्रोड") प्रभृति खोजियोंकी लिखित पुस्तकोंमें प्रकट कर दिया गया है। यदि उनको सत्य भी माना जावे जो मेरे विचारसे एक जल्दीका कार्य्य होगा तो भी अद्भुत कृत्योंका होना हिन्दू, मुसलमानो, जैनियो एवं अन्य मनुष्यों, असभ्यों, और पाषाण-पूजकोंतकमें बताया जाता है। तो फिर किस पर विश्वास किया जावे। मेरे विचारमें इनमेंसे वास्तविक अद्भुत कृत्योंका रहस्य यह है कि आत्माकी कुछ गुप्त शक्तियां साधारणतया अथवा असाधारणतया प्रकट हो जाती हैं; और उनसे अद्भुत कृत्य होने लगते हैं। परन्तु यह व्यायामके तोरपर हैं जिसका मनुष्यों की श्रद्धा और विश्वाससे कोई सम्बंध नहीं है।

बहुईश्वरवादकी ओर दृष्टिपात करनेसे यह प्रकट है कि हिंदू धर्म्म अनुमानतः अपने सर्व रूपोमें आत्माका परमात्मा होना मानता है, और विचार एवं विश्वास दोनोंकी अपेक्षा नितांत बहुईश्वरवादी है। अस्तु; उसका विशेष विवेचन करनेकी आवश्यक्ता नहीं है। अवशेष धर्म्मोके विषयमे अल्लाह जो इसलाम के अनुसार ईश्वरका नाम है, और जो यथार्थमें अल-इलाहै है वास्तवमें बहुवादका भाव है। इस शब्दका भावमय अर्थ (ई० रि० ए० भाग ७ पृष्ठ २४८) में निम्नप्रकार दिया है:—

"शब्द इलाह [जो इन्जीलकी किताब अयूबमें व्यवहृत इलोआह (Eloah) के समान है]... .के रूपसे यह प्रकट होता है कि वह प्रारम्भमे और वास्तविकतया प्राचीन यहूदियोंकी भाषामें इल (इब्रानी एल = El) का बहुवचन था ...... इन्जीलका एलोहिम् स्वयं इलाहका बहुवचन है जिसका पता अरबी भाषाकी स्वरवृत्ति इल्लाहुम्मामें चलता है जिसके समझानेमें अर्बी वेत्ताओंको विशेष कठिनाई पड़ती है।"

शब्द गोड (God) का शब्दार्थ पूर्ण रूपसे प्रकट नहीं है। परन्तु इम्पीरियल डिक्सनरी (Imperial Dictionary) के अनुसार प्राचीन नोर्स वा आइसलेन्डकी भाषामें जो स्केन्डीनेवियाकी भाषाओंमें सर्व प्राचीन भाषा है, यह शब्द मूर्त्तिपूजकोंके ईश्वरके लिए व्यवहृत होता था (जो नपुंसक लिंग और अनुमानतः बहुवचनमें व्यवहृत था) और अन्तमें ईश्वरके भावमें गुड (Gud) में परिवर्तित हो गया परन्तु यदि इस शब्दके निकास का पता ठीक नहीं चलता है तो न सही, स्वयं इन्जील परमात्माओंके बहुसंख्यक होनेमें कोई संशय अवशेष नहीं छोड़ती है। पुराने अहेदनामेकी सर्व प्रथम पुस्तकमें परमात्माका उल्लेख बहुवचनमें आया है:—

"देखो! मनुष्य हममेंसे एकके सदृश हो गया है।"

(पैदायशकी किताब ३ । २२)।

इस वक्तव्यके नीचे जो लायन खींची हुई है वह अवश्य मेरी है परन्तु शब्द मेरे नहीं है। बमूजिब किताब पैदायश (तृतीय अध्याय आयत पञ्चम) सर्पने हजरत, हव्वाको इन शब्दों द्वारा वरगलाया कि "तुम परमात्माओंके सदृश हो जाओगे'। जबूर ८२ छट्ठी आयतमें यह कहा गया है:—

"मैंने तो कहा है कि तुम परमात्मा हो। और तुम सब परमोत्कृष्टके पुत्र हो।"

यहुन्नाके दसवें वावकी ३४-३६ वीं आयतोंमें ईसाने उपर्युक्त शब्दोंके सम्बंधमें कहा है:—

"क्या तुम्हारी शरा (धर्म) में यह नहीं आया है कि मैंने कहा कि तुम परमात्मा हो। जब कि उसने उन्हें परमात्मा कहा जिनके पास परमात्माकी वाणी आई, और पवित्र ग्रंथका उल्लंघन होना सम्भव नहीं, तुम उससे जिसको पिताने विशुद्धकरके संसारमें भेजा है यह कहते हो कि तू असत्य बकता है, क्योंकि उसने कहा कि मैं परमात्माका पुत्र हूं।"

किताव खुरूजके वाव २२ आयत २८ में परमात्माओंका तिरस्कार करना मना है। वहाँ कहा है:—

"तू परमात्माओंको गाली नहीं देगा। और न अपनी जातिके सरदारको अभिशाप देगा।'

यह एक विख्यात बात है कि प्राचीन यहूदियोंके यहाँ मनुष्योंके रूपके देवता जो तैरफ (Teraph) कहलाते थे, होते थे

जिनका उल्लेख Imperial Dictionary में इस प्रकार किया गया है:—

तैरफः एक गृहस्थीका देवता वा मूर्त्ति जिसकी यहूदी लोग विनय करते थे, था। तैरफ ज्ञात होता है कि पूर्णतया अथवा अंशतः मनुष्यके रूपके होते थे। उनकी विनय एवं उपासना गृहस्थीके देवताओंके रूपमें की जाती थी। प्राचीन अहदनामेमे उनका कितनेक वार उल्लेख आया है।"

याकूब सम्बंधी लावनके पास भी ऐसे देवताओंकी मूर्त्तियां थीं। जिनको कि याकूबकी स्त्री राखलने चुरा लिया (पैदायश की किताब ३१।१९)। उसके पश्चात् यहोवाह लावनके पास स्वप्नमें आया (आ० २४)। लावनने दूसरे दिन याकूबसे पूछा 'किस वास्ते तू मेरे देवताओंको चुरा लाया है?' (आयत ३०)।

हौसिया नवीकी किताब (बाव ३ आ० ४) में कहा गया है:—

"क्योंकि इसरायलके लोग बहुत दिन तक विदून राजा और विदून सरदार और विदून बलिदान, और विदून मूर्त्ति, और विदून इफोद और विदून तैरफिमके रहेंगे।"

परन्तु यदि प्राचीन अहदनामेकी किताबोंमें परमात्माओंका वर्णन बहुवादमें एक साधारण रीतिसे है तो इन्जीलके नवीन अहदनामेकी अन्तिम किताब मुकाशफा नामकमें तो स्वयं तीर्थंकरोंका उल्लेख है और उनकी संख्या भी २४ ही दी गई है। मुकाशफेके चतुर्थ-पञ्चम और षष्ठ अध्याय इस विषयसे संबंध रखते हैं; और अनुमानतः इस (निम्न) प्रकार हैं:—

अध्याय चतुर्थः—

(१) आकाशमें एक द्वार खोला गया। और मुझ यहुआने एक शब्द सुना कि यहां ऊपर आ जा। मैं तुझे वह बातें दिखलाऊंगा जो भविष्यमें होनेवाली हैं।

(२) यहुआ एकदम आत्मामें आगया और आकाशमें एक आसन बिछा हुआ देखा और देखा कि "उस आसन पर कोई बैठा" था।

(३)"और उस आसनके चहुंओर २४ आसन हैं। और उन आसनो पर २४ महात्मा स्वेत वस्त्र धारण किए हुए बैठे हैं और उनके शीश पर स्वर्णके ताज हैं।

(४)" और उस आसनमेंसे बिजलियां और शब्द और गर्जन उत्पन्न होते हैं। और उस आसनके सामने अग्निके सम दीपक जल रहे हैं। यह ईश्वरकी सप्त आत्माएं हैं।"

(५)"और आसनके मध्यमें और आसनके चहुंओर चार जीवित प्राणी हैं जिनके आगे पीछे नेत्र ही नेत्र हैं।"

(६) प्रथम जीवित प्राणी पबर शेरके समान था, द्वितीय बछडेके समान एवं तृतीय जीवित प्राणीका रूप मनुष्यका सा था। और चतुथ उडते हुए गृद्धके समान थ

(७) इन जीवित प्राणियोंमेंसे प्रत्येकके छै छै पंख हैं जिनमें नेत्र ही नेत्र हैं। और वे दिवस किंवा रात्रि कभी मौन साधन नहीं करते हैं। सुतरां बराबर यह कहते रहते हैं 'पवित्र, पवित्र, पवित्र, प्रभू परमेश्वर सर्व शक्तिमान जो था और जो है और जो आने वाला है।"

(८) "और जब वह जीवित प्राणी उसका महिमावर्णन और विनय और धन्यवाद करते हैं जो आसन पर बैठा है। और जो अनन्त समय जीवित रहेगा।'

(९) "तो वह महात्मा-उसके समक्ष जो आसनारूढ़ है अपनेको गिराते हैं। और उसकी जो अनन्त समय जीवित रहेगा उपासना करते हैं। और अपने ताज यह कहते हुए इसके समक्ष डाल देते हैं:-"

(१०) "ऐ हमारे प्रभू! और ईश्वर! तू ही महिमा, विनय, और शक्तिके प्राप्त करने योग्य है कारण कि तू ही ने सर्व पदार्थ उत्पन्न किए, और वह तेरे ही आनंद के लिए हैं; और उत्पन्न किए गए थे।"

अध्याय पञ्चमः—

(१) "और मैंने उसके दाहने हाथमें जो आसनारूढ था एक पुस्तक देखी जो अभ्यंतर-एवं पीठकी ओर लिखित थी। और उसे सप्त मुहरें लगा कर बन्द किया गया था।

(२) फिर मैंने एक बलवान फरिश्तेको यह घोषणा उच्च स्वरसे करते हुए देखा कि कौन इस पुस्तकके खोलने और उसकी मुहरें तोड़नेके योग्य है।"

(३) "और कोई मनुष्य.........इस पुस्तकके खोलने अथवा उसपर दृष्टिपात करने योग्य न निकला।

(४) "और मैं इस पर फूट फूट कर रोने लगा कि कोई पुस्तकके खोलने वा उसपर दृष्टिपात करनेके योग्य न निकला।

(५) "तब उन महात्माओंमेंसे एकने मुझसे कहा कि रो नहीं देख ! यहूदाहके वंशका वह बबर शेर ......इस पुस्तक और इसकी सातों मुहरोंके खोलनेके लिए जयवंत हुआ है।

(६) "और मैंने उस आसन और चारो जीवित प्राणियों और उन महात्माओंके मध्य एक मेमना खड़ा देखा।

(७) "और उसने आकर आसनारूढ़के दाहने हाथसे उस पुस्तकको ले लिया।"

(८—१४) मेमनेको अब आनन्द बधाई और आशीषके साथ सर्व समुदाय मय २४ महात्माओं और चार जीवित प्राणियोंके मुबारकवादी देता है। और प्रत्येक प्राणी उसके लिए सुख और इज्जत और प्रताप और शक्तिका इच्छुक होता है।

अध्याय षष्ठ।

मेमना अब उस पुस्तककी मुहरें खोलता है जो भीतर और पीछेकी ओर लिखी हुई है और जिस पर सात मुहरें लगीं हुई हैं और जो उसने उसके दाहिने हाथसे ली है जो आसन पर बैठा है।

यह गुप्त कथानक रूपका वर्णन उन घटनाओंका है "जो भविष्यमे होनेवाली हैं" जिनको मर्म्मज्ञ यहुन्नाने अपनी किताब मुकाशफामें अंकित किया है। परन्तु, यह नहीं समझना चाहिए कि यहुन्ना यहां एक भविष्यमें होनेवाली कयामतके दिन होनेवाले नाटकके किसी सीनका वर्णन कर रहा है। उसका ऐसा करना हमारे किस अर्थका होगा। मुकाशफाका उद्देश्य हमको चक्करमें डालनेका नहीं था। सुतरां यह था कि उस परदेको जो उन गुप्त कथानक रहस्योंपर पड़ा हुआ था जिनको मर्म्म (Mysteries) कहते थे, अंशतः उठा देवे जिससे कि वह शिक्षा जो गुप्तरूपमें विविध रहस्यों (Lodges) में दी जाती थी, समझमें आ सके।

यह कथानक मेमनेके सत्तात्मक जीवनके विशाल दरबारमें २४ तीर्थंकर भगवानों वा सर्वज्ञ परमात्माओंके समक्षमें जो स्वेतवस्त्र धारण किए हुए हैं, और शीश पर ताज पहने हुए सिंहासनारूढ़ हैं जीवन मर्म्ममे प्रवेश होनेका वर्णन है। आसन पर जो एक अवस्थित है वह स्वयं जीवन सत्ता है। जिसके

विदुन न दरबार सम्भव है, न किसी निर्वाण मुमुक्षका अस्तित्व, न परमात्म-मर्ममें प्रवेश होना और न परमात्मपान। गर्जन एवं विद्युत जीवनकी चंचलता (अर्थात् स्वयं स्वतंत्र क्रिया) का चिन्ह है। कारण कि अजीव पदार्थ स्वयं क्रियाहीन हैं। वे चार जीवित प्राणी जिनके दोनों ओर नेत्र हैं वे चार प्रकारके जीव हैं अर्थात् वे जिनके शरीर चार विभिन्न पौद्गलिक भूतों (Elements) के बनेहुए हैं (वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी कायिक जीव)। नेत्र, ज्ञान अथवा दर्शनकी ओर संकेत करते हैं जो जीवनका कृत्य है। और विविध प्रकारके पशु पुद्गलकी पर्याय (Elements) है। (दि की ओफ नोलेज)। इन जीवित प्राणियोंके छे छे पंख अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालोंके छे छे विभागोंकी ओर सकेत करते हैं जिनमें चारों प्रकारके जीव आवागमनका दुःख सुख समय परिवर्तनके अनुसार भोगते हैं। आसनके सामनेके अग्निके सप्त दीपक सप्त प्रकारके तप हैं, जिनकी सदृशता हिन्दू कथानकमें अग्निका सप्त जिह्वाओंसे की गई है। और मेमना परमोत्कृष्ट मार्दवका चिह्न है जिसको आत्मा (कथानकमें ईसा) को जीवनके करकमलोंसे भीतर और पीछे की ओर लिखी हुई पुस्तकके पानेके पहिले प्राप्त करना होता है। जो पार्ट (Part) कि २४ माहात्माओंको दिया गया है वह जीवन और उसके परमोत्कृष्ट २४ प्रकाशों अर्थात् तीर्थंकरोंसे सम्बन्धित है। आसनारूढ़ एककी उपासना इस बातकी

द्योतक है* कि जीवन जो सर्व आत्माओंमें पाया जाता है स्वयं अपने गुणोंकी अपेक्षा परमात्मा है। अस्तु; जब कि परमात्मावस्था जीवनका ही गुण है, तीर्थंकर वह महात्मा हैं जिनके उपदेशसे इस परमात्मावस्थाका लाभ पूर्णरूपसे हो जाता है कारण कि उन्होंने स्वयं पूर्णताके उच्चतम पदको प्राप्त किया है, इस कारणसे तीर्थंकर सर्वसे विशेष रूपसे विनय करने योग्य एवं पूज्य गुरु हैं। वह पिता अथवा दिव्य पिता कहलाता है, इस लिए नहीं कि वह किसी पदार्थ या जीवित प्राणीका कर्त्ता है सुतरां उसी तौर पर जिस पर साधारण पुरोहित (पाद्री) व गुरु पिता कहलाते हैं। बपतिस्मे अथवा द्वितीय बार जन्मका सिद्धान्त जो कितनेक भारतीय दर्शनो और ईसाईयोंके मतमें पाया जाता है, गुरुके पिता कहलानेकी नींव है। जैसे की ओफ

---

* मुकाशफा (बाब ५ आयत ८) में कही हुई गेमनेकी उपासनाका अर्थ इस ढंग पर एक संसारको मोक्ष दिलानेवाले मसीह अर्थात् तीर्थंकरकी उपासनासे है। उपासनाका भाव किसी मुख्य देवता वा मनुष्यके पूजनसे नहीं है। सुतरां आत्मिक गुणोंके पूर्ण प्रकाशकी उपासनासे है। कारण कि बुद्धिमान-पुरुष किसी व्यक्तिकी उपासना इसलिये नहीं करते कि उसके भंडारसे भोग विलासोंको प्राप्त करें। सुतरां उस परमोत्कृष्ट अवस्था अर्थात् परमात्मावस्थाके गुणोंकी उपासना करते हैं जिनको वह स्वयं अपनी सत्तामें प्रकट करना चाहते हैं।

नोलेज (The Key of Knowledge) अध्याय षष्ठमे कहा गया है:—

"वर्तमानके ईश्वर-उपासकोंको इस बातकी जानकारी प्राप्त करनेसे कुछ कम विस्मय न होगा कि उनका ईश्वरको कर्त्ता मानने का भ्रम, अन्तमें दोबारा जन्मकी शिक्षासे प्रारंभ होता है जो...बपतिस्मेके सिद्धान्त पर निर्भर है। अर्थात् आत्माके ईश्वरीय जीवनमें प्रवेश करनेसे। इस विषय पर यदि ईश्वरोपासक तनिक ध्यान देंगे तो उनको एकदम ज्ञात हो जायगा कि पादरियोंका पिता कहलाना जो संभवतः सर्व प्राचीन धर्म्मोंमें पाया जाता है पौद्गलिक शरीरके संबंधमें नहीं हो सक्ता है सुतरां केवल इस ही कारणवश हो सक्ता है कि वह आत्माको जीवन मर्ममें प्रवेश कराते हैं जिस प्रवेश करानेको कविकल्पनामें मनुष्यका आत्मामे जन्म लेना वा संक्षेपमे दोबारा जन्म धारण करना कहा गया है। पादरीका पिता कहलाना इस द्वितीय जन्मसे संबंधित है कारण कि गुरु जो रहस्यमें प्रवेश कराता है और जो इस कारणवश उस सम्पूर्ण विनयका-यदि उससे अधिकका नहीं भी-जो मनुष्य अपने शारीरिक पिताकी करता है, अधिकारी है इस आत्मिक जन्मका कारण है और दृष्टान्तकी अपेक्षा अवश्यमेव पिता हुआ। अब जब कि तीर्थंकर (ईश्वर) सबसे उच्चतम एवं सबसे उत्कृष्ट विनयके योग्य गुरु है इसलिए

इस पदका उनसे विशेषरूपमें कोई अधिकारी नहीं है। यथार्थ भाव तो यह था परन्तु जब कथानकरचनाकी भूगर्भ भूलभुलैयामें धर्मकी सत्य शिक्षा दृष्टिसे लोप हो गई और परमात्मापनके यथार्थ भावके स्थान पर सृष्टिकर्त्ताकी उपासनाकी त्रुटियां प्रचलित हो गईं जो शब्दार्थमें शास्त्रोंके गुप्त मर्म्मोंको पढ़ने पर पड़ती हैं तो परमात्माके पिता होनेके यथार्थ व पवित्र सिद्धान्तके स्थानमें एक शारीरिक कर्त्ताका भद्दा और अनुपयुक्त मत उत्पन्न हो गया। ऐसी अवस्थामे पादरीयों पर ईश्वरसंबंधी भ्रमोंका प्रभाव न पड़ना कोई अद्‌भुत बात नहीं है। सुतरां ठीक वह ही है जिसकी आशा की जा सकी थी। कारण कि इनकी सम्प्रदायके विषयमें कभी कोई कथानक नहीं घढे गए जिनसे किसी प्रकारकी गड़ बड़ हो सके यद्यपि अधिकांश मनुष्य आजकल ठीक उस कारणसे अनभिज्ञ हैं कि यह लोग पिता क्यों कहलाने हैं, और इस पदको केवल विनयका चिह्न समझते हैं।"

विश्वसतः ईसूके मुखमें 'दिव्य पिता' शब्दोंका भाव जगत कर्त्ता नहीं है। और न उनका किसी साधारण वा मुख्य पदार्थकी उत्पत्तिसे सम्बंध है। यह विचार तो तोरेतकी कथानक शिक्षाके बाह्य छिलकेसे एवं उसके अभ्यंतर गूढ़ार्थको दृष्टिसे लोप करनेसे उत्पन्न हो गया है। हिन्दू धर्म्ममें भी सृष्टिकर्त्ताके रूपमें परमात्माका विचार सृष्टिके रचनेवाले ब्रह्माके वास्तविक कर्तव्य

का भद्दा भाव है। वास्तवमें स्वयं जीवन-सत्ता यथार्थ कर्ता है। कारण कि प्रत्येक आत्मा अपने शरीर एवं अवस्थाओंका रचने वाला है। परन्तु सामान्य भावकी अपेक्षा जीवन केवल आत्म-द्रव्यका ही एक रूप है। ब्रह्मा जीवन सत्ताका रूप कभी नहीं है; सुतरां उस बुद्धिका रूपक, जिसको जीवन सत्ताका ज्ञान होगया, है। अस्तु; ब्रह्माकी सृष्टि आत्मिकविचारोंकी सृष्टि है जिससे वह मनको आबाद करता है जैसा कि पहिले कहा जा चुका है। यह वह सृष्टि है जिसकी विष्णु (=धर्म) रक्षा करता है। के० एन० अय्यर साहब निम्नका मनोरंजक लेख ब्रह्माजीकी सृष्टिके सम्बंधमें अपनी पुस्तक (दि पर्मानेंट हिस्ट्री ऑफ भारत-वर्ष जिल्द ६। २६५) मे लिखते हैं.—

"ब्रह्माकी सृष्टिका अर्थ......वास्तवमें सर्व सांसारिक इच्छाओंका नष्ट करना है, जिससे हृदयमें भक्तिके भाव उत्पन्न होते हैं। विष्णु ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की हुई बुद्धिकी रक्षा करता है, और किसी अन्य-वस्तुकी रक्षा नहीं करता। शिव आत्माकी सांसारिक इच्छाओंके नष्ट करनेसे ब्रह्माकी सृष्टिका मुख्य कारण है। और अंतमें वह भक्ति और पुण्यके फलके नाश कर देनेसे मुक्तिका कारण होता है। ब्रह्मा और विष्णु और शिव......मनुष्यको मोक्ष दिलानेके हेतु सर्व धार्मिक आवश्यकताओंका अन्त कर देते हैं।"

अस्तु; आत्माके लिए वास्तविक ईश्वर स्वयं जीवन ही है।

अर्थात् स्वयं आत्मद्रव्य ही जो उसके परमात्मापनका उपादान कारण है। यह परमात्मापन ऐसे मनुष्यकी शिक्षासे प्राप्त होता है, जिसने उसको स्वयं प्राप्त किया हो अर्थात् तीर्थंकरकी शिक्षा से, जो बाह्य पथप्रदर्शक या ईश्वर है। इस कहनेका अर्थ यह है कि प्रत्येक आत्माके लिए केवल एक ही वास्तविक ईश्वर है अर्थात् स्वयं उसका जीव, जो गुणोंमें अन्य मुक्त या संसारी आत्माओंके समान है। परन्तु अपने व्यक्तित्वमें उनसे नितान्त पृथक् है। इस ईश्वरको, उसकेलिए आवश्यक है कि वह अपनी पूर्ण शक्तिसे पकड़े। यही जड़ है, जिस पर ईश्वरकी एकता की स्थिति है। और मनुष्यको सावधान किया गया है कि वह इस ईश्वरके साथ किसी और को सम्मिलित न करै। यदि आप इस पर ध्यान देंगे तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि परमात्मापन, अमरत्व, आनंद और पूर्णताके अन्य गुणोंका प्रदायक स्वयं आत्माके अतिरिक्त और कोई नहीं है। कारण कि यह गुण आत्मद्रव्यमें स्वभावसे ही विद्यमान हैं; और किसी अन्य स्थानसे प्राप्त नहीं हो सक्ते हैं। इसी कारणवश यथार्थ ईश्वर की एकता पर ज़ोर दिया गया है। जैसा कि कुरान शरीफ (बाब २२) में बताया गया है कि जो कोई ईश्वरके साथ दूसरे को सम्मिलित करता है वह ऐसा है जैसे कोई आकाशसे गिर पड़े।

अतिरिक्त इस यथार्थ ईश्वरके दो प्रकारके और देवता या ईश्वर हैं जिनकी उपासना संसारमें प्रचलित है। अर्थात्

एक तो वह वास्तविक परमात्मा अथवा तीर्थंकर जो हमारे लिए पूर्णताके आदर्श हैं जिनके चरण कमलोंका अनुसरण कर के हम भी उनकी तरह परमात्मा हो सके हैं। और दूसरे कथानकोंके काल्पनिक देवता, जो जीवनके विविध स्वरूपों और भागोंके रूपक हैं। वह मानुषिक विचारावतरणसे उत्पन्न होने वाले देवी देवताओकी उपासना है; जिसको वर्जित किया गया है, और जो सर्व प्रकारके झगड़ों रक्तपातों और विडम्बनाओं का कारण है। हम आगामी व्याख्यानमें उपासनाके योग्य मार्ग पर विचार करेंगे। परन्तु इस व्याख्यानकी समाप्ति करनेके प्रथम मैं आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करूंगा कि पारसियों के धर्ममें भी अहूरामज़्दाका विचार बहुवचनके भावमें है। हौग (Haug) साहब अहूरावनहो (Ahuraonho) शब्दके सम्बंधमें बताते हैं:—

"इससे........हम प्रत्यक्ष रूपमें देख सके हैं कि अहूरा कोई पद ईश्वरका नहीं है। सुतरां मनुष्यके लिए भी वह व्यवहृत होता है।"

यासना २८ (आयत ६) में कहा है:—

"ऐ अहूरा, इन नियामतोंके साथ हम तुम्हारे रोषको कभी न भड़काएं। ओ मज़्दा! और सत्य और उच्च विचार...... तुम वह हो जो इच्छाओंके पूर्ण करने और शुभ फलोंके देनेमें सबसे बलवान हो।" (अर्ली ज़ोरोअसट्रयेनइज़्म पृष्ठ ३४६)।

यही विचार यासना ५१ (आयत २५) में भी पाया जाता है, जो निम्न प्रकार है:—

"तुम अपने शुभ फल हमको दोगे, तुम सब जो कि इच्छामें एक हो, जिनके साथ, अच्छा विचार धर्माचरण व मजदा एक हैं, प्रणके अनुसार सहायता करते हो जब तुम्हारी उपासना विनयके साथ की जाय।"

पारसी मतकी यह भी शिक्षा है कि उसके पूर्वमें भी सत्य धर्म विद्यमान थे जो उपासनाके योग्य थे। यासना १६ (आयत ३) में आया है (से० बु० ई० भाग ३१ पृष्ठ २५५–२५६):—

"और हम संसारके पूर्व धर्मोंकी पूजा करते हैं जो सत्यकी शिक्षा देते हैं।"

जो और भी विस्मय पूर्ण बात है वह यह है कि अहुराओं की संख्या ठीक ठीक २४ * बताई गई है। (अर्ली ज़ोरो

---

* तुलनाके लिए निम्न लेख ध्यान देने योग्य है:—

"तू (ओ मनुष्य !) वहां उबना पर पहुंच...... मजदाके बनाए हुए मार्ग पर चल कर। उन मार्गों पर चल कर जिनको परमात्माओंने बताया है। चलके उस मार्ग पर जिसको उन्होंने खोला है।"

(वेनडीदाद २१ । ३९; से० बु० ई० भाग ४ पृष्ठ २२७)

यह बात मनको प्रसन्न करनेवाली है कि शब्द तीर्थंकरका शब्दार्थ घाट (यहां संसार सागर=आवागमन) के पार पायाब रास्ता बनानेवाला है।

आस्ट्रियनइजम पृष्ठ ४०२ इत्यादि) । बौद्ध धर्मकी ओर दृष्टि डालने पर बुद्धोंकी संख्या भी २४ ही पाई जाती है । बेबेलोनियाके काउन्सिलर देवताओं (Counseller Gods) की संख्या भी, हमें रोबर्टसन साहबकी मनोरंजक पुस्तक पैगेन क्राइस्ट्स (Pagan Christs) नामक (पत्र १७६) से ज्ञात होता है, २४ थी । परन्तु चूंकि हमको उनकी बाबत बहुत कम परिचय है, इसलिए कोई विश्वसनीय परिणाम इधर वा उधर इस सार्थक संख्यासे नहीं निकाला जा सका है ।

आठवां व्याख्यान।

उपासना।

आजके व्याख्यानमें हम उपासनाके विविध मार्गों पर जो सर्व साधारणमें प्रचलित हैं, विचार करेंगे। वे निम्न प्रकारके हैं:—

(१) प्रार्थना।

(२) यज्ञ-बलिदान।

(३) तीर्थयात्रा।

(४) ध्यान।

(५) विशुद्धता (शौच)।

(६) तप।

इनमेंसे हम प्रत्येक पर पृथक् पृथक् रूपमें विचार करेंगे, जिससे कि इनका यथार्थ भाव प्रकट हो जावे। हम सर्व प्रथम प्रार्थनाको ही लेंगे, जिसका भाव सर्व साधारणकी श्रद्धाके अनुसार किसी ईश्वर वा देवतासे दान एवं प्रसादकी याचना करना है। यह प्रत्यक्ष है कि प्रकृति साम्राज्यमें कहीं कोई प्रार्थना का अलग विभाग नहीं हो सका है। वर्तमानके यूरोपीय समरकी हृदय भेदी घटनायें इस बातको पूर्णतया प्रमाणित करती हैं कि क्षुधापीड़ित दुःखी एवं शोकातुर मनुष्य हृदयोंके आलाप विलापका सुननेवाला कोई न था। प्रत्येक धर्मके अनुयायीयोंने

जिनके धर्ममें प्रार्थनाका विधान है वर्षों प्रत्येक दिवस प्रार्थना-याञ्चा कीं। हिंदू, मुसलमान, बौद्ध, ईसाई, यहूदी आदिने समरके अन्त होनेके लिए अथवा कमसे कम दुःख एव पीड़ाकी घटती के लिए एक साथ प्रार्थना कीं। परन्तु सब फलहीन! और आज भी हम इस समरसे उत्पन्न त्रासजनक फलोंके कटु परिणामोंको चख रहे हैं। वस्तुतः यदि यही परिणाम प्रार्थनाका है, तो वह केवल एक प्रहसन मात्र ही है। परन्तु यथार्थता यह है कि प्रार्थनाका वास्तविक भाव कभी ऐसा न था।

प्रार्थनाके निम्न पदच्छेद हैं:—

(१) किससे याचना की जाय।

(२) कौन याचना करे।

(३) किसकी याचना की जाय।

(४) किस प्रकार याचना की जाय।

इनमेंसे प्रथम पदके विषयमें हम देख चुके हैं कि तीर्थंकर भगवान केवल पूर्ण आप्त हैं। वह न प्रसाद प्रदान करनेवाले हैं, और न प्रार्थना स्वीकार करते हैं। जब कि कथानकों (Mythology) के देवी देवता निरे मनःकल्पित व्यक्ति हैं। अस्तु, अभ्यंतर परमात्माके अतिरिक्त अन्य कोई प्रार्थनाको स्वीकार करनेवाला नहीं है। और वास्तवमे यही अभ्यंतर परमात्मा है जो यथार्थमें हमारी प्रर्थनाओंको स्वीकार करता है। कारण कि जीवनका यह नियम है कि उस पर हमारी निजी श्रद्धाओं एवं

विश्वासोंका प्रभाव पड़ता है, जिसके अनुसार जैसा कोई विश्वास करता है वैसा ही वह हो जाता है। यही कारण है कि ईसूने यह कहा है:—

"इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि जो कुछ तुम प्रार्थनायें करते हो, विश्वास करो तुमको मिल गई, और तुमको मिलेंगी।" (मरकुस ११। २४)।

विश्वास अथवा श्रद्धाका अंश जो बाह्य ईश्वरके सम्बन्धमें नितांत उपयुक्त है अभ्यंतर परमात्माके लिए, जो आत्मज्ञान (अपने स्वाभाविक ज्ञान) से जीवित द्रव्य हो जाता है, पूर्ण रूपमें उपयुक्त है। अतः जिस परिमाणमें मनुष्य इस अभ्यंतर परमात्माका सहारा पकड़ता है उतने ही अधिक परिमाणमें परमात्माके गुणो (स्वाभाविक गुणों) का उसकी आत्मामे विकाश होता है। और उसी प्रकार अद्‌भुत शक्तियाँ भी बढ़ जाती है। अस्तु; ईसू अपने अद्‌भुत कृत्योंके सम्बन्धमें कहते हैं:—

"मैं तुमसे सत्य सत्य कहता हूं कि जो मनुष्य मुझ पर श्रद्धा रखता है; यह कार्य जो मैं करता हूं वह भी करेगा। बल्कि इससे भी बड़े कार्य वह करेगा। कारण कि मैं अपने पिताके पास जाता हूं।" (यहुन्ना १४। १२)।

उपवास और प्रार्थनासे आत्मशक्तिकी वृद्धि होती है। जैसा ईसूने अपने शिष्योंको, उनका अपनी फलहीनताका कारण पूछने पर जब वह एक अशुद्ध आत्माको निकालनेमें फलहीन रहे, बताया:-

"यह किस प्रार्थना और उपवासके अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार नहीं निकल सकी।" —(मरक़स ९। २९)

परन्तु इन विविध लेखोंमें विशेष अर्थको लिए हुए वह है जो ईसाकी अद्भुत कृत्य करनेकी शक्ति और उसके स्वदेशके सम्बंधमें मरक़सकी इन्जीलके छट्ठे अध्यायकी पांचवीं आयतमें अंकित है:—

'और वह कोई अद्भुत कृत्य वहां न दिखा सका, इसके अतिरिक्त कि थोड़ेसे रोगियों पर हाथ रख कर उन्हे अच्छा कर दिया।'

"और उसने उनकी अश्रद्धा पर विस्मय प्रकट किया।"

रोगियोंको स्वस्थ करते समय ईसू उनसे अवश्यमेव पूछ लिया करता था कि उनको विश्वास है। और स्वस्थ करनेके पश्चात् उनको सदैव यह बता दिया करता था कि उनके विश्वासने ही उनको स्वस्थ बना दिया है। इससे यह प्रकट होता है कि अद्भुत कृत्योंका एक नियम है जो अद्भुतकृत्यकर्त्ताके व्यक्तित्व वा पद्से नितान्त विलग है। यह अवश्य कभी कभी हो जाता है कि हम जिस वस्तुकेलिये प्रार्थना करते है वह प्राप्त हो जाती है। परन्तु यह मनुष्योंके किसी मुख्य विभाग वा जातिके लिए ही मर्य्यादित नहीं है। और मृतकोंकी कब्रों, पाषाणों एवं वृत्तोंतकके उपासकोंकी प्रार्थनाएं किसी २ समय इस प्रकार "स्वीकृत" हुई हैं। वस्तुतः वह सब समय समय

(इत्तिफाक)-की बात है, जिसका अर्थ यह है कि जिस वस्तुके लिए प्रार्थना की गई थी वह निश्चित प्राप्त होनेवाली थी। और उसका होना आवश्यक था, चाहे कोई उसकेलिए प्रार्थना करता या नहीं। जिससे कि इसका प्रार्थनाके साथ समकालीन भावमें सत्तामें आना किसी प्रकार भी एक प्रार्थना-फल-प्रदायक एजेन्सीका कर्तव्य नहीं माना जासक्ता है। इस संसारमें विशेपतया सामयिक घटनाएँ ऐसी हुआ करती हैं जिनको पल्ले दर्जेकी न्यायकी उपेक्षा करनेवाले ईश्वरवादी भी प्रार्थनाका फल नहीं मान सके। जैसे किसी शत्रु की मृत्युका हो जाना, उस पर कष्ट-विपदाओंका आ जाना। परन्तु यदि हम इन घटनाओंको प्रार्थनाका फल इस कारण नहीं मान सक्ते हैं कि ऐसा करनेसे इनके कर्त्ताकी मान और मर्यादामें धब्बा लगता है, तो हमारे पास कौनसा प्रमाण ऐसा है जिसके आधार पर हम किसी अन्य घटनाको ईश्वरीय एजेन्सीका कृत्य समझ लें?

यह तो प्रथम व्याख्याके सम्बन्धमे हुआ। अब द्वितीयके सम्बंधमें जो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि कौन प्रार्थना-याञ्चा कर सक्ता है? मैं विचार करता हूं कि आप मुझसे इस बात पर सहमत होंगे कि जब कि यथार्थमें प्रार्थनाको स्वीकृत करनेवाला अभ्यंतर परमात्मा है, तब केवल वह मनुष्य ही जो उसका भक्त है उससे प्रार्थना-याञ्चा करनेका अधिकारी है। अन्य मनुष्य जो उसकी इच्छानुसार नहीं चलते वे कपटी और पाखण्डी हैं। वे

अपने परमात्माको नहीं जानते हैं। और उनकी प्रार्थनायें स्वीकृत नहीं हो सक्तीं हैं। जीवन (Life) का इनके साथ क्या बरताव होता है इसको इन्जीलके प्राचीन अहदनामेकी (Proverbs) पुस्तकमें (देखो अध्याय १ आयत २८-२९) निम्नलिखित प्रबल शब्दोंमें बताया गया है:-

"तब वे मुझको पुकारेंगे, पर मैं उत्तर न दूंगा। वह सवेरे मुझे ढूंढने पर मुझे न पायेंगे।

"कारण कि उन्होंने ज्ञानसे द्वेष रक्खा। और प्रभूके भयको हृदयमें स्थान न दिया।"

पुनः भी कहा है:—

'प्रभू पापात्माओंसे दूर है। पर वह सत्यानुयायियोंका प्रार्थना सुनता है" (Proverbs, १५।२९)।

पापात्माके नेत्र वाह्य इच्छाओं और विषयवासनाओंके जगतकी ओर लगे हुए हैं, जब कि जीवनका राज्य अभ्यंतरमें अवस्थित है। इसके विपरीत धर्मातमा मनुष्य सत्य-धर्मनिष्ठ कार्य्य करनेवाला है। और धर्मनिष्ठ कार्य्य परमात्माकी इच्छा है। अर्थात् वह कार्य्य है जो जीवनको पसन्द है। अस्तु; प्रभू पापात्माओंसे दूर है, और सत्यानुयायी धर्मातमाओंकी प्रार्थना सुनता है। फिर वह मनुष्य जो जीवनसे प्रार्थना करे उसके लिए आवश्यक है कि वह सम्यक् श्रद्धा रखता हो अर्थात् उस को जीवनके परमात्मा होनेकी श्रद्धा हो, कारण कि यह कहा गया है।—

"वह जो अपने कानको फेर लेता है कि धर्मको न सुने, उसकी प्रार्थना भी द्वेषमय होगी।" (Proverbs २८ । ६)

प्रार्थना करनेवालेको हिंसासे भी दूर रहना चाहिये कारण कि इन्जीलमें लिखा है (यशैयाह १ । १५):—

"जब तुम अपने हाथ फैलावोगे, तो मैं अपने नेत्र बन्द कर लूंगा। हां! जब तुम प्रार्थनापर प्रार्थना करोगे तो मैं न सुनूंगा। तुम्हारे हाथ तो रक्तसे भरे हैं।"

तब सम्यक् श्रद्धा, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र प्रार्थनाके लिये आवश्यक हैं। अन्य मनुष्योंकी प्रार्थना याचना करना निष्फल है।

तृतीय पदच्छेद यह है कि प्रार्थनामें किस वस्तुकी याचना की जावे। इसका कुछ कुछ उत्तर द्वितीय पदच्छेदके विवेचनमें दे दिय गया है कोई वस्तु धर्म्मके विपरीत न होनी चाहिए। और न सम्यक्श्रद्धाके विपक्षमें। सम्यक्श्रद्धालुओंको केवल अपने "आकाशीय पिता" (देखो लूकाकी इन्जील बाब २-आ० ४६) के कार्य्योंकी ओर अग्रसर रहना चाहिए। केवल यही एक वस्तु है जो हम जीवन से याचना कर सक्ते हैं। धन सम्पत्ति, पुत्र पौत्र, सांसारिक उपभोग वा शत्रुओंकी नष्टताकेलिए प्रार्थना करना वर्जित है। इनसे बुरे कर्म्मोंका बन्ध होता है। और वे हमको परमात्मासे दूर करनेवाले हैं। निम्नलिखित इन्जीलके वाक्योंमें भी ईसूके कहनेका यही भाव था:—

"कोई मनुष्य दो प्रभुओंकी सेवा नहीं कर सक्ता, कारण कि या तो वह एकसे द्वेष रक्खेगा और दूसरेसे प्रेम। अथवा एकसे मिला रहेगा, और दूसरेकी उपेक्षा करेगा। तुम परमात्मा और धन दोनोंकी सेवा नहीं कर सक्ते।

"अस्तु; मैं तुमसे कहता हूं कि न अपने प्राणोंकेलिए चिन्ता करो कि हम क्या खावें या क्या पीवें। न अपने शरीरके लिए कि हम क्या पहिनें। क्या जीवन भोजनसे और शरीर वस्त्रोंसे उत्तम नहीं है।" (मत्ती ६। २४-२५)।

ईसूके बताये हुए प्रार्थनाका वक्तव्य भेदसे भरा हुआ है:—

"ऐ हमारे पिता! तू जो आकाशमें है। तेरा नाम पवित्र माना जावे। तेरा राज्य आवे। तेरी इच्छा जैसे आकाशमें पूर्ण होती है पृथ्वी पर हो। हमारी रोजकी रोटी आज हमे दे। और जिसतरह हम अपने कर्जदारोको मुक्त करते हैं, तू भी हमारे क़र्जसे हमें मुक्त कर दे। और हमें लालचमें न पड़ने दे बल्कि पापोंसे बचा, कारण कि राज्य और शक्ति और प्रभुत्व अनन्तकाल तक तेरा है। आमीन!"

(मत्ती ६। ९-१३)

विश्वसतः यह प्रार्थना नहीं है सुतरां निम्नोल्लिखित बातोंका समुदाय है:—

(१) जीवनकी स्तुति (या गुणवर्णन)।

(२) उसके राज्यके विकाशकी आशा, और एक नूतन

क्रमका प्रारम्भ, जिसमें जीवनकी इच्छाका पृथ्वी पर इस प्रकार पूरा होना है जैसे वह आकाश पर होती है।

(३) रोजाना केवल पेट भरनेकेलिए रोटीकी आकांक्षा, अर्थात् वास्तवमें व्यक्तिगत सम्पत्ति व प्रभुताका हृदयसे निरोध करना।

(४) पापोंका पश्चात्ताप। और

(५) भविष्यके पाप कृत्योंका भय। और पापसे मुक्ति पाने की उत्कट इच्छा। ईसूमसीहकी बताई हुई प्रार्थनाका ऐसा अर्थ है। परन्तु यह तो मात्र जैन सामायिकका फोटू है। जिसको परमात्मा महावीरने प्रति दिवस ध्यान करनेकेलिए करीब दो हजार छैसौ वर्ष हुए अपने अनुयायियोंको सिखाया था।

सामायिकके अंग जैनशास्त्रोंके अनुसार निम्न प्रकार हैं:—

(१) पूर्वकृत पापोंका पश्चाताप।

(२) भविष्यमें पापोंसे बचनेकी भावना।

(३) व्यक्तिगत मोह एवं द्वेषका त्याग।

(४) तीर्थंकरके ईश्वरीय गुणोंकी स्तुति, जो हमारे लिए आदर्श हैं।

(५) किसी मुख्य तीर्थंकरकी उपासना, कि जिसका जीवन चरित्र हमारे जीवनको पवित्र बनानेका द्वार है कारण कि वह स्वयं पापोंकी अवस्थासे परमात्मावस्थाके उच्चतम पदको प्राप्त हुआ है।

(६) शरीरसे मनको हटाना और उसको आत्मामें लगाना।

इनमेंसे प्रथमके दो अंग तो पापोंको काटनेवाले हैं। तृतीय हृदयसे विषयवासनाको दूर करता है, चौथा हृदयके ऊपर आत्माके परमात्मापनकी छाप डालता है और उत्कृष्टताके उस उच्चतम शिखिरको प्रकट करता है जहाँ आत्मा पहुंच सकती है। पाँचवेका अर्थ एक जीवित आदर्शके चरणपादुकाओंका अनुकरण करनेसे कर्मोंसे छुटकारा पाना है और छट्ठा आत्माके स्थानपर शरीरको ही मनुष्य माननेके भ्रमको दूर करता है और इन्द्रियलोलुपताको द्रवीभूत करता है।

मुझको इस क्रममें यह बताना चाहिये कि इन्जीलके ईश्वरीय राज्यका भाव, जिसके देखनेके लिए ईसाके भक्त लालायित हैं, इसके अतिरिक्त कि आत्माका परमात्मापन प्रकट हो, और कुछ नहीं है। उस राज्यकी प्रशंसा ईसाने एक स्थलपर इसप्रकार की थी:—

"ईश्वरका राज्य प्रत्यक्षतया नहीं आता है और लोग यह न कहेंगे कि देखो! यहां है अथवा देखो! वहाँ है, कारण कि ईश्वरका राज्य तुम्हारे भीतर है।"

(लूका १७। २०-२१)

अब हमारे भीतर जो कुछ है वह केवल जीवन है। अस्तु; ईसाइयोंकी प्रार्थनाके इस पदका कि 'तेरा राज्य आवे' वास्तवमें यही अर्थ है कि ईसाका भक्त अपनी ही आत्मिकशक्तिके विकाशका इच्छुक है।

अब मैं आपको मुसलमानोंकी प्रार्थनाका विषय, जिसमेंसे वह भाग जो केवल उनके पैगम्बर साहबसे सम्बंधित था, छोड़ दिया गया है, बताऊंगाः—

'मैंने पवित्र हृदयसे केवल परमात्मासे प्रार्थना करनेका प्रण किया है।

परमात्मा बड़ा है।

ऐ परमात्मा! विशुद्धता तेरे लिये है।

तेरे लिए स्तुति हो।

तेरा नाम बड़ा है।

तेरी उत्कृष्टता बहुत विशाल है।

तेरे अतिरिक्त अन्य कोई देव नहीं है।

"मैं परमात्माके निकट शैतानसे रक्षाकी इच्छा करता हूं।

परमात्माके नामसे जो अति कृपालु और दयावान है।

स्तुति परमात्माकी है जो सर्व जगतोंका स्वामी है।

अति कृपालु और अति दयालु।

स्वामी है रोजे जज़ाका।

ऐ परमात्मा! तेरी ही हम उपासना करते हैं और तुझसे ही सहायता चाहते हैं।

दिखा हमको सीधा मार्ग उन लोगोंका मार्ग जिनपर तूने कृपाकोर की है।

जो न वह हैं जिनपर तू क्रोधित हुआ है और न भटकनेवाले हैं। आमीन!

"कह दो कि वह परमात्मा एक है। परमात्मा अनादिनिधन है। न उससे कोई उत्पन्न हुआ और न वह किसीसे उत्पन्न हुआ। और न कोई उसके समान है।

"परमात्मा वडा है। मैं अपने उत्कृष्ट परमात्माकी विशुद्धताकी प्रशंसा करता हूं।

मैं अपने उत्कृष्ट परमात्माकी विशुद्धताकी प्रशंसा करता हूं।

"परमात्मा उसको सुनता है जो उसकी प्रशंसा करता है। ए मेरे परमात्मा! प्रशंसा तेरे लिए है। परमात्मा वड़ा है।

"मैं अपने उत्कृष्ट परमात्माकी विशुद्धताकी प्रशंसा करता हूं।

"मैं अपने उत्कृष्ट परमात्माकी विशुद्धताकी प्रशंसा करता हूं।

"मैं अपने उत्कृष्ट परमात्माको विशुद्धताकी प्रशंसा करता हूं।

"मैं परमात्माकी शक्तिसे उठता वैठता हूं। परमात्मा वड़ा है।

"मैं अपने उत्कृष्ट परमात्माकी विशुद्धताकी प्रशंसा करता हूं।

मैं अपने उत्कृष्ट परमात्माकी विशुद्धताकी प्रशंसा करता हू।

"मैं अपने उत्कृष्ट परमात्माको विशुद्धताकी प्रशंसा करता हूं।

मैं परमात्मा, अपने प्रभूकी क्षमा याञ्चा करता हूं।

मैं उसके समक्ष पश्चाताप करता हूं। परमात्मा वड़ा है।

सर्व जिह्वाकी उपासना परमात्माके लिए है। और सर्व उपासना शरीरकी भी परमात्माके लिए है और दान भी।

"परमात्माकी शांति तुझ पर हो, ऐ रसूल! और परमात्माकी दया एवं प्रसाद तुझ पर हो।

शांति हो हम पर और परमात्माके धर्मालु दासो पर ।
"मैं साक्षी देता हूं कि कोई अन्य प्रभू नहीं सिवाय परमात्माके।
ऐ परमात्मा ! तेरे लिये प्रशंसा हो और तू बड़ा है।
ऐ परमात्मा हमारे प्रभू ! हमको इस जीवनके सुख और
नित्यजीवनके सुख भी प्रदान कर।
हमको नर्कोंके दुःखोंसे बचा।
"परमात्माकी शांति और दया तुम्हारे साथ हों।"
"परमात्माकी शांति और दया तुम्हारे साथ हो।"
—(देखो ह्युजेज डिक्सनरी ओफ इसलाम)।

यहां भी स्तुति, पश्चाताप, पापोंका भय, उन महात्माओंके चरण चिन्हो पर चलनेकी अभिलाषा, जिन पर जीवन दयालु हुआ है, और जो भ्रममें नहीं पड़ते हैं, जीवनको एकता, साधुता और जिह्वा एवं शरीरके ईश्वरकी उपासना और धनके दानमें व्यय करनेमें दृढता ही पाए जाते हैं।

बौद्ध धर्मकी प्रार्थना भी इसी ढंग पर एक प्रकारके इजहार और एक प्रकारको अभ्यंतर भावनाका समुदाय है। जिसमे इजहार श्रद्धाका है। और भावना ध्येय एवं उत्साहकी है। इजहारकी अपेक्षा बौद्धमतकी प्रार्थनामें बुद्धको वन्दना, उसके सत्य मार्ग और संघकी विनय, विशेषतया उपासना और प्रशंसा करनेके रूपमें होती है, जो श्रद्धाकी दृढ़ताको भी साथ ही साथ प्रकट करती है। और यथार्थ ध्येयकी भावनाके रूपमें वह नैतिक कमताइयोंको दूर करनेकेलिए प्रयत्नके पूर्ण प्रण वा भावके रूपको

धारणा करती है। (देखो इ० रि० ए० जिल्द १० पृष्ठ १६७)।

इसकी समानतामें हिन्दू गायत्री एक अति साधारण चीज है:-

"हम ध्यान करते हैं इस आकाशीय जीवित करनेवाले (सूर्य्य) की प्रभुता पर। वह हमारी बुद्धिको खोले।"

यह प्रार्थना सूर्य्यसे प्रकाश एवं ज्ञानके लिए है। सूर्य्यकी उपासनाका अर्थ अपने ही आत्माकी उपासनाका है, कारण कि मैत्रायण उपनिषद्में इस प्रकार लिखा है:—

'सूर्य्य वाह्य आत्मा है। और प्राण (जीवन) अभ्यंतर आत्मा है। एकके कार्य्यकी दूसरेके कार्य्यसे समानता मानी गई है। अस्तु; सूर्य्य पर ओ३मके सदृश विचार कर। और उसको आत्माके साथ लगाले। (ए० हि० भाग जिल्द १ पृष्ठ ४७२)।

पारसियोंकी प्रार्थनाका उल्लेख प्रथम व्याख्यानमें किया जा चुका है। उसका अनुवाद निम्न प्रकार है:—

'इस कारण अहू (आकाशीय प्रभू) का चुनाव होना है, इसलिए रतु (सांसारिक महात्मा) प्रत्येक नियमपूर्ण विद्वत्तासे हृदयकी पवित्रताका उत्पादक होना चाहिए, और जीवनके कृत्योंका जो मज़दाके लिए किए जांय। और राज्य अहूराका हो।

जिसने अहू वा रतूको दयाद्रोंका सहायक स्थित किया है (इ० रि० ए० भाग १ पृष्ठ १-२३८)

हॉग साहब अपनी पुस्तक (एस्सेज़ ओन पार्सीज (Essays on Parsis) के पत्र १४१ पर इसका अर्थ और भी विशेष प्रकट रूपमें निम्नरूपसे लिखते हैं:—

"इसलिए कि आकाशीय परमात्माका चुनाव होना है।
ऐसे ही एक सांसारिक महात्माको पवित्र विचारोंका देनेवाला,
और पवित्र जीवन कृत्योंका जो मजदाके लिए किए जावें बतानेवाला होना चाहिए।
और राज्य अहूराके लिए है जिसको मजदाने;
ग़रीबोंका सहायक नियत किया है।"

यहां भी भोगो (सुख) की प्राप्तिके लिए भिक्षा मांगनेका कोई प्रश्न नहीं है, सुतरां केवल आकाशीय प्रभु वा पथप्रदर्शक और संसारी महात्माके आत्मिक गुणोंका है।

अतः यह प्रकट है कि शब्द प्रार्थना इन प्रार्थना सम्बंधी लेखों एवं वक्तव्योंके रूपमें अर्थहीन शब्द है। और प्राचीन कालमें इसका अर्थ कभी भी सांसारिक सुख वा प्रसादकेलिए भिक्षा याञ्चा करनेका न था।

चतुर्थ पदच्छेदके विषयमें अर्थात् प्रार्थना क्योंकर करनी चाहिए यह प्रत्यक्ष है कि प्रति दिवस ध्यानमें वे सब बातें सम्मिलित होनी चाहिए जो श्रद्धा, धर्म और मनकी शांतिकी वर्धक हैं। अब श्रद्धा, हृदय पर इस विचारके जमानेसे कि आत्मा

स्वयं परमात्मा है, और उन महात्माओंके जीवनचरित्रोंको जो स्वयं परमात्मा हो गए हैं, विनयके साथ पढ़नेसे बढ़ती है। धर्म पापोंसे बचनेसे प्राप्त होता है। अर्थात् अपने पापोंको स्वीकार करनेसे और उनका पश्चाताप करनेसे। और शांति राग और द्वेषको हृदयसे निकाल डालनेसे, और शारीरिक इच्छाओ एवं विषयवासनाओंके नष्ट करनेसे। यह सब बात जैनधर्मके सामायिकमें खयालमें रक्खी गई हैं, जो इसी कारण-वश ध्यान करनेका सर्वोत्तम मार्ग है।

मुझे अब इस विषय पर विशेष कहनेकी आवश्यक्ता नहीं है। मैं इसे भगवान अमितगति आचार्य द्वारा कृत सामायिक पाठको, जो भाषा शैलीकी उत्तमत्ताकी अपेक्षा भी एक उत्कृष्ट लेख है, उद्धृत करके समाप्त करूँगा। इस पाठका अंग्रेजीमें अनुवाद बाबू अजितप्रसादजीने सन् १९१५ में किया था। और मैंने उससे बहुत कम भेद किया है।

श्रीसामायिक पाठः।

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥ १ ॥

हे परमात्मा [जीवन]! मुझे ऐसा बना दे कि मैं सर्व प्राणियोंमे मैत्री भाव रक्खूँ। गुणधारी सत्पुरुषोंकी शुभ संगतिमें हर्षित होऊं। उन पर, जो दुःख दर्दसे पीडित हैं, दया करूं और विपरीत भाववालोंके प्रति समता धारण करूं।

शरीरतः कर्त्तुमनन्तशक्तिं विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम् ।
जिनेन्द्र ! कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥

हे जिनेन्द्र ! आपके प्रसादसे मुझमें वह शक्ति उत्पन्न हो जावे कि मैं दोषरहित और अनन्त शक्तिधर आत्माको शरीरसे इसप्रकारसे भिन्न कर सकूं जैसे म्यानसे खड्ग अलग किया जाता है ।

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः, समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ! ॥ ३ ॥

हे नाथ ! मेरा मन मोहको विध्वंस करके सर्व दशाओंमें— सुख एवं दुःखमे, शत्रु मित्रमे, वन और गृहमे, लाभ एव हानिमे, योग्य और अयोग्यमें सदैव समान रहे ।

मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निपाताविव विम्बिताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ४

हे मुनीश ! आपके ज्ञानमयी चरण मेरे-हृदयमें अंधकारको मिटानेवाले दीपककी भाँति सदैव ऐसे बने रहें, मानो वे वहाँ एकमएक हो गये हो, कीलित हो गए हो गाढ़ दिए गए हों, स्थिर हो गए हों, अंकित हो गए-हो ।

एकेन्द्रियाद्या यदि देव ! देहिनः, प्रमादतः संचरता इतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मलिता निपीडिता, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा

हे नाथ ! यदि इधर उधर फिरनेमें मैंने किसी एक वा अधिक इन्द्रियधारी प्राणीको क्षति पहुंचाई हो, काट डाला हो,

वा कुचल दिया हो, वा मल दिया हो तो वह मेरा दुष्कृत्य क्षमा होवे।

विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्त्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं. तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो! ६

हे प्रभु! यदि मोक्षका मार्ग छोड़कर मैंने काम क्रोधादिके वशमें विवेक रहित हो अपने चारित्रको भंग किया हो तो ऐसे मेरे दुष्कृत पाप दूर हों।

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषायनिर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलम् ७

मनसे वचनसे वा कामके वश किए गए उस पापको जिससे संसारके समस्त दुष्परिणाम आविर्भूत होते हैं, मैं आत्मज्ञान, निन्दा, गर्हा, आलोचनसे इसप्रकार नाश करता हूं जिसप्रकार वैद्य मंत्रोंके गुणोंसे विषका संहार करता है।

अतिक्रमं यं विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्रकर्म्मणः।
व्यधादनाचारमपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये॥ ८॥

हे जिन! मतिभ्रष्ट हो जो कुछ मैंने अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार वा अनाचार किया है उससे मैं प्रतिक्रम कर्मद्वार अपनेको शुद्ध करता हूं।

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं; व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्त्तनम्, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तिताम् ९

हे प्रभु! मनकी शुद्धिको विकारमय करनेको अतिक्रम

कहते हैं। शीलव्रतोंके उल्लंघन करनेको व्यतिक्रम कहते हैं। विषयोंमें फंसनेको अतीचार कहते हैं और इनमें पूर्णतया लिप्त हो जानेको अनाचार कहते हैं।

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥१०॥

हे सरस्वती (जिनवाणी) देवी! यदि मैंने कोई ऐसी बात कही हो जिसमें अर्थ, मात्रा, शब्द वा वाक्यकी हीनता हो तो मुझे क्षमा कर। और मुझे पूर्ण ज्ञान दे।

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः
चिंतामणिं चिंतितवस्तुदाने, त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥११॥

हे देवी! तुम चिंतामणि रत्नके समान मनचिंतित वस्तु को प्रदान करनेवाली हो। इसलिए मैं तुम्हारी पूजा करके बुद्धि, मनपर अधिकार, शुद्ध भाव, आत्मस्वरूपकी प्राप्ति और मोक्ष सुखोंकी सिद्धिको प्राप्त करूं।

यः स्मर्यते सर्व्वमुनीन्द्रवृन्दैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १२ ॥

जिसका सुमरण सर्व साधुओंके समूह करते हैं, जिसकी भक्ति सब राजा महाराजा किया करते हैं, वेद, पुराण और शास्त्र जिसके गुण गाया करते हैं, वह देवोंका देव मेरे हृदयमें निवास करो।

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्तसंसारविकारबाह्यः ।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १३ ॥

जिसका स्वभाव ज्ञान और सुख है, जो संसारके सर्व दोषोंसे दूर है, जो समाधिमें जाना जाता है और जो परमात्मा कहलाता है। ऐसा देवोंका देव मेरे हृदयमें निवास करे।

निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालम् ।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥

जो संसारके सर्व दुःखोंको दूर करता है, संसारके समस्त वस्तुओंको जानता है और जिसको योगी देख सकते हैं ऐसा देवोंका देव, मेरे हृदयमें वास करे।

विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद् व्यतीतः ।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१५॥

जिसने मुक्तिका मार्ग दिखलाया है, जो जन्ममरणके दुःखों से, जो कर्मोंसे होते हैं, मुक्त है, जो तीनो लोकोंको देखता है और जो शरीररहित निर्दोष है, ऐसा देवोंका देव मेरे हृदयमें वास करे।

क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गाः, रागादयो यस्य न संति दोषाः ।
निरिंद्रियो ज्ञानमयोऽनपायः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १६ ॥

जिसमें राग द्वेष नहीं है, जिनमें कि सब संसारी आत्मायें फंसी हुई हैं। जिसके ज्ञानका पार नहीं पाया जा सकता है।

और जो इन्द्रियरहित है, ऐसा देवोंका देव मेरे हृदयमें वास करे।

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबंधः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स-देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१७॥

जो सर्व हितैषी होनेके कारण सर्व स्थानोंमें विद्यमान है, जो पूर्ण है, सर्वज्ञ है, जिसने सर्व कर्मोंको नाश कर डाला है और जिसका ध्यान करनेसे सर्व कष्ट पलायमान हो जाते हैं, ऐसा देवोंका देव मेरे हृदयमें वास करे।

न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैः, यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरंजनं, नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

मैं उस परमदेवकी शरण लेता हूं जिसको कर्मोंका मैल किसीप्रकार छू नहीं सकता है, जिसप्रकार अन्धकारपटल सूर्यको मलीन नहीं कर सकते हैं। जो निर्दोष है, अमर है, और एक है एवं अनेक है।

विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १९ ॥

मैं उस परमदेवकी शरण लेता हूं जो अपनी आत्मामें स्थित हो ज्ञानका प्रकाश करता है और जगतको इसतरह दीप्तवान करता है कि सूर्य नहीं कर सका।

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥

मैं उस परमदेवकी शरण लेता हूं जिसके देखनेसे समस्त संसार प्रत्यक्ष दीखने लगता है। जो पवित्र, धन्य, शान्त और आदि अन्त रहित है।

येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा,-विषादनिद्राभयशोकचिन्ताः ।
क्षयाऽनलेनेव तरुप्रपञ्च,-स्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

मैं उस परमदेवकी शरण लेता हूं जिसने इच्छा, मद, विषाद, कष्ट, निद्रा, भय, दुःख और शोकको ऐसे जला दिया है जैसे कोई वन अग्निसे भस्म हो जावे।

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी,
विधानतो नो फलको विनिर्म्मितम् ।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः,
सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥ २२ ॥

ध्यान करनेके लिए पाषाण शिला, तृण वा काष्ठ अथवा पृथ्वीके आसनकी आवश्यक्ता नहीं है। विद्वानोंके लिए वह आत्मा ही स्वयं पवित्र आसन है जिसने अपने शत्रुओं अर्थात् विषयवासनाओंका विध्वंस कर दिया है।

न संस्तरो भद्र । समाधिसाधनं,
न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं,-
विमुच्य सर्व्वामपि वाह्यवासनाम् ॥ २३ ॥

हे मित्र ! आत्मध्यानके लिए न किसी आसनकी, न जगत पूजाकी और न संघरूप पूजाकी आवश्यक्ता है। अपने हृदयसे बाह्य वस्तुओंकी आकाङ्क्षाको निकाल दे। और प्रत्येक समय अपने ही रूपमें लवलीन रह।

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था,
भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं,
स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र ! मुक्त्यै ॥ २४ ॥

"कोई बाह्य वस्तु मेरी नहीं है। मैं कभी उनका न होऊं।" ऐसा विचार कर और वस्तुओंसे सम्बंध त्याग दे। और हे मित्र ! यदि तू मोक्षका खोजी है तो अपने ही में लवलीन रह।

आत्मानमात्मन्यवलोक्यमान,-स्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः ॥
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम् ॥

तू जो अपनेको अपनी आत्मामें देखता है, पवित्र है। और दर्शन एवं ज्ञानकी मूर्त्ति है। जो साधु मनको एकाग्र करता है वह समाधिको प्राप्त होता है चाहे वह कहीं हो।

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥

मेरी आत्मा सदैव स्वभावसे एक, नित्य, विशुद्ध और सर्वज्ञ है। अवशेष सर्व पदार्थ मेरेसे पृथक् हैं, अनित्य हैं और कर्म्मोंसे उत्पन्न हुए हैं।

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः ।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥

जो स्वयं अपने शरीरसे ही सम्बंधित नहीं है उसका संबंध पुत्र, पत्नी एवं मित्रमें कैसे हो सका है ? यदि शरीरकी खाल उतार ली जावे तो उसके साथ लगे हुए छेद शरीरमें कैसे रह सके हैं।

संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी ।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥

शरीरके सम्बंधके कारणवश आत्माको अनेक प्रकारके दुःख उठाने पड़ते हैं। इसलिए जो कोई मोक्षको प्राप्त करना चाहता है उसे मनसा वाचा कर्मणा इस शरीरके सम्बंधको तोडना चाहिए।

सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं, संसारकान्तारनिपातहेतुम् ।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥

अपने आपको शङ्काओसे, जिनके कारण तू संसाररूपी वनमें भटक रहा है, छुडा । अपने आपको पृथक् और परमात्माके ध्यानमें लीन जान ।

स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥

मनुष्य, अपने पूर्व जन्ममें जो शुभ अशुभ कृत्य करता है

उन्हींका फल इस जन्ममें पाता है। यदि यह माना जाय कि इस जन्ममें यह सर्व किसी अन्यका दिया हुआ है तो अवश्य ही अपने किए हुए कर्म्म निष्फल ठहरें।

निजार्जितं कर्म्म विहाय देहिनो,
न कोपि कस्यापि ददाति किंचन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः,
परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम् ॥ ३१ ॥

"अपने कर्म्मोंके अतिरिक्त अन्य कोई किसीको कुछ नहीं देता है।" इसका निश्चय मनसे विचार कर और इस विचारको छोड़ दे कि कोई और देनेवाला है।

यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः, सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः ।
शश्वदधीते मनसि, लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥ ३२ ॥

जो लोग परमात्माका सदा ध्यान करते हैं, जिसकी कि वंदना अमितगति (अपरिमित ज्ञानके धारी) आचार्य करते हैं जो सर्व पदार्थोंसे पृथक् है और जो पूर्णतया स्तुतिका अधिकारी है वह उस उच्च आनन्दको प्राप्त करते हैं जो मोक्षमें मिलता है।

अब मैं बलिदान—यज्ञसम्बंधी विषयकी ओर ध्यान देता हूं, जो अब भी अधिकांश धर्म्मोंमें प्रचलित है। इस अवसर पर मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं इस हिंसामय क्रियाके प्रारंभका पता लगाऊं परन्तु हम यह बात देखेंगे कि वह:उन

व्याख्यानोंमेंसे है जिनके समझनेमें मनुष्योंने भारी धोखा खाया है। इस विषय पर विशेष विवेचन करनेकी आवश्यकता नहीं है। उन्हीं लोगोंके पवित्र ग्रंथोंके कुछ सारांश, जो बलिदान करते हैं, यहां इस भ्रमको दूर करनेके लिए उपयुक्त होंगे।

प्राचीन अहदनामे इन्जीलकी निम्नलिखित आयतें बलिदान के विषय पर विशेष प्रकाश डालती हैं:—

(१) "क्या प्रभू भूनी हुई बलिसे अथवा यज्ञमें होमित वस्तुसे खुश होता है? या इससे कि उसकी आज्ञा मानी जावे। देख! कि आज्ञा मानना बलिदानसे और उसकी आज्ञाको सुनना मेंढ़ोंकी चर्बीसे उत्तम है।" (१ सेम्युएल १५। २२)।

(२) "मैं तेरे घरका बैल न लूँगा, न तेरे वाढ़ेका बकरा। "कारण कि वनके सर्व पशु प्राणी मेरे हैं। और पर्वतके पशु सहस्त्रों।

"यदि मैं भूखा होता तो तुझसे न कहता। कारण कि जगत और उसके प्राणी मेरे हैं।

"क्या मैं बैलोंका मांस खाऊंगा। और उनका रक्त पीऊंगा?

'तू धन्यवाद परमेश्वरके समक्ष उपस्थित कर। और परमोत्कृष्ट प्रभूके निकट अपने प्रणों (व्रतों=Vows) को पूर्ण कर।" (ज़बूर ५।६-१५)।

(३) "हे प्रभू ! मेरे ओठोंको खोल दे, तो मुख तेरी स्तुति वर्णन करेगा।
"कि तू बलिदानसे खुशी नहीं होता, नहीं तो मैं देता। भूनी हुई बलिमें तुझे आनन्द नहीं है।"

(जबूर ५१। १५-१६)

(४) "प्रभू कहता है तुम्हारे बलिदानकी अतिसे मुझे कौन काम ? मैं मेंढोंकी भूनी हुई बलिदानसे और मोटे बछड़ोकी चरवीसे भरपूर हूं। और बैलों और भेड़ों और बकरोका रक्त नहीं चाहता हूं।......झूठे चढावे मत लाओ। लोबानसे मुझे नफरत है, नूतन चन्द्र और सबत और ईदी जमायतसे भी। मैं ईद और अधर्म दोनोंको सहन नहीं कर सक्ता हूं। मेरा मन तुम्हारे नूतन चन्द्रमाओ और तुम्हारी ईदोंसे क्लेशमय है। वे मुझको भार (के सदृश कष्टसाध्य) हैं। मैं उनको सहन करनेसे थक गया हूं। और जब तुम अपने हाथ फैलाओगे तो मैं तुमसे अपने नेत्र छुपा लूंगा। हां ! जब तुम प्रार्थना करोगे तो मैं नहीं सुनूंगा। तुम्हारे हाथ रक्तसे भरे हुए हैं।" (यशैयाह १। ११-१५)।

(५) "वह जो बैलको बलिदान करता है ऐसा है जैसे उसने एक मनुष्यको मार डाला। और वह जो एक मेमनेको बलिदान करता है ऐसा है जैसे उसने एक

कुत्तेकी गरदन काट डाली हो। जो बलि चढाता है ऐसा है जैसे उसने सूअरका रक्त चढ़ाया हो। हां! उन्होंने अपने, अपने मार्ग चुन लिए हैं और उनके हृदय उनके द्वेषमय दुष्कृत्योंमें संलग्न हैं।"

(यशैयाह ६६ ३)

(६) "मैंने दयाकी इच्छा (आज्ञा) की थी न कि बलिदान की और परमात्मा ज्ञानका इच्छुक हुआ था। भूनी हुई बलिदानके स्थानपर।" (होसिया ६।६)

(७) किस अर्थके हेतु शेवासे लोवान और एक दूरस्थ देशसे सुगंधित ईख मेरे लिये आते है। तुम्हारी भूनी हुई बलिदान मुझे पसन्द नहीं है और तुम्हारे यज्ञ मेरे निकट आनन्दमय नहीं है।" (जैरमयाह ६।२०)

(८) "वे मेरे चढ़ावेके लिए मांसका बलिदान करते हैं और उसे भक्षण करते हैं। प्रभु उसको स्वीकार नहीं करता, अब वह उनकी बुराई स्मरण करेगा। और उनके अपराधोंका उनको दण्ड देगा, वे मिश्र (बंधन) को पुनः जावेंगे।" (होसिया ८।१३)

(९) "मैं तुम्हारी ईदोंसे घृणा करता हूं और उनसे द्वेष करता हूं और मैं तुम्हारे धार्मिक संघोंकी गन्ध नहीं सूंघूंगा।"

"और यदि तुम हरप्रकार भूनी हुई बलि एवं मांसको

मेरेलिए अर्पण करो तो मैं उनको स्वीकार न करूंगा। और तुम्हारे मोटे बैलोंके धन्यवाद अर्चनाओंकी ओर भी आकर्षित नहीं होऊंगा।"

(एमोस ५ । २१–२२)

(१०) अपने बलिदानोंमें भूनी हुई बलियोंको घुसेड़ दो और मांस खाओ।

"कारण कि जिस दिवस में तुम्हारे बाप दादाओंको मिश्रकी पृथ्वीसे निकाल लाया मैंने उन्हें भूनी हुई बलि चढ़ानेकी शिक्षा नहीं दी और न बलिदानके लिए कोई आज्ञा दी।

"बल्कि मैंने केवल इतना ही कहकर उनको आज्ञा दी कि मेरे शब्दोंके श्रवण करनेवाले हो और मैं तुम्हारा परमात्मा हूंगा और तुम मेरे लोग होगे। और तुम उन सब नियमोंपर चलो जो मैं तुमको बताऊं जिससे तुम्हारा भला होवे।" (जेरेमयाह ७ । २१—२३)

(११) बलिदान और चढ़ावेको तूने नहीं चाहा। तूने मेरे कान खोले, भूनी हुई बलि और पापोंकी बलिका तू इच्छुक नहीं है।" (जबूर ४० । ६)

(१२) "मैं गीत गाकर परमात्माके नामकी स्तुति करूंगा और धन्यवाद कर उसकी प्रशंसा करूंगा। इससे

प्रभू बैल और बछड़ेकी निस्वत जिनके सींग और खुर होते हैं, विशेष आनंदित होगा।"

(जबूर ६९ । ३०-३१

(१३) "परमात्माका (यथार्थ) बलिदान मानकी मार्जना है। हे परमात्मा! तू एक पवित्र और द्रवीभूत हृदय को घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखेगा।"

(जबूर ५१ । ७१)

(१४) "मैं क्या लेकर प्रभुके समक्षमें आऊं और परमोत्कृष्ट ईश्वरके आगे क्यों कर दण्डवत् करूं। क्या भूनी हुई बलियों और एक वर्षके बछड़ोको लेकर इसके आगे आऊं? क्या प्रभु सहस्रो मेढ़ोंसे व तेलकी दस सहस्र नदियोसे प्रसन्न होगा? क्या मैं अपने पहलौटीके पुत्रको अपने पापोंके बदलेमें दूं—अपने शरीरके फलको अपनी आत्माके अपराधोंके हेतु मैं दे दूं? "हे मनुष्य! उसने तुझे वह दिखलाया है जो कुछ कि भला है। और प्रभु तुझसे और क्या चाहता है इसके अतिरिक्त कि तू न्याय करे और दयार्द्रचित्त हो प्रेम रक्खे। और अपने परमात्माके, साथ नम्रतासे चले।" (माईकाह ६ । ६-८)

यह स्वयं इन्जीलके प्राचीन अहदनामें की आयतें हैं। और इनके पढ़नेके पश्चात् मनमें इस विषयमें संशय नहीं

रखता है कि बलिदान सम्बधी आज्ञाओंका शब्दार्थ लगानेसे भारी भ्रम उत्पन्न हुआ है। कारण कि यह आज्ञायें कभी भी शब्दार्थरूपमें नहीं लिखी गई थीं। नूतन अहदनामेमें इस अभागे भ्रमको दूर किया गया है। "मैं दयाका इच्छुक हूं न कि बलि॰दानका" (मत्ती ९ । १३)

यह नवीन इन्जीलका प्रेम सूत्र है।

पारसियोंके धर्ममें भी मांसकी अर्चना वर्जित है, शायस्त॰ला-शायस्त (११ । ५) में लिखा है कि:—

"ऐसे भी लोग हुए हैं जिन्होंने रत्नाका उल्लेख किया है। और ऐसे भी कि जिन्होंने मांस बलिदानका। जिस किसी॰ने रत्नाका उल्लेख किया है वह ऐसा है कि जिसने उत्तम कहा है और जिस किसीने मांस बलिदानके विषयमें कहा है वह ऐसा है जिसने प्रत्येक बात प्रशंसनीय नहीं कही है।" (से० बु० ई० भाग ५ पृ० ३३७—३३८)।

इसी ग्रन्थमें यह भी कहा है (अ० १०-१२४ से० बु० ई० भाग ५ पृष्ठ ३३२):—

"नियम यह है कि मांस द्वारा जब कि उसमेंसे दुर्गन्ध या सड़ायन्द न भी निकल रही हो प्रार्थना याचना नहीं करना चाहिए।"

जब हम इसलामकी ओर ध्यान देते हैं तो इसमें संशय नहीं जान पड़ता कि मुहम्मद बलिदान क्रियाकी वास्तविकतासे

विज्ञ था परन्तु वह अपने सजातीय मनुष्योंके क्रोधको प्रज्व-लित नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने बलिदानके सिद्धांत के यथार्थ भावको गुप्त रीत्या बताकर ही संतोष धारण किया और इसप्रकार खुले तौरसे उसका निषेध नहीं किया जैसा इन्जीलके नूतन अहदनामेमें किया गया था। कुरानशरीफ के २२ वे अध्यायमें लिखा है कि:—

"ऊंटोंकी बलिदान हमने तुम्हारे लिए तुम्हारी परमात्माकी आज्ञाओंकी मान्यताका चिन्ह बनाया है।.......उनका मांस ईश्वरको स्वीकृत नहीं है। और न उनका रक्त। सुतरां तुम्हारी धर्मिष्ठता उसको स्वीकृत है।"

भाषाके लिए इससे अधिक स्पष्ट और जोरदार होना असं-भव है, परन्तु खेद है कि अरबवासियोंके हृदयपर इसका प्रभाव कुछ भी न पड़ा, और जैसे इन्जीलके प्राचीन अहदनामेके पैगम्बरोंका कलाम यहूदियोंके हृदयमें घर न कर सका वैसे ही हजरत मुहम्मदका कलाम अरबोंके हृदयोंको न बदल सका मनुष्य अपनी नीच प्रवृत्तिमें भी अनोखा ही है, वह विचारता है कि पवित्रसे पवित्र व्यक्ति (ईश्वर) भी होमित पशुओंका मांस खाने और उनका रक्त पान करनेको लालायित है। इस्लामके शक्कुशीके सिद्धांतका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

हिंदू धर्म्ममें भी बलिदानकी आज्ञा कायडकी वैसी ही गूढ़ समस्या मिलती है जैसी अन्य धर्म्मोंमें पाई गई है। निम्नलिखित वक्तव्य ध्यान देने योग्य हैं:—

(१) "वलिदान कर्त्ता स्वयं बलिका पशु है। स्वयं बलिदान कर्त्ताको वलिदान स्वर्ग पहुंचाता है।" (Tait. Br. III. 12.4. 3 तैत० ब्र० ३ । १२ । ४-३)

(२) वलिदानकर्त्ता ही पशु है।" (Sb. Br. XI. 1. 8. श० ब्र० ११ । १-८)

(३) "अन्ततः पशु स्वयं वलिदानकर्त्ता है।" (Tait. Br. II. 2. 8. 2. तैत० ब्र० २ । २, ८-२)

(४) वलिदान कर्त्ता वस्तुतः स्वयं वलि है।" (Tait. Br. 1. 28. तैत० ब्र० १ । २८)

हिंदू धर्मकी पौराणिक गुप्त समस्यामय भाषामें:—

"दश इन्द्रियां वलिदानकर्त्ता हैं। उनके विषय वलिके पदार्थ हैं और उनमें विषयोंका भस्म कर देना वलि चढ़ाना है। दस इन्द्रियां या देवता दस प्रकारकी अग्नि हैं, चित्त वलिदानकी कडछी है और आत्मिक ज्ञान वह संपत्ति है जो वलिदानके काममें व्यय की जावे।......तमस उसका धुआं है और रजस उसकी राख है।

"योगके यज्ञका रहस्य यह है, चार प्रकारके वलिदानकर्त्ता माने गए हैं। पांच इन्द्रियां और मन और बुद्धि सात कारण या कर्म हैं। उनके कृत्य कर्म हैं उनके पश्चात् आत्मा है जो कर्त्ता है। जब कोई व्यक्ति इन सातोंसे सम्बंध रखता

है तो पुण्य और पाप उसपर अपना प्रभाव डालते हैं। वरना वह मोक्षके लिए वास्तविक कारण बन जाते हैं।"

(प० हि० भा० भाग २ पृ० ६३४, ६३६, ६३८ व ६३९)

छान्दोग्य उपनिषद्के अनुसार (अ० ३ । १७):—

"तप, दान, सरलता अहिंसा और सत्यवादिता उसकी दक्षिणा है (अर्थात् मोक्षके मुमुक्षुको इन वस्तुओंको इन्द्रिय निग्रहद्वारा प्राप्त करना चाहिए)।"

तब तो वह इच्छाओ एवं विषयवासनाओंका बलिदान था जो यज्ञका यथार्थ भाव था, न कि विचारे अबोध पशुओंकी क्रूरता पूर्वक हत्या करना कि जिनका रक्त बलि संहारककी आत्माके ऊपर अशुभ कर्मोके एक अति निकृष्ट मल लेपके सदृश बन जाता है, और उसको अंतमें ऐसी दुर्गतियोंमें खींच ले जाता है कि जिनका विचार करनेसे ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उन अगणित अश्वो गऊओ, भैंसो, बैलो और बकरोंका विचार करनेसे कि जिनके प्राण मनुष्यकी नीच प्रवृत्तिके कारण व्यर्थ नष्ट हुए, हृदय कांप उठता है। अश्व जिसकी बलि चढानी थी वह हमारा मन है, गऊ इन्द्रियजनित विषयवासनायें, अर्थात् इच्छाएं, भैंस मूढता, बैल मूर्खता वा मान मद और बकरा व्यभिचार हैं। इनमेंसे गऊके संबधमें वर्तमान समयमे भारतवर्षके हिन्दू मुसलमानोंके मध्य विशेष रक्तपात हुआ है तिस पर भी गऊ केवल इन्द्रियोंका चिन्हमात्र है। अर्थात् विषयवासनाओका

जिनको इस्लाममें समुदायरूपमें नफस कहा है, इस्लामी कथानकमें नफ़्सको कुत्तेसे समानता दी है जो सबसे अधिक अपवित्र पशु है। कारण कि कुत्ता प्रत्येक वस्तुको, चाहे वह पवित्र हो या अपवित्र हो, भक्षण करता है और प्रत्येक वस्तुमें मुख डालता है और इन्द्रियोंकी भी ऐसी ही दशा है। दरवेश लोग गृहस्थोंको उनकी इंद्रियलोलुपताके कारण 'सगे दुनियां' (संसारका कुत्ता) के उपनामसे विख्याति देते हैं। इस ही विषयवासनामय इन्द्रियाहुतिको गुप्त शिक्षाकी भाषामें गऊसे सदृशता दी गई है। कुरानशरीफमें इस कुरबानीका अवसर इसप्रकार वर्णित है:—

"और जब मूसाने अपने लोगोंसे कहा कि अल्लाह आज्ञा देता है कि तुम एक गऊ बलि चढाओ। तो उन्होंने उत्तर दिया कि क्या तुम हमसे ठठोली करते हो? १

"मूसाने कहा कि खुदाकी पनाह। कि मैं मूर्ख बन जाऊं।

"उन्होंने कहा हमारे लिए अपने परमात्मासे पूछ कि वह हमारे लिए वर्णन करे कि वह क्या (वस्तु) है? २

'मूसाने कहा कि वह कहता है कि वह एक

२९

३ गऊ है जो न बूढ़ी है और न बछिया है उन दोनोंमें बीचकी अवस्था की है। अस्तु; करो वह तुम जिसकी तुमको आज्ञा दी जाती है।

४ "उन्होंने कहा कि तू अपने प्रभुसे हमारे लिए पूछा कर कि वह कहे कि उसका वर्ण कैसा है?

५ 'मूसाने कहा वह कहता है कि उसका वर्ण लाल (शब्दार्थमें पीला) है—अति लाल है। दर्शकोंके चित्तको उसका वर्ण प्रसन्न करता है।

६ "वे बोले कि दरयाफ्त करो हमारे लिए अपने प्रभुसे कि वह हमारे लिए वर्णन करे कि वह क्या (वस्तु) है? कारण कि गऊऐं हमारे निकट सब एक समान हैं और हम यदि खुदाने चाहा तो अवश्य पथप्रदर्शन पावेंगे।

७ "मूसाने उत्तर दिया कि वह कहता है कि वह एक गऊ है जो न पृथ्वी जोतनेके लिए निकाली गई है, न खेत सींचनेके लिए। वह नीरोग (पूर्ण) है। उसमें कोई दोष नहीं है।

८ "उन्होने कहा अब तुम ठीक पता लाए। तब
९ उन्होंने उसको बलि चढ़ाया यद्यपि वह ऐसा न करनेके निकट थे।

१० | "और जब तुमने एक मनुष्य (आत्मा) की हत्या की।

११ | "और उसकी बाबत आपसमें वादविवाद किया अल्लाहने उसको प्रकट किया जिसको तुमने छिपाया

१२ | था। कारण कि हमने कहा कि मृत शरीरको बलि दी हुई गायके भागसे छुआओ।

१३ | "ऐसे ईश्वरने मृतकको जीवित किया।

१४ | "और अपना चिन्ह दिखाता है।

१५ | "जिससे कि तुम स्यात् समझ जाओ।"

लाल बछियाके बलिदान (कुरबानी) की यह कथा है। और यह वास्तवमें एक अद्भुत वर्णन है, जो एक उच्च सीमाका प्रवीण रहस्यमय व निपुण है। मैंने इसके आवश्यक भागोंके नीचे लकीर खींच दी है और उनके सामने हाशियेमें उनपर अङ्क डाल दिये हैं। जिनका विवेचन निम्न प्रकार है:—

(१) प्रथम अङ्क विसयको जाहिर करता है। यहूदियोंका प्राचीन ईश्वर कि जिससे वे पूर्णतया विज्ञ हैं, एक गऊकी बलि चाहता है परन्तु तो भी उसकी आज्ञा उपहास एवं विसयके साथ सुनी जाती है—"क्या तुम ठठोली करते हो ?" किन्तु इस ठठोलीपर न तो ईश्वर और न मूसा ही रुष्ट होते हैं, मूसा ठठोली

नहीं करता है। 'खुदाकी पनाह! क्या यह विषय ठठोलीका है।'

(२) यहूदी लोग अब पूछते हैं कि वह क्या (वस्तु) है? यह प्रश्न स्वयं विशेष अर्थको लिए हुए है गऊकी बलिसे तुम्हारा क्या अभिप्राय है? ईश्वर तो प्राणियोंका रक्षक है और तू कहता है कि वह बलि चाहता है। यदि यह ठठोली नहीं तो और क्या है?

(३) 'वह एक गऊ है जो न बूढी है, न जवान है, सुतरां दोनोंके मध्यकी अवस्थाकी है।

(४) यहूदी लोग पुनः पूछते हैं 'हमको उसका वर्ण बताओ'

(५) 'लाल (पीला) अति गहरा लाल, जो दर्शकोंके चित्तको प्रसन्न करता है'—मूसाका उत्तर है।

(६) फिर भी यहूदी पूछते हैं कि वह क्या है? 'हमारे लिए गऊयें सब एक समान हैं।'

(७) 'वह गऊ है कि जो पृथ्वीके जोतने वा खेतके सींचनेमें नहीं लगाई गई है जो पूर्ण है, एवं निर्दोष है।' मूसाका उत्तर है।

(८) अन्ततः अब लोगोंको विश्वास होता है—"अब तुमको ठीक पता लगा"। मूसा परीक्षामें उत्तीर्ण होता है।

(९) अब गऊकी बलि चढ़ती है यद्यपि लोग उसके न करनेके निकट हैं।

(१०) मूसाके समयके "वे" अब "तुम" और "तुमने" से बदल जाते हैं।

(११) तुमने एक मनुष्य (शब्दार्थमें आत्मा) को मार डाला और आपसमें वाद विवाद किया। क्या वह सब भ्रम और माया तो न था। अर्थात् आत्मा कोई प्रत्यक्ष वस्तु भी है जिसको कोई मारे।

(१२) अब मृतकसे बलि छुआई जाती है।

(१३) मृतक जीवित हो जाता है !!!

(१४) यह एक चिह्न है।

(१५) स्यात् तुम इसको समझो।

मैं विचार करता हूं कि शब्दोंके लिए इससे अधिक प्रबलता के साथ यथार्थ भावका पता देना असम्भव है। इनका अर्थ प्रत्यक्ष है। जिसके पास देखनेके लिए नेत्र और सुननेके लिए कान हों वह समझले। वह गऊ जो न बूढ़ी है न जवान है, जो पृथ्वी जोतने वा खेत सींचनेके कार्यमें नहीं आती है, जो पूर्ण है और निर्दोष है, जो विशेष गहरे लाल रंगकी है, जो दर्शकोंको हुलसाती है वह विषयवासनामय नफ्स है जिसका आधार अतिलाल रक्त और उससे बने हुए मांससे परिपूर्ण बहिरात्मा

है। उसका वर्ण दर्शकको भला लगता है कारण कि कोई वर्ण एक जीवित शरीरके देदीप्यमान वर्णसे विशेष उपयुक्त नहीं हो सका है। यह विचार एक चीनी मर्मीकी पुस्तकमें अति उत्तमताके साथ दिखलाया गया है जो निम्नप्रकार है :—

"चुनानीने कहा कि एक समय जब मैं चूको एक कार्य्यसे भेजा गया था तो मैंने कुछ सूरीके बच्चोंको देखा कि अपनी मृतमाताको चिचोड़ रहे थे। थोड़े अवसरके पश्चात् उन्होंने जल्दी जल्दी इधर उधर देखा, और उसको छोड़ कर भाग गए। उन्होंने इस बातको जान लिया कि वह उनको नहीं देखती है। और उनके समान अब नहीं है। जिस पदार्थको वे अपनी मातामें प्रेम करते थे वह उसकी शारीरिक अवस्था नहीं थी सुतरां वह पदार्थ था जिसने उसके रूपको जीवन प्रदान किया था। (से०-बु० ई० भाग ३६ पृष्ठ २३०)।

वर्णके विषयमें मै यह और कहना योग्य समझता हूं कि शास्त्रमें उस अर्बी शब्दका, जो कुरान शरीफमें व्यवहृत हुआ है, अनुवाद पीला है। परन्तु जब कि गऊ पीले रङ्गकी नहीं होती और बहुत गहरे पीले रंगकी तो विश्वसतः नहीं होती, इसलिए इसके शब्दार्थसे कोई फर्क उसके विवेचनमें नहीं पड़ता है। कारण कि ऐसी दशामें इच्छित गऊका पीला रङ्ग कुरान शरीफके अर्थसे गऊके वंशको प्रकट रूपमें निकाल डालता है। लालके

अर्थमें* (देखो सेल साहबकी कुरान पत्र १ फुटनोट) उसकी विवेचना यहां पहिले की जा चुकी है।

हत्याके अभियोगका अर्थ कि जब तुमने एक मनुष्य (शब्दार्थमें आत्मा) को मारा इस प्रकार है कि यथार्थ पुरुष वा जीवका गला पुद्गलवादियोंकी बहिरात्माने जो जीवनको पुद्गलका परिणाम व प्रभाव और अपनेको पौद्गलिक शरीर ही मानते हैं, घोंट डाला है। उन्होंने मानों आत्माको मार डाला है और फिर उसके सम्बंधमें वादविवाद करते हैं कि अथवा वह कोई पदार्थ है वा नहीं। अथवा वह पुद्गलकी बनी हुई है वा नहीं। आदि आदि। ईश्वर (जीवन) अब तुमको एक अद्भुत दृश्य दिखाता है। वह कहता है कि ज़रा उस पदार्थको, जिसको तुम मृतप्राय समझे हो, बलिसे छुआ तो दो। ऐसा किया जाता है। और लो देखो! बलिके छूते ही एक जीवित देव (आत्मा) द्रव्य भड़क कर उठता है। और बहिरात्माको अपना मारनेवाला बताता है। मृतक नफ्स (बहिरात्मा) का ऐसा उत्तम प्रभाव है ज्यों ही आत्मा उससे छू जाती है त्यो ही वह जीवित हो उठती है! इसी प्रकार मृतक जीवित होते हैं स्यात् कि तुम समझो!

सम्भव है कि इस लाल बछियाकी बलिकी समस्त कथा मनोरंजनसे खाली न होगी।

---

* (इ० रि० ए० भाग २ पृष्ठ ३६) में भी ऐसा लिखा है कि:—

"गऊका लाल रंग रक्तकी ओर इशारा करता है।"

सेल साहबके अनुवादमें (देखो सेलकी कुरान पृष्ठ ९) वह इस प्रकार दी हुई है:—

"एक अमुक पुरुषने अपनी वफात पर अपने पुत्रको जो उस समय बच्चा था, और एक बछियाको, जो उसके विलूक़ (सयानपन) प्राप्त करने तक सहरा (बिया बान) में फिरती रही, छोड़ा। जब वह बच्चा बालिग (स्याना) हुआ तो उसकी माताने उसको बताया कि वह बछिया उसकी है। और उसको शिक्षा दी कि वह उसको ले (पकड़) कर तीन स्वर्ण मुहरोंके बदलेमें बेच लेवे। जब वह युवक अपनी बछियाको लेकर बाजारमें गया तो उसको मनुष्यके रूपमें एक फरिश्ता मिला। और उसने उसकी बछियाके छै स्वर्ण मुहर दाम लगाए। परन्तु उस युवकने इस मूल्य पर बिदून अपनी माताकी आज्ञाके बेचनेसे इन्कार किया। फिर आज्ञा प्राप्त करने पर वह बाजारको वापस गया और फरिश्तेसे मिला। परन्तु अब उस फरिश्तेने पहिलेसे द्विगुण मूल्य लगाया, इस प्रतिज्ञा पर कि युवक अपनी मातासे उसका उल्लेख न करे। किन्तु उस युवकने इससे इन्कार किया। और अपनी माताको इस अधिक मूल्यका हाल बताया। उस स्त्रीने यह विचार कर कि वह मनुष्य कोई देवता है अपने पुत्रको पुनः उसके निकट भेजा, और इस

बातको दरियाफ्त किया कि उस बछियाका क्या करना चाहिए। इस पर इस फरिश्तेने उस युवकको बताया कि कुछ समय उपरान्त इसको इसरायलके लोग मुंहमांगे दाम देकर खरीद लेंगे। उसके बहुत थोडे समयके पश्चात् ऐसा हुआ कि एक इसराइली इस्माईलको उसके एक निकट संबंधीने मार डाला। और उसने यथार्थ घटनाको छिपानेकेलिये शरीरको, उस स्थानसे जहां घटना घटित हुई थी, एक अति दूरस्थ स्थान पर डाल दिया। मृतव्यक्तिके मित्रोंने कुछ अन्य मनुष्यों पर मूसाके समक्ष हत्याका अभियोग लगाया। परंतु उनके इन्कार करने पर और उनको झुठलानेके लिए साक्षी के न होने पर ईश्वरने आज्ञा दी कि अमुक अमुक चिन्हों वाली एक गऊका वध किया जावे। किन्तु अनाथकी गऊके अतिरिक्त अन्य किसी गऊमें वे चिह्न नहीं पाए गए। और लोगोंको उसको उतनी गिन्नियां दे कर, जितनी उसकी खालमें आ सकीं, खरीदना पड़ा। कोई कहता है कि उसके बराबर तौल कर सोना देना पड़ा।

"और कुछ ऐसा कहते हैं कि इससे भी दसगुणा मूल्य दिया गया। इस गऊकी उन्होने बलि चढ़ाई और ईश्वरकी आज्ञानुसार इसके एक अवयवसे मृतकको छुआया। जब कि वह जीवित हो उठा, और उसने अपने हत्यारेका

नाम बताया इसके पश्चात् वह पुनः मृतक हो कर गिर पड़ा।"

यह कथा गऊकी बलि (कुरबानी) की है, जो सेलसाहबकी सम्मतिमें उस लाल बछियाकी कथासे ली गई है जिसके भस्म करनेका यहूदियोंकी शरीयतमें विधान था और जिसकी राख उन लोगोंकी पवित्रताके लिए रक्खी जाती थी जो किसी शवको छू लेते थे। अथवा उस बछियाकी कथासे ली गई है जो एक अज्ञात हत्याके लिए बलि चढ़ाई गई थी (सेलकी कुरान पृ० ६) पाश्चिमात्य विद्वानोंका साधारण विचार इन्जील और कुरानके विरोधित मन्तव्योंके सम्बन्धमें निःसन्देह यह है कि मुहम्मदको यहूदियोंके इतिहास और कथाओंका अति अल्प ज्ञान था और यह कि कुरानमें यहूदियोंकी शिक्षाको बिदून समझे हुए तोड़ मरोड़कर भर दिया गया है। अवश्य ही यह बात यथार्थ है कि कुरानका कोई नवीन वा नूतनकृत दीन नहीं है और उसके विषयका अधिकांश भाग प्राचीन धर्मोंसे लिया गया है जैसा कि टिजेडल साहबने पूर्णतया प्रमाणित करदिया है किंतु कुरान शरीफने इस बातको कभी नहीं छिपाया। सुतरां प्रकटरीत्या कहा है :—

"प्रत्येक कालमें एक पवित्र ग्रन्थका आविर्भाव हुआ है।" (अ० १३)......

"कुरान एक नवीनरीत्या रचित कथानक नहीं है सुतरां

वह अपनेसे पूर्वके शास्त्रोंका समर्थन करता है।" (अ०१२) ....."कोई जाति ऐसी नहीं हुई है कि जिसमें एक महात्मा रहस्यमय समस्यापरिचायक न हुआ हो।" (अ० ३ आ० ३५)......"मैं शिक्षक कुरानकी सौगन्द खाता हूं कि तू ईश्वरके पैगम्बरोंमेंसे एक है, जो सम्यक् मार्ग बतानेको भेजा गया है।" (अ० ४ आ० ३६)।

वर्तमानके समालोचक अभाग्यवश धर्मसे नितांत अनभिज्ञ हैं और शब्दार्थ विवेचन कर्त्ताओंकी भांति शास्त्रोंकी गुप्त रहस्यमय भाषाके समझनेमें तीव्र अज्ञानका परिचय देते हैं, लाल बछियाकी कथा कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है जो चुराई वा परिवर्त्तित की जा सके। वह हमारी समस्त जातिका उत्तराधिकार है और तुम्हारी एवं मेरी भी उतनी ही सम्पत्ति है जितनी कि मुहम्मद वां वनी इसराइलकी, हमको उसके आमूद्रित करनेसे रोकनेका अधिकार किसीको नहीं है, यदि हममें ऐसा करनेकी योग्यता हो। वरना हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसको अपनी आगामी संतान तक विदून किसी परिवर्तनके पहुंचा दें।

गऊकी कथाकी अवशेष बातोंके विषयमें वह पुरुष* जिसने

---

* यह ध्यानमें रखने योग्य बात है कि सांख्य दर्शनमें आत्माको पुरुष कहा है जिसका अर्थ मनुष्य (पुंलिंग) है।

मृत्युके समय एक वस्त्रा और एक बकिया छोड़ी वह विशुद्ध आत्मद्रव्य है, जिसकी मृत्युसे अभिप्राय उसके यथार्थ परमात्मपनेके गुणोंके अप्रकट * हो जानेसे है, अशुद्ध आत्मा विशुद्ध आत्माका पुत्र और नफ़्सकी बकियाका मालिक है, यहां पुत्रका सिद्धांत पुनः नूतनरूपमें छिपकर आया है। मुहम्मदके पहिले इन्जीलके नये अहदनामेमें इसका वर्णन आया है और इससे भी पूर्वमें होसिया नबीने कहा था :—

"तुम जीवित परमात्माके पुत्र हो।" (होसिया १ । १०)

और होसियाके मनमें परमात्माकी पुत्रावस्थाके विषयमें किसी प्रकारके उन्मत्त (व्यर्थ) विचार न थे, कारण कि उसके उपदेशमें यह भी आया है कि:—

---

* आत्माके सबंधमें मृत्युकी व्याख्या उसके स्वाभाविक गुणोंके अप्रकट हो जानेकी ओर संकेत करती है जो पुद्गलके मेलके कारण होता है। इस ही अर्थमें ईसुके सबंधमें कहा जाता है कि उसने एक शिष्यको जो अपने मृत पिताको गाढनेके लिए आज्ञा चाहता था, शिक्षा दी थी कि "तू मेरे पीछे चल और मृतकोंको अपने मृतक गाढ़ने दे।" (मत्ती ८ । २२)

इसका अर्थ विश्वासतः यह था कि मृतकोंका गाढना उनकेलिए छोडना चाहिए जो शरीरकी अपेक्षा तो जीवित हैं परन्तु आत्माकी अपेक्षा मृतक हैं। अर्थात् दूसरे शब्दोंमें जो अपनेको आत्मा नहीं जानते हैं। मृतकोंके जिलाने वा जी उठनेका भी अब हमको ज्ञात है, यही अर्थ है कि मृत्यु पर विजय पावें न कि शब्दोंके शब्दार्थमें मृतकोंका जीवित करना।

"तो भी मैं प्रभु तेरा परमात्मा मिश्रकी पृथ्वीसे हूं और तू मेरे अतिरिक्त किसी अन्य परमात्माको न जानेगा। कारण कि मेरे अतिरिक्त अन्य कोई पथप्रदर्शक (मोक्षदाता) नहीं है।" (१३।४)।

पोलुस रसूलने भी ऐसी शिक्षा दी है कि जितने आदमी ईश्वरीय आदर्शको ध्यानमें रखकर चलते हैं वह ईश्वरके पुत्र है (रोमियों ८।१४)।

हिन्दू धर्ममें भी यह आया है कि सावित्रीदेवीने इन्द्र (जीवन Life) को श्राप दिया था कि उसका नगर और स्थान छिन जायगा और वह जंजीरोंसे बांधा जायगा। इसको गायित्रीदेवीने कुछ सुधारते हुए कहा था कि उसका पुत्र उसको बंधनसे छुड़ावेगा। अस्तु यह स्पष्ट है कि परमात्माके पुत्रका सिद्धान्त ईसूसे प्रारम्भ नहीं हुआ, जिसने अपनेको यहुन्नाकी इन्जीलके आठवें अध्यायकी ४० वीं आयतमें प्रकट रूपमें मनुष्य कहा है। लूका (देखो अ० ३ आ० २३) हमको बताता है:—

'और ईसू स्वयं तीसवें वर्षमें पहुंचा जो कि यूसुफबिन हेलीका पुत्र था (जैसा कि समझा जाता था)।"

इस आयतमें ब्रैकेट्स (Brackets) मेरे नहीं हैं, सुतरां स्वयं आयतमें ही पाए जाते हैं जो कुछ गड़बड़ अथवा भ्रम इस सिद्धांतके सम्बन्धमे आजकल लोगोंके विचारोंमें पाई जाती है वह सब नयवादकी अजानकारीका फल है। शरीरकी अपेक्षा

तो मनुष्य एक अमुक व्यक्तिका पुत्र होता है परन्तु आत्माकी अपेक्षा वह स्वयं जीवन (Life परमात्मा) का ही पुत्र है। यही कारण है कि ज्ञानी गुप्त रहस्यमय भाषामें कभी मनुष्य और कभी परमात्माका पुत्र कहलाता है। अब पिता और पुत्रकी नित्यताका भेद भी जो तसलीस (त्रिमूर्ति) की शिक्षामें मिलता है सरलतापूर्वक साफ हो जाता है। कारण कि इसकी अपेक्षा कि सिद्ध आत्मा जीवन (Life) के परमात्मपनका इजहार है वह जीवनका पुत्र है। परन्तु इस बातकी अपेक्षा कि वह (सिद्धात्मा) स्वयं आत्मद्रव्य ही है जो पहिले अशुद्ध अवस्थामें भी विद्यमान थी और यथार्थमें अनादि कालसे है वह स्वयं जीवनका समकालीन है इसलिए पिता व पुत्र नित्य भी हुए।

अब हम पुनः गऊकी कथाकी ओर ध्यान देते हैं। वह सहरा (बियावान) जिसमें वछिया बच्चेके स्थानपर (यलुगत) को पहुंचने तक इधर उधर फिरा की वह आवागमनकी नीच गतियों (एक इन्द्रिय-दो इन्द्रिय-तीन इन्द्रियादि) को प्रकट करता है जिनमें नफ़सकी बछिया (अधीनस्थ करनेवाली बुद्धिके अभावमें) स्वाधीनताके विचरणमें व्यस्त पाई जाती है। यहां भाव मनुष्य योनिकी उत्तमतासे है जिससे निर्वाणका प्राप्त करना संभव है। यहां पहुंचकर सर्व प्रथम आत्माको इस अवारा फिरनेवाली वछियाको ज्ञान एवं तप द्वारा अधीनतामें लानेका अवसर प्राप्त होता है। सहराकी तुलना बाग

अदनस करना चाहिए कि जहांपर आदम प्रारम्भमें रक्खा गया था। बच्चेका अनाथपन आत्माकी बेकसीको प्रकट करता है जिसका कोई बाह्य रक्षक नहीं है। इन्जील मुकद्दसकी ज़बूरकी पुस्तकमें लिखा है (४९-आ० ७):—

इनमेंसे कोई भी अपने भाईको नहीं छुडा सक्ता है। और न परमात्माको उसकेलिए दण्ड दे सक्ता है।"

और पैगम्बर साहबने भी कहा है:—

"उस दिवसका भय कर जब एक आत्मा दूसरी आत्माके लिए भुगतान न करेगी। न उनकेलिए कोई सिफारिश सुनी जायगी। न प्रतिदण्ड लिया जायगा। न उनकी सहायता की जायगी।" (सूरह बकर)

और जैनधर्ममें संसारी जीवकी अशरण अवस्था एक मुख्य विषय विचार करनेके लिए है, जो इस प्रकार है :—

"इस जीवको दुःखोंसे कोई नहीं छुड़ा सक्ता है। इसको अकेले ही सब दुःख एवं पीड़ायें सहन करने पड़ते हैं। इष्ट मित्र, निकट सम्बंधी, स्त्री और पुत्र, दुःख और रोगको रोक नहीं सक्ते हैं। धर्म्म ही दीन हीनोंका सहायक है।"

—(दि प्रेक्टिकल पाथ पृष्ठ ५२)

यही रक्षकके न होनेकी दशा है जिसकी अनाथतासे सह-ज्ञाता दी गई है। मातासे भाव बुद्धिसे है, जो प्रारम्भमें नफ्स (इंद्रियों) के मूल्यका अत्यल्प परिणाम लगाती है। बाजार वह

बाजार संसार है जहां पर मनुष्य अपना "सौदा" जीवनकी आवश्यकताओं एवं विषय विलासों आदिके लिए बेचने लाते हैं। यहां पर संसारी गृहस्थ अपनी आत्माको तीन मुहर तिलाईके बदले, जिनकी विवेचना अभी थोड़ी देरमें की जायगी, बेचनेके लिए लाता है। मनुष्य भेष धारी देव (फरिश्ता) पूर्व भवोंके पुण्य कृत्योंका रूपक है, जो शुभ सम्मतिके रूपमें प्रकट होता है। माता (बुद्धि) की सम्मतिसे भाव समझकी उत्तमतासे है, जो शीघ्रतामें कोई काम नहीं करना चाहती है। द्विगुण मूल्य का न लेना मनका वशमें होना जाहिर करता है। इसराइली (=परमात्म-भ्राता) आत्मा (अन्तरात्मा) है जो अपने सम्बंधी बहिरात्माके हाथोंसे मारी जाती है। देखो इन्जील मुकद्दस का ईसूका उपदेश कि जो अपनी जान (Life) को पावेगा वह उसको खो देगा। और जो उसको मेरे नामके हेतु खो देगा वह उसको पावेगा, (मत्ती १०।३९)। आत्माके अस्तित्वसे इन्कार करना (मानो) उसकी हत्या करना है [कारण कि वह केवल उसी दशामें मृत्युके चुंगल अर्थात् आवागमनमें वार बारके मरने जीनेसे छुट्टी पा सकी है जब उसको अपनी सत्ता एवं स्वरूपका भान हो] सदके एक अति दूरस्थ स्थान पर पहुंचा देनेसे भेदके न खुलनेका संकेत आवागमनके जन्ममरणोंकी ओर है जिसमें एक योनिसे दूसरी योनि तक बड़े बड़े परिवर्त्तन हो जाते हैं। हत्यारेके मित्र जो बहिरात्मा पर हत्याका अभियोग

लगाते हैं वे मानसिक विवेक, सम्मति आदि हैं जिनको धोखे-बाज (वहिरात्मा] का पता लग गया है, अभियुक्त [अर्थात् वहिरात्माके गुण] इस बातसे इन्कार करते है कि आत्मा कोई वस्तु है जिसको उन्होंने मारा हो। वहिरात्माको कायल करनेके हेतु साक्षी अपूर्ण [अपर्याप्त) है इसका भाव यह है कि मानसिक तर्कनाओंसे एक ऐसे विपक्षीको जो आत्माकी सत्ताको माननेके लिए तत्पर नहीं है, कायल करना दुष्कर है ऐसी अवस्थामें असली परीक्षा आवश्यक है। अब जीवनकी आज्ञा होती है कि गऊकी बलिसे मृतकको छुआओ। यह किया जाता है और तत्क्षण एक अद्भुत दृश्य प्रकट होता है वह गौ जो जीवनावस्थामें केवल तीन मुहर तिलाईके लिए बेची जाती है, अब जब कि वह बलि चढ़ गई, अनमूल्य हो गई, वास्तवमें वह अब अपने समपरिमाण स्वर्णसे भी अधिक मूल्यवान हो गई है। तीन मुहर तिलाई, जिनके लिए ज़िन्दा नफ्स बेचा जाता है उनका अर्थ तीन प्रकारकी आवश्यक्ताओंके लिए उपयुक्त धन का प्राप्त करना है। अर्थात् पेट भरनेमात्रके सहारे, गृहस्थसुख-की सामग्री और भोग विलासके लिए उपयुक्त दौलत (धन) का प्राप्त करना। एक अन्य विचारक्रमके अनुसार इन तीनोका अर्थ यह भी हो सकता है (१) शारीरिक आवश्यक्ताओंके समान (२) मनको प्रसन्न करनेवाली वस्तुएं और (३) देवताओंको भेंट वा उपासनाके लिए उपयुक्त साधनकी पूर्ति।

इच्छित गऊके गुण अनाथकी गौके अतिरिक्त अन्य किसी गऊमें नहीं पाए जाते कारण कि वास्तवमें तो नफ्स गऊ नहीं है। पुद्गलवादी अपनेको केवल रक्त हीका पुतला जानता है। यही लाल रंग गहरे लाल रंग-का कारण है। मूसाकी पांचवीं पुस्तकमें लिखा है (देखो इन्जील किताब इस्तसना अ० १२ आ० १३) कि 'रक्त प्राण है'। रक्त न युवक है न वृद्ध, सुतरां वृद्ध एवं युवक दोनो अवस्थाओंमें होता है।

एक साधारण गऊ वस्तुतः इस कालमें जब कि अनाथका पिता मरा और वह स्यानपनको पहुंचा, उम्रमें बढ़नेसे रुक नहीं सकी थी। और कौन ऐसा मूढ़ था जो एक कार्य्यहीन वन गऊका जो उमर भर बियाबानमें चरती रही, तीन मुहर तिलाई मूल्य लगाता। यह लक्षण भी कि जो हल जोतने सींचनेमें नहीं लगाई गई है विशेष अर्थपूर्ण है। इससे प्रकट होता है कि हमको इस गऊको उन पशुओंमें नहीं खोजना चाहिए जो खेतोंके जोतने वा सींचनेमे व्यवहृत होते हैं। क्योंकि यह नियम नहीं है कि गऊएं हल चलाने वा खेतोंके सींचनेमें व्यवहृत होवें, इसलिए उनके सम्बंधमें ऐसे लक्षणोका वर्णन करना इस बातको प्रकट करता है कि उनकी जातिसे, जिसके नर वास्तवमें इन कार्य्योंमें व्यवहृत होते हैं, अर्थ नहीं है। अद्भुत दृश्यके पश्चात् शरीर का मृत हो कर गिर पड़ना सम्भवतः यह प्रकट करता है कि आत्माने अपने दीर्घकालीन कारावाससे छुटकारा पाया, जब कि शरीर

तो विलग रह गया और आत्मा ऊपर निर्वाणमें जा पहुंची !

यह उत्तम श्रेणीकी शिक्षा है, जो गऊकी बलि (कुरबानी) की कथामें भरी हुई है। परन्तु अभाग्यवश इसका अर्थ नितांत विपरीत भावमे लगाया गया है ! वास्तवमें बलिसिद्धांतको लोगोंने विपरीत रूपमें समझा है जो अपनेको लाभके स्थान पर अत्यधिक हानि पहुंचाते रहे हैं । इस बछियाकी कथाके संबंध में मुझे केवल इतना और कहना है कि इसमें एक ही शाब्दिक चित्रकी संक्षिप्त लम्बाई चोड़ाई मात्रके भीतर सर्व धर्मों एवं सिद्धांतोंका सार भर दिया गया है और नफ़्स (मन) के मूल्य का तीनों प्रकारके उद्देशोंकी अपेक्षा अर्थात् इस लोकमें आनन्द प्राप्त करना, परलोकमें उत्तम और सुखमय जन्म (गति) का पाना और निर्वाणमें परमात्म अवस्थाका कभी न कम होनेवाला परम सुख हासिल करना इन तीनोंकी अपेक्षा पूर्णतया ठीक २ विचार (अन्दाज़ा) किया गया है। इस मनको थोड़ासा मारनेसे अर्थात् मेहनत मजदूरी इत्यादि करनेसे मनुष्य इस जीवनके उद्देशोंके लिये उपयुक्त साधन प्राप्त कर लेता है (यह तीन स्वर्णकी मोहरे हुई) । इसको व्रतों और नियमों द्वारा थोड़ा बहुत वशमें लानेसे आगामी जन्ममें स्वर्गके सुख मिलते हैं (यह ६ मोहरें हुई)। किंतु यदि इसको पूर्णतया जड़से नष्ट कर दिया जावे (मार डाला जावे) तो यह तत्क्षण हमको परमात्मपनेके अमरत्व परम सुख और नित्यजीवनको प्रदान करता है (यह अपने समपरिमाण स्वर्णमें मूल्य हुआ) !

अंग्रेजी शब्द Sacrifice (कुर्वानी वा वलिदान) का शाब्दिक अर्थ, मुझको इस वातके प्रगट करनेमें हर्ष होता है नितान्त उपयुक्त है। और वलिदानके यथार्थ भावको सीधे २ ढंगसे प्रगट करता है। यह शब्द लेटिनी Sacrificium से लिया गया है जो Sacer (पूर्ण वा पवित्र) और Facere (बनाना) से मिलकर बना है। सेक्रीफाइस (Sacrifice=वलिदान) का वास्तविक अर्थ अतः ऐसे कर्मसे है, जो हमको पूर्ण अथवा पवित्र बनासका है। एक निरपराध पशुका रक्त कदापि ऐसा नहीं कर सक्ता कारण कि रक्त विषयवासनाओंकी अपवित्रताको नहीं धो सक्ता। सुतरां यथार्थमें मानुषिक अनुकम्पाको जो निर्वाणप्राप्ति के हेतु परमावश्यक गुण है अदया एवं कठोरतामें बदल देता है। और यदि यह कहना भी सम्भव होता जो हमारे आज दिनके ज्ञानके रहते हुए असम्भव है, कि कोई आकाशीय शक्ति रक्तसे प्रसन्न होकर वलिकर्त्ताके अपराधोंको क्षमा कर सक्ती अथवा उसके दोषोंको ढक सक्ती है तो भी यह प्रगट है, उसके ऐसा करनेसे कोई भी अपराधी साधु नहीं बनसका है! पवित्र अथवा पूर्ण बननेके लिए यह आवश्यक है कि अपराधी स्वयं अपने प्रयत्नद्वारा अपने हृदयको बदल डाले। अंग्रेजी शब्द होली (Holy) का शब्दार्थ भी अति उत्तमताके साथ उसके यथार्थ भावको प्रगट करता है। यह एंगलोसेक्सन हैल (Hal) व प्राचीन जर्मन एवं आइसलेंडकी भाषाके हील (Heil) श—

गोथिक हेल्स (Hails) से लिया गया है जिसका अर्थ पूर्ण व समूचा अथवा बाधारहित है। अस्तु; यहां यह प्रश्न नहीं है कि किसीके दोषोंको छिपाया जाए या उसके अपराध क्षमा किए जावें। सुतरां अपूर्णको पूर्ण बाधामयको बाधारहित और रोगी को स्वस्थ करनेका है। वह केवल बहिरात्माका बलिदान (प्राचीन हिन्दूकथानक भाषामें पुरुषमेध) है जो हमको होली (Holy = पूर्ण) बना सका है। जैसे जैसे दुष्प्रवृत्तियां और दुष्परिणाम, जिनसे पापकी यह अभागी मूर्त्ति बनी है, नष्ट होते हैं तैसे तैसे शुद्ध परमात्मस्वरूप स्वतंत्र होकर उस व्यक्तिके जीवनमें, जो उनको नष्ट करता है, प्रगट होता है। और अनंतर अपवित्रता और पापकी शक्तियोंके पूर्णरूपेण नाशको प्राप्त होने पर आत्मा, जो अब इन अपवित्र एवं अशुद्ध करने वाले कारणोंसे छुटकारा पानेके कारण पूर्ण (Whole) और पवित्र (Holy) होगया है, साक्षात् परमात्मा हो जाता है।

अब मैं निर्वाण प्राप्तिके तीसरे उपाय अर्थात् तीर्थयात्रा (हज) का वर्णन करूंगा। किसी स्थानकी यात्रा अथवा हज इस अभिप्रायसे की जाती है कि आत्मामें शुद्धताका अंश बढ़े और उसकी फलप्रदायक शक्ति यात्रीके हृदयकी शान्ति और वैराग्यपर, जो सांसारिक व्यापार एवं गृहस्थाश्रमके बाहर ही पूर्णरूपसे प्राप्त हो सके हैं, अवलम्बित है। जुनेद्‌ने जो एक मुसलमान दरवेश हुआ है एक हजीसे वार्तालाप करते समय

हजके फलोंको अति उत्तमताके साथ प्रकट किया है। वह वार्ता-लाप इस प्रकार मिस्टिक्स ओफ इस्लाममें लिखा है :—

" उस समयसे जबसे तुम अपने गृहसे यात्राको चले क्या तुम सम्पूर्ण पापोंकी दिशासे बचकर अन्य दिशामें यात्रा करते रहे ?" "नहीं।" "तब तुमने कुछ भी यात्रा नहीं की। क्या जब जब तुमने किसी स्थान पर विश्राम किया तो एक पड़ाव ईश्वरके मार्ग पर भी बढ़े ?" उसने कहा "नहीं"। जुनेदने कहा "तब तुमने पड़ाव ते नहीं किए। और वस्त्रा-भूषण बदलनेके स्थान पर जब तुमने यात्रीका जामा पहिना तो क्या अपने पुराने वस्त्रोंके साथ मानुषिक कृतियोंको भी विलग फेंकदिया ?"। "नहीं।" "तब तुमने यात्रीका जामा भी नहीं पहिना। जब तुम अरफातके स्थान पर खड़े हुए तो क्या तुमने एक क्षण ईश्वरका ध्यान किया ?" "नहीं"। "तब तुम अरफातमें नहीं खड़े हुए। जब तुम मजदलीफाको गए और मिन्नत मानी तब क्या तुमने अपनी इन्द्रियलोलुपताका त्याग किया ?"। "नहीं"। "तब तुम मजदलीफाको नहीं गए। जब तुमने काबेका तवाफ किया तब क्या तुमने परमात्माके नूरानी प्रकाश पर पवित्र स्थानमें चित्त लगाया ?"। 'नहीं"। "तब तुमने काबेका तवाफ नहीं किया। जब तुम सफा और मरवाके मध्य दौड़े तो क्या तुमने पवित्रता (सफा) और भलाई (मुरव्वत) को

अपनेमें प्रकट किया ?"। "नहीं"। "तब तुम दौड़े ही नहीं। जब तुम मिनाको पहुंचे तो क्या तुम्हारी समस्त इच्छाएं (मुना) तुमसे पृथक् हो गई ?"। "नहीं"। "तब तुमने अभी तक मिना नहीं देखा है। जब तुम कुरबानगाह पहुंचे और वहां कुरबानी की तब क्या तुमने सांसारिक विषय-वासनाओंकी, कुरबानी की ?"। "नहीं"। तब तुमने कुरबानी ही नहीं की। जब तुमने कंकडियां फेंकीं तो क्या तुमने अपने विषयवासनामय विचारोंको अपने मनसे दूर फेंक दिया ?"। "नहीं"। "तब तुमने अभी तक कंकड़िया नहीं फेंकी हैं। और अभी तक तुमने हज नहीं किया है।"

निःसन्देह सर्वोत्तम स्थान यात्राका वह हो सकता है कि जहांके सम्बन्ध मनको पवित्रता और उच्च साहसवर्धक विचारोंकी ओर लगानेमें अग्रसर हों। वह स्थान जो तीर्थंकर भगवानके तप वा धर्मोपदेश आदिके कारण विख्यात एवं विनय करने योग्य हो गए हैं, वहांपर सत्यखोजियोंको विश्वास, वैराग्य और पुण्यकी वृद्धिके लिए जाना चाहिए। ऐसे स्थानों पर आनेसे जहां मनुष्योंद्वारा निर्मापित देवी देवता स्थापित हैं, कोई फल प्राप्त नहीं होता है।

अब मैं ध्यानके विषयमें कुछ कहूंगा जिसका भाव मनको संसारकी ओरसे मोड़कर आत्मामें लगाना है। यथार्थ उद्देश्य यह नहीं है कि मनको सदैव सिद्धान्त चर्चामें व्यस्त रक्खा

जावे । सुतरां यह है कि आत्मा अपनी सत्ताके रहस्यको जीवनक्रियायोंमें साक्षात् अनुभव करे। इस लिए यह आवश्यक है कि इस रहस्यमय सत्ताकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक आन्दोलन और प्रत्येक भावको हम प्रत्यक्षरूपमें ध्यानमें लावें और उसके भेदको पूर्णतया समझें। किन्तु मनके साथ यह दिक्कत लगी हुई है कि यदि उसको अवसर मिल जावे तो वह अन्य समस्त वस्तुओंकी ओर आकर्षित होगा परन्तु आत्माकी ओर नहीं। और जब प्रयत्न करके उसको थोड़ा बहुत वशमें लाते हैं तब भी वह अवसर पाते ही एकदम भाग जाता है। रंचमात्र शारीरिक पीड़ा अथवा इन्द्रियाकांक्षा उत्पन्न हुई कि मन काबूके बाहर हुआ और ध्यानको ले भागा। अस्तु; विषयवासनाओं एवं इच्छाओं की जड़ उखाड़ना और शारीरिक ऐश व आराम व इन्द्रियलोलुपताओंको नष्ट करना ध्यानकी स्थितिके लिए परमावश्यक है। अतः मोक्षमार्ग पर चलनेके लिए नियमानुसार जीवन निर्वाह करना और उत्तम पवित्र भोजन करना चाहिए। मांस एवं मदिराका व्यवहार वर्जित है, कारण कि उनके व्यवहारसे मन की शांतिका लोप हो जाता है, विषयवासनाएं पुष्ट हो जाती हैं और वह कोमल और क्षीण स्नायु एवं नाड़ियां जिनसे आत्मा मनसे जुड़ी हुई हैं स्थूल व कठोर एवं अशुद्ध हो जाते हैं जिस के कारणवश ध्यान फिर भीतर आत्माकी ओर नहीं आकर्षित

हो पाता है । इन्जीलमें यशैयाह नबीने क्या उत्तम कहा है
(देखो अ० २८ आ० ७-८):—

"पर वह भी मदिराके कारण अपराध करते हैं, वे नशोंमें डिगमगाते हैं । पुजारी और नबी नशेसे अपराध करते हैं । वे मदिरासे उत्पन्न नशेसे लड़खड़ाते हैं । उनके आचरण दोषपूर्ण होते हैं, उनकी बुद्धि ठोकर खाती है ।

"कारण कि सर्व दस्तरख्वान् चमनकी भूष्टासे लदे हुए हैं और अपवित्रतासे भरे हुए हैं । यहां तक कि कोई स्थान भी स्वच्छ नहीं है ।"

यह वर्णन ध्यानके बाह्य सहकारी कारणोंका हुवा । उसके अभ्यंतर सहकारी कारणोंमें कुछेक धारणायें हैं जिनका अभ्यास आत्माके अनुभवके लिये अतिफलदायक साबित हुआ है, इनमेंसे एक अति सरल धारणा यह है कि अपने शरीरके भीतर एक विशुद्ध परमात्माको, जिसका स्वभाव उत्कृष्ट ज्ञान, उत्कृष्ट सुख और उत्कृष्ट शांतिका भण्डार है, स्थापितकर के ध्यान करं । इसका ध्यान नेत्रोंको अधखुला रखके और मन को भीतरकी ओर लगाकर करे । यदि इसके साथ या इसकी स्थितिके लिये शब्दोंकी आवश्यकता पड़े तो केवल वे ही शब्द व्यवहृत किये जांय जो आत्माके स्वाभाविक गुणोंको प्रकट करते हैं । जैसे ओ-सोहम्-अर्हन्-सिद्ध-परमात्मा—निरंजन— आदि आदि । निम्न लिखित श्लोक ध्यानके लिये मुख्यतया उपयुक्त हैः—

एकोऽहं निर्मलः शुद्धो ज्ञानदर्शनलक्षणः ।
शेषा मे वाह्यजा भावा सर्वे संयोगलक्षणाः ॥

इसका अर्थ यह है कि " मैं एक हूं, मैं निर्मल हूं, मैं परमात्मा हूं, मैं ज्ञान दर्शन गुणोंवाला हूं, अवशेष सम्पूर्ण पदार्थ मेरे वाहिर हैं। वे मेरे स्वभावसे पृथक् हैं और कर्मोंसे उत्पन्न हुये हैं।' इस प्रकार हमको अपनी आत्माका ध्यान करना चाहिये ध्यानके कायम होनेपर एक समय ऐसा आवेगा जब ध्यानकर्त्ता स्वयं ध्यानकी मूर्तिमें लय हो जायेगा । अर्थात् जब परमात्म-स्वरूप आत्मद्रव्यमें उतर आवेगा। यहांपर इच्छुक एवं इच्छाका पात्र एक हो जाते हैं। भक्त स्वयं अपना इष्टदेव वन जाता है (देखो आत्मधर्म पृ० २७—२६) । भाव यह है कि अनुयायी और आदर्शकी एकता हो जाती है । अर्थात् शुद्ध आत्मद्रव्य परमात्माकी मूर्तिके साँचेमें पड़कर वैसा ही हो जाता है। साफ शब्दोंमें जीवात्मा अब परमात्मा हो जाता है। इस ही को इन्जीलकी भाषामें जीवनमें प्रवेश करना कहा है। और इसमें जीवन और आनन्दकी इतनी अधिकता होती है कि जिन्होंने इसे एक क्षण भरके लिये भी अनुभवगम्य किया है वह सदैवकेलिये तृप्त हो गए हैं।

यह वर्णन साधारणरीत्या ध्यानका है जो परमात्मापनकी प्राप्तिका एक ही मार्ग है।

अवशेष दो निर्वाण प्राप्तिके मार्गों अर्थात् शौच और तपका

उल्लेख इन व्याख्यानोंमें इससे पहिले पर्याप्त रीत्या किया जा चुका है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि शौच और तपका यथार्थ भाव सम्पूर्णतया अभ्यंतर अशुद्धताके दूर करनेसे है, न कि बाह्य शरीरके धोनेसे वा भिन्न भिन्न प्रकारके आसन माड़नेसे। आसन माड़ना उपवास आदि सब निःसंदेह आत्मोन्नतिके लिए आवश्यक अंग हैं। परंतु यह सब विशुद्ध ध्यानके ही सहायक हैं; जो वस्तुतः मोक्षका वास्तविक कारण है। कारण कि बिदून मन वचन कायको वशमें लानेके ध्यानमें आरूढ़ होना असम्भव है, परन्तु जहां ध्यान ही नहीं है वहां शरीरको कष्ट और आत्मा को क्लेश देनेसे क्या फल ? न तो राजयोग (केवल मन द्वारा ध्यान करना) और न हठयोग (शारीरिक तपस्या मात्र) ही इस हेतु फलदायक हो सक्ते हैं। और न केवल ज्ञान योग (धर्मध्यान) ही मार्ग हो सक्ता है। यथार्थ मार्ग सम्यक् श्रद्धान (दर्शन) सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके मिलनेसे बना है, जैसा कि हम एक पहिलेके व्याख्यानमें देख चुके हैं। भक्ति योग भी अवश्य विशेष सहायक होता है यदि इसका उपयुक्तरीत्या व्यवहार किया जावे। भक्तिका इष्टदेव कोई कवि कल्पनाका देवी देवता नहीं है, प्रत्युत स्वयं भक्तकी ही आत्मा है। यद्यपि जब तक इसमें फल प्राप्ति न हो उस समय तक तीर्थंकर भगवानको ही जिनसे अन्य कोई बड़ा गुरु नहीं हो सक्ता है, आदर्श मान कर उनको भक्ति करना आवश्यक होता है। जैसा कि कुरान शरीफ जोरके साथ बताती है:—

"परमात्माका वपतिस्मा ! और परमात्मासे कौन विशेष वप-
तिस्मा देनेवाला हो सक्ता है ? और हम उसके चाकर हैं।"
ईसूकी जीवनी तीर्थंकर भगवानके जीवनका उत्तम दर्जेके
अलङ्कारमें विवरण है। वह यहूदियोंकी भाषामें और यहूदियोंकी
त्रुटियोंको लिए हुए विजयी जीवनका, परमेश्वरीय पुत्रावस्थाका,
और परमात्मापनके मनुष्यात्मामें प्रकाशित होनेका उच्चतम
आदर्श है। विश्वसतः—

". . . मैं तुमसे कहता हूं कि यहां वह है जो हेकलसे भी
वडा है परन्तु यदि तुम इसके अर्थको जानते कि मैं वलि
नहीं सुतरां दयाका इच्छुक हूं तो निरपराधोको अपराधी न
ठहराते।" (मत्ती १२। ६-७)।

अतः परमात्माओंकी विजयपताकाओं पर लिखी हुई सत्यकी
घोषणा जीवन और आनंदका शुभ समाचार है जो 'अहिंसा
परमो धर्मः' के तीन अत्युत्तम एवं सिष्टतम शब्दोंमें सब जीवोंको
जीवनकी आशा दिलाता है और उसको जो उस पर अमल करे
परमात्मापनका नित्य जीवन प्रदान करता है।

नोवां व्याख्यान।

फल एवं निर्णय।

हमारा श्रम अन्त होनेको है। यह अन्तिम व्याख्यान है जो
मुझे आपके सामने देना है। हमने देखा है कि धर्म सर्व साधा-

रणके विचारोंसे किस प्रकार विभिन्न प्रमाणित हुआ है। और यह भी कि वह कैसे एक ही शिक्षा, एक ही सिद्धांत, एक ही ध्येय, एक ही मत, विभिन्न नामों और रूपो और भेषोंमें व्यवस्थित है। धर्मके ऐसे विरोधी, जैसे हिंदु मत कि जिसने गायकी मान्यता को धार्मिक विनयकी सीमा तक पहुंचा दिया और इसलाम जो उसकी कुरबानी (बलिदान) चाहता है, नियम ऐसे विपरीत जैसे ईसाइयोका धर्म जो ईसाको परमेश्वरका पुत्र प्रगट करता है एवं यहूदियोंका मत अथवा अन्य धर्म जो ईश्वरके स्त्री व पुत्रका होना नहीं मानते हैं, एक ही पिता अर्थात् वैज्ञानिक सत्य (Scientific Truth) के वंशज, आपसमें भाई भाई, पाए गए हैं यद्यपि अब वे अपने बाह्य वस्त्र व रूपोंके कारण एवं अपने अपने पार्टके कारण जिनको वे पौराणिक कल्पनाओंकी स्टेज पर प्राचीन कालसे खेलते रहे हैं अपनी इस निकटकी रिश्ते-दारीसे बेसुध है। क्योंकि चाहे इसके विपरीत आप कुछ भी क्यों न कहें, सत्य बात यह है कि धर्मका विज्ञान (सायन्स) संसार में उस समयसे पूर्व जब कि लोग उसके सिद्धांतोंको पौराणिक कल्पनाओंके सांचेमें ढालने बैठे, अवश्यमेव विद्यमान होगा। पौराणिक कल्पना या दृष्टांत यथार्थ व्याख्यासे पहिले नहीं सम्भव हो सके हैं। अवश्य ही यथार्थ व्याख्या पौराणिक कल्पना व दृष्टान्तसे पूर्वमें होगी। वह बुद्धिमान अंग्रेजी लेखक टॉमस कार-लाइल, जो अपनी बुद्धिविलक्षणताकेलिए प्रसिद्ध है, लिखता है:-

विश्वसतः यह प्रयत्न हास्यजनक होगा यदि हम इस भूत कालीन देवी देवताओंकी ··गडवड़झालाको, जिसकी सदृशता ठोस पृथ्वीकी निसवत बादलोंकी अनित्य अवस्थासे विशेष उपयुक्त ठहरती है, मनुष्यके प्रारंभिक अर्धनिश्चित विचारोंका फल मानें। अब इसको कोई यथार्थ नहीं मानता है। यद्यपि एक समयमें वह यथार्थ माना जाता था। हमको यह बात जान लेनी चाहिए कि एक समय था जब कि वह बादलोंका स्थान एक वास्तविक पदार्थ था। यह जान लेना चाहिए कि न कविताकी उत्कृष्ट कल्पना और न छल व कपट ही इसके उत्पादक थे। मनुष्योंने, मैं दावा करता हूं, कभी झूठी गप्पोंको सिद्धांत नहीं बनाया। उन्होंने कभी अप्रामाणिक मायाजालोंके लिए अपनी आत्माओंको खतरे में नहीं डाला। मनुष्य प्रत्येक कालमें और मुख्यतः प्रारंभिक प्राचीन कालमें जब कि उपहास व ठट्ठेबाजी न थी, मायाजालोंको पहिचानते रहे हैं। मायावीसे घृणा करते रहे हैं। हमको देखना चाहिए कि अथवा हम पौराणिक माया जाल और कविकल्पनाके प्रश्नोंको छोड़ कर इस विशाल मूर्त्ति पूजकोंके समयके समझमें न आनेवाले गुल गपाड़ेको प्रेमके साथ ध्यानसे सुन कर कमसे कम इतना नहीं समझ सकते हैं कि उनके भीतर एक प्रकारकी यथार्थता अवश्य थी। और यह कि वे नितान्त असत्य और भ्रमात्मक नहीं

थे सुतरां अपने सादे ढगमे सत्य और बुद्धिगम्य थे।"

(हीरोज एण्ड हीरो-वर्शिप)

कारलाइलको इन लोगोंके सिद्धांतोंकी जिनको वह मूर्त्ति-पूजक कहता है यथार्थ व्याख्या विदित नहीं थी परन्तु इसकी सम्मतिका मूल्य इस कारण कुछ भी कम नहीं होता है। कारण कि यद्यपि वह धार्मिक कथाओंकी भाषाको नहीं समझ सका तो भी उसको इस बातका पूर्ण विश्वास था कि इन देवी देवताओंकी कथाओंकी जड़ यथार्थ बुद्धि थी। परन्तु आप स्यात् यह पूछें कि यथार्थ बुद्धिसे उत्पन्न विद्याका समुदाय जिसके ऊपर पौराणिक कल्पनाओंकी जड़ स्थापित की गई थी अब कहां है? इसका क्या कारण है कि हमारे पास केवल पौराणिक रूपांतर ही रह गए हैं और यथार्थ विद्याका लोप हो गया है? उत्तर यह है कि पौराणिक कल्पनाओंके रचयिता स्वयं प्रारम्भिक कर्त्ता न थे बल्कि वे केवल एक उच्च प्रकारके चित्रकार थे जो पश्चात्से आए। वे निर्माता न थे और उन्होंने अपनी नींव भींतिको स्वयं नहीं खोदा बल्कि उन्होंने अपने पूर्वजोंके ज्ञानको अलंकृत करने पर ही संतोष धारण किया तब वह वैज्ञानिक विद्या कहां मिल सकी है? और पौराणिक रचयिताओंके पूर्वज कौन लोग थे?

आइए, हम धर्म्मोंको नियम पूर्वक लिखें जिससे भूतकाल की घटनाएं समझमे आवें। निम्नलिखित विभाग उन प्रमाणोंके अनुसार है जो इन व्याख्यानोंमें सिद्ध हो चुके हैं।

धर्म
बुद्धिगम्य (यथार्थ)
अबुद्धिगम्य [अर्थात् शिला, वृक्ष, नदियों, पित्रों, भूतों आदिकी पूजा]
वह जिनका अर्थ स्पष्ट है अर्थात् जिनके समझनेकेलिये किसी मर्म्मज्ञ कुन्जीकी जरूरत नहीं है।
वह जो विना एक मर्म्मज्ञ कुन्जीके समझमें नहीं आते हैं
वैज्ञानिक
अवैज्ञानिक (अटकली)
जैनधर्म
सूफी मत
वेदान्त
मूलवृक्ष
पश्चातकी शाखाएं
शब्दार्थ भावके नूतन किल्ले
वैदिक धर्म
पार्सियोंका मत
यहूदियोंका दीन
ईसाई मत
इसूलाम
ताव मत इत्यादि
(१) कबीर पन्थ
(२) दादू पन्थ
(३) सिक्खोंका मत
(४) चैतन्यका मत
(५) बहाई मत
(६) थियोसोफी
(७) आर्य समाज
(८) ब्रह्म समाज
(९) देव समाज
(१०) राधास्वामीका मत

जैनधर्मका स्थान हमारे तृतीय व्याख्यानके विषयसे जिसको हमने विज्ञान (सायन्स) के नामसे अंकित किया है और जो तुलना करनेके लिये एक यथार्थ कसौटी और आपसमें मिलाप करनेका सत्य द्वार प्रमाणित हुआ है, प्रकट है। वास्तवमें श्रीतीर्थंकर भगवानोंका धर्म ही वह राज्य-सभा है जहां अन्य सर्व धर्म मिलकर-एक दूसरेसे हाथ मिला कर-विरोधको दूर कर सकते हैं। यह आपसका मिलाप जिसको 'असहमतसंगम' के नामसे मैंने प्रसिद्ध किया है किसी अन्य सभामें संभव नहीं है और यह इस कारणसे नहीं है कि अन्य धर्मोंमें पुरुषोंके सम्मेलनके लिये स्थान नहीं है। न इस कारण से [illegible] सब एक दूसरेसे ईर्ष्या द्वेष रखते हैं। न इस कारणसे कि उनकी इच्छा आपसमें लड़ने झगड़ते रहनेकी है। बरन् इस कारणसे है कि वे सब एकान्तवादके माननेवाले हैं जो अनेकांतवादका सनातनी गाढ़ शत्रु है। इन दोनों सिद्धांतोंमें भेद इसप्रकार है कि जब कि वह लोग जो जैनधर्मानुयायी नहीं हैं, अपने धर्मकी सत्यता और दूसरे धर्मोंकी नितांत और पूर्ण-रूपेण असत्यतापर जोर देते हैं तब जैनधर्मानुयायी, जो अनेकांतका पोषक है अपनेको इस बातकी खोजमें लगाता है कि देखें विपक्षीका मत किसी दृष्टिसे ठीक तो नहीं बैठता है। आपके सामने इन व्याख्यानोंमें जैन खोजका फल विद्यमान है। मुझे यह कहने की आवश्यक्ता नहीं है कि इससे क्या नतीजा निकलता है।

जैसा हमने देखा है सर्व धर्मोंका जैनसिद्धान्तके तत्त्वों पर हर्ष-दायक एक मत है। मानो प्रत्येक प्राचीन धर्म अपने साथियोंसे वैज्ञानिक सिद्धान्तकी विजय करनेमें बाजी ले जाना चाहता है मुझे विश्वास है कि केवल यही बात उस परिश्रमका जो अन्य मतोंके समझनेमे करना पड़ा है, काफी पारितोषिक है। अपने निजी संतोषके बारेमे भी हमारेलिये सत्यताकी पूर्ण गारन्टी (१) सायन्स (विज्ञान) (२) न्याय और (३) साक्षीकी एकतामें मिलती है। और जैसा कि द्वितीय व्याख्यानमें कहा गया है जिस व्याख्यापर इन तीनोंका ऐक्य हो जाता है वहां संशय व विवादके लिये रंचमात्र स्थान नहीं रहता है। यहांपर हमारे सामने निम्नलिखित बाते हैं:—

(१) सिद्ध भगवानों अर्थात् तीर्थंकरोंका बताया हुआ सत्य धर्म है जिन्होने स्वयं उस पर चल कर परमात्म-पदको प्राप्त किया [यह परमात्माओंकी साक्षी हुई]।

(२) इस सत्यधर्मके सिद्धांतका पूर्ण समर्थन प्रकृतिके क्रम व अनुभवसे होता है [यह सायन्स हुआ]।

(३) बुद्धिका भी पूर्ण एकत्व पूरी छान बीनके पश्चात् परमात्माओंके इस सिद्धान्तसे है [यह न्याय हुआ]।

और

(४) मुख्यतः यथार्थ समर्थन, जो सब प्राचीन धर्म बिना किसी एक भी व्यतिरेकके सत्यके सिद्धान्तका करते

है जिससे अतीव स्पष्ट रूपसे भूतकालमें सर्व मनुष्य जातिका परमोत्कृष्ट सिद्धान्तकी सत्यता और उसकी व्यवहृत उपयोगिताका साक्षी होना साबित होता है।

अब रहा यह प्रश्न कि आजकल हम लोगोंमें क्यों ऐसे सर्वज्ञ गुरु जो हमारे झगडोंको मिटा सकें नहीं होते हैं? इसका उत्तर यह है कि आजकलके दिन बहुत बुरे दिन हैं। और भविष्यमें इनसे भी बुरे आनेवाले हैं। इस कालके लोग तपस्या करनेकी योग्यता नहीं रखते हैं। और सर्वज्ञता बडी कठिन तपस्याके विना प्राप्त नहीं हो सकी है। चूंकि वर्तमानमें वास्तविक तपस्वी नहीं हो सके हैं अतः आजकल सर्वज्ञ भी नहीं हो सके हैं। यह काल, जिसमें हम वास कर रहे हैं वास्तवमें अति निकृष्ट है। भौगोलिक मध्यलोकके उस हिस्सेसे, जिसमें हम रहते हैं, आजकल कोई मनुष्य मोक्ष प्राप्त नहीं कर सका है। इससे भी बुरा समय आगे आनेवाला है। इस समस्त अशुभकालकी संख्या ४२००० वर्षकी है। जिसमेंसे अनुमानतः २५०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस कालके संबंधमें यह भविष्यद्वाणी है कि इसमें कोई मनुष्य संसारके उस भागसे जिसमें हम रहते हैं, निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकेगा। इस भविष्यद्वाणीका गुप्त हवाला इंजील मुकद्दसके नए अहदनामेमें भी आया है जहां पर कहा गया है कि:—

"...... जब आकाश तीन वर्ष और छै मास बन्द रहा था

और जब पृथ्वी पर विकट अकाल था.......” (देखो लूकाकी इंजील अ० ४ आ० २५)

साढे तीन सालके ४२ मास होते हैं जिनको एक एक सहस्र वर्ष माननेसे सब ४२००० वर्ष होते हैं। इसका अर्थ चाहे कुछ ही क्यों न हो परन्तु यह प्रत्यक्ष है कि व्यतीत २५०० वर्षोंमें मनुष्यकी दशा निम्न लिखित कार्य्योंमें विशेष बुरी हो गई है:—

(१) धर्मके विषयमें, जो अनुमानतः सर्वथा लुप्त प्राय हो गया है। और जिसके स्थान पर आत्मविरोधी पुद्गलवादका सिद्धान्त वा मनःकल्पित शास्त्रोंके देवी देवताओंकी मूर्खवत् निःकृष्ट पूजा प्रारंभ हो गई है।

(२) सदाचारके विषयमे, जो दिनो दिन कम होता जाता है और जिसके स्थान पर छल व कपट मनुष्योंमे बढ़ते जाते हैं।

(३) अवकाश और सुख सम्पन्नताके विषयमें जो खर्चके बढ़नेसे विशेष तेज चालके साथ अंतर्हित होते जाते हैं।

(४) बुद्धि विचारके विषयमें जिसके सबसे विशेष विख्यात आदर्श (नमूने) ने हाल हीमे इस व्याख्या पर अपना विश्वास जमालिया है कि संसारके धर्म्मोंके प्रवर्तक प्रारंभिक जानिके बनमानस थे जो सभ्यता और विद्याकी अपेक्षा केवल नन्हें बच्चे थे।

(५) विज्ञान (सायन्स) के विषयमें, जो अन्ततः इस विचारसे अपनेको संतुष्ट करता है कि अन्तमें कब्रमें सदैवकी शान्ति मिलेगी क्योंकि यह हर्षकी बात है कि आत्मा कोई पदार्थ ही नहीं है जिसको भविष्यकी उन्नतिके लिए कोई मनुष्य अपनेको दुःखी करे।

(६) शारीरिक बलके विषयमें, जो किसी किसी स्थानपर प्रत्यक्षतः बहुत कम हो गया है। और जो भोजनकी कमीसे, मरीमारियोंसे और रात दिनकी लड़ाइयोंसे और भी कम होगा। और

(७) मनकी शांतिके विषयमें, जो बिना धर्मके प्रायः असम्भव है और जो वर्तमानमें आजकलकी विशाल द्रुतगामी सभ्यतासे घुट घुट कर नष्ट हो रही है।

यह दोष भारतवर्ष और किसी किसी अन्य देशमें विशेष प्रत्यक्ष रूपसे दिखाई पड़ते हैं। परंतु शेष देशोंकी बारी भी आया ही चाहती है दुःख और क्लेशकी जड़ तो योरोपियन महाभारत पश्चिममें रख ही चुका है। और नष्टताके कार्यको पूर्ण करनेके लिए (Modern) आधुनिक सभ्यताकी गति और उसके धर्म-रहित राजनीति एवं उद्देश्य, जो किसीको कुछ काल भी शांतिसे रहने नहीं देते हैं, पर्याप्त हैं। धर्मकी एक यह भी भविष्यद्वाणी है कि आजसे अनुमानतः १८५०० वर्षके उपरान्त अग्नि इस

संसारसे लुप्त हो जायगी। और यह बात ध्यान देने योग्य है कि कोयला बहुत शीघ्र ही खत्म हुआ जा रहा है। इसकी यथार्थता चाहे कुछ ही क्यों न हो परन्तु मैं यहां पर आपका चित्त भविष्यद्वाणियोंसे बहलानेको नहीं खडा हूं। यह बुरा समय है। और इससे भी बुरा आगे आनेवाला है। यद्यपि यह आवश्यक है कि समय समय पर हमारा अवनतिके गर्तमें गिरना रुकता रहे। यह ही कारण है कि आज कल हमारे मध्यमें कोई तीर्थंकर नहीं हैं। और न कुछ काल तक होंगे। जैन शास्त्रोंके अनुसार अब भविष्यमें प्रथम तीर्थंकर भगवान आजसे अनुमानतः ८१५०० वर्षके उपरांत इस अवनतिके चक्रके बदल जाने पर होंगे।

एक ऐसे संसारमें जिसका प्रारंभ और अन्त नहीं है धर्मके प्रारंभका प्रश्न उठाना व्यर्थ है। जब कोई आत्मा तीर्थंकर पदवीको प्राप्त होता है तब वह जीवन (आत्मा) के गुणोंके संबंधमें सत्य सिद्धांतोंको फिर नए सिरेसे सर्वसाधारणको समझाता है इन वैज्ञानिक सिद्धांतोंका ही नाम उनके समुदायरूपमें धर्म है। तीर्थंकर भगवानकी वाणी 'श्रुति' कहलाती है, जिसको स्मृतिसे पृथक् समझना आवश्यक है। आप्तवचन (तीर्थंकर भगवानका वचन) पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको वैज्ञानिक ढंग पर (Scientific) वर्णन करता है। परंतु वह तर्क वितर्कके झंझटसे बाहर होता है। यथार्थ श्रुतिके सच्चे लक्षणोंका उल्लेख मैं

पहिले कर चुका हूं। वह सब वास्तवमें इसके वैज्ञानिक भावका समर्थन करते हैं। आजकलके लोगोंके ईश्वरीयवाणीके संबंधमें विविध प्रकारके अटकली विचार हैं। कुछ कहते हैं कि सृष्टि रचनेसे पूर्व एक दफा ईश्वरीय वाणी होती है। कुछ कहते हैं कि वह एक आकाशमें सत्ताधीश ईश्वरका वचन है। कुछका मत है कि वह स्वभावतः मनुष्यकी समझके बाहर होना चाहिए कारण कि अल्पबुद्धिधारककी समझमें अनंत सम्पूर्ण ज्ञाताके वचन कैसे आवें। परन्तु ये सब केवल कल्पनामात्र हैं। दि पर्मेनेंट हिस्टरी ओफ़ भारतवर्ष नामक ग्रन्थमें, जिससे आप पूर्वमें ही परिचित हो चुके हैं, यथार्थ श्रुतिके लक्षण इसप्रकार अङ्कित हैं:-

"श्रुति प्रमाण संस्कृत न्यायके छै प्रकारके प्रमाणोंमेंसे, जैसे प्रत्यक्ष,......एक प्रकारका प्रमाण है। आप्त अर्थात् किसी अनुभूत यथार्थ ज्ञानके प्रोफेसरकी, उस ज्ञानकी शिक्षा, जिससे वह अनुभवसे परिचित है शब्द वा श्रुति प्रमाण कहलाती है। आप्तकी शिक्षा केवल ज्ञान उत्पादक शिक्षा होती है जिस पर अनुभवद्वारा अनुसाधन करनेसे अमली विश्वास आप्तके समान हो जाता है,......शब्द ऋषिका भाव उस मनुष्यसे है जिसने यथार्थ ज्ञानको निज अनुभव द्वारा प्राप्त किया है। और उसके ऐसे अनुभवका वर्णन उसके शिष्य श्रुति द्वारा अथवा सुननेसे प्राप्त करते हैं। और इसके पश्चात् उस पर अमल करनेसे वैसे ही ऋषि

वा पैगम्बर हो जाते हैं। जैसा उनका गुरु होता है।"

(देखो भाग १ पृष्ठ २८।२९)।

वास्तवमें सर्वोत्कृष्ट प्रोफेसर या विशेषज्ञ तीर्थंकर ही होता है जो परमात्मपद और सर्वज्ञताको प्राप्त होता है। जिससे न तो कोई पद उत्तम है और न कोई ज्ञान विशेष। पूर्ण विशेषज्ञ गुरुका वचन लोग दिगदिगंतरों तक पहुंचाते हैं। और उसको शास्त्रो द्वारा सुरक्षित रखते हैं। जिनको उनके लेखक अपनी योग्यता और इच्छाके अनुसार विविध प्रकारसे लिखते हैं। वर्तमान कालमें जो कुछ हुआ है वह ऐसा जान पडता है कि कवियोका एक समुदाय आप्तवचनके अलंकृत करनेमें तन्मय हो गया और उसके ऊपर उन्होंने मनोमोहक कथायें (पुराण) रच डालीं। यह विशेष प्रचलित हुए और लोगोंको ऐसे पसन्द आए कि प्रत्येक सम्प्रदाय और देशोंके लोगोंने परमोच्चतम विचक्षणता पानेके हेतु एक दूसरेसे बाजी ले जानी चाही, जिसका फल यह हुआ कि धर्मकी यथार्थ शिक्षा मानुषिक विचार और कविकल्पनाकी अनन्त सन्ततिके नीचे दब गई। और कुछ काल पश्चात् लोग इसे पूर्णरूपेण भूल गए।

समयके प्रभाव और मानुषिक भाग्यके चक्रसे स्थान स्थान पर देवालय और मंदिर, जिनमें मानुषिक विचारसे उत्पन्न हुए देवी देवताओंकी मूर्त्तियां स्थापित की गईं, बन गए। यहां पर अनभिज्ञ लोग भी पहुंचे जिनको अंततः इन मनुष्यों द्वारा निर्मा-

पित देवताओंकी पूजाका प्रोत्साहन दिया गया। फिर अनभिज्ञ जनताकी पारी आई। कारण कि ऐसी कुदेव-भक्तिके मनुष्योंके हृदयोंमे घर कर लेनेसे जो पुजारियोंकी आमदनीका मार्ग हो गयी थी, एक स्पष्ट विभाग, उनमें जो भेदसे परिचित थे (अर्थात् यथार्थ भावको समझनेवालोंमें) और अनभिज्ञ जनतामें (मानसिक रूपकोंको यथार्थ देवता माननेवालोंमें) जो उन देवालयोंके पुजारियोंके जीविकाप्रदायक भी थे, उत्पन्न हो गया। लोभके अंशने भी जिस पर गुरु और चेलेका सम्बंध स्थापित हुआ, कुफल दिखलाया। कुछ कालमें भ्रमात्मक असत्य सिद्धांत सर्वसाधारणमें फैल गए जिनको कि यथार्थ सत्यसे परिचय नहीं था। और विपक्ष मत सुननेकेलिए लोगोंमे संतोष नहीं रहा, जिसके कारण उपरांतमें बड़े बड़े झगडे और गाढ़ शत्रुता आपसमें उत्पन्न हो गये। साथ ही साथ मर्मज्ञ लोगोकी संख्या कम होती गई। और अंत में यह दशा उपस्थित हुई कि फिर किसी गुप्तसमस्यापरिचायक में सर्वसाधारणके सामने यथार्थ भेद बतानेका साहस न रहा। उस समयसे रहस्य ज्ञाताओंने गुप्त शिक्षाको हितकर समझा। और उसके लिए प्रत्येक स्थानमे रहस्यालय और शिक्षास्थान नियत हो गए। यह विविध देशोंमे विविध नामोसे विख्यात हुए। परन्तु भाव सबका एक ही था कि जीवनसत्ता अर्थात् पुत्र वा ईश्वरके पुत्रको मृत अवस्थासे जीवितावस्थामें लावें।

इस समय तक तीर्थंकर भगवानोकी प्रत्यक्ष एव सरल

वैज्ञानिक शिक्षाके माननेवालों और देवी देवताओंके शास्त्रोंके मर्मज्ञोंका अंतर भी बहुत बढ़ गया था। जिसके बढ़ानेपर मर्मज्ञ लोग जिनको अपने भक्तोंके सामने अपनी बातकी प्रतीत रखनी थी, विवश थे। अस्तु, ये बातें यो ही होती रहीं, अन्तमें शाखा अपनेको वृक्षसे पृथक् समझने लगी। और अब अपने मूलसे अपने संबंधको चिल्ला चिल्ला कर अस्वीकार करनेमे दत्तचित्त है। और कभी उसको नास्तिक और कभी अनिश्चित और कभी धर्मविरोधक कहती है। नूतन किन्तु हमारे द्वारा निर्मापित धार्मिक वंशावलीमें, वह हैं कि जो या तो प्रचलित रीतिरिवाजोंके सुधार रूपमे हैं अथवा ऐसे हैं कि जिनसे प्राचीन धर्म्मोंसे विशेष हीनावस्थामें सदृशता पाई जाती है। इनका प्रारंभ ईश्वरीय श्रुतिपर निर्भर नहीं है। और इनकी शिक्षा किसी प्राचीन शास्त्रकी भ्रमात्मक व्याख्यासे कि जिसको उन्होंने पूज्य स्वीकार कर लिया है, उत्पन्न हुई है। संक्षेपतः इनकी वह दशा है कि मानो वह शास्त्रीय शब्दार्थके अंधेरे तहखानेके मार्गसे तत्काल ही लपकते हुये धार्मिक मञ्च पर आ उपस्थित हुए हैं। और अब तेजीके साथ उन भ्रमात्मक परछाइयोंके संबंधमें, जिनको उन्होंने मार्गमें देखा, अपनी सम्मतिका प्रकाश कर रहे हैं। अवश्य ही कहीं कहीं हमको इनके वर्णनमें यथार्थ बुद्धि-विचक्षणता दृष्टिगोचर होती है, परन्तु यह उस समय ही पर है कि जहां किसी सुधारकने पुराणसंबंधी कथाकहानियोंके स्थानमेंसे जल्दीसे

गुजरते समय किसी अमुक रूपक पर विशेष रूपसे ध्यान दिया है।

अब विविध धर्मोंके आपसी संबंध पर विचार करते समय यूं कहना उपयुक्त विदित होता है कि धर्म एक मध्यवर्ती मंदिर के सदृश है जो एक सुन्दर शहरमें अवस्थित है और जहां शुद्ध बुद्धि अपने नित्य स्वाभाविक प्रकाशमें सिंहासनारुढ़ है। यह पवित्र जिनवाणी (श्रुति) है जो तीर्थंकर द्वारा उत्पन्न हुई हैं, जिनकी पूजनीय मूर्त्ति मंदिरकी वेदीमें मनुष्योंको सत्यकी ओर लगानेके लिए मार्गप्रदर्शकरूपमें विराजमान है। यहां पर बुद्धिका प्रकाश इतना तेजमय है कि बहुत कम लोग इस स्थान तक विना चौन्धियायेके पहुंच सक्ते हैं। परन्तु शहरके विभिन्न स्थानोंसे अनेक ढके हुए मार्ग हैं जो एक भूगर्भमय घोलघुमाव देवालयोंकी क्रमावलीको जाते हैं। इन देवालयोंकी दिवालों पर बहुतसे देवताओं और मनुष्योंके चित्र ऐसी कारीगरीके साथ चित्रित हैं कि मानो जीवित ही हो। इस स्थानपर प्रत्येक जातिके पृथक् पृथक् देवालय हैं। यहां पर वैदिकमतके, यहूदियोंके, पारसियोंके, अरबोंके, एवं अन्य अनेक देवालय हैं जिनको विविध जातियोंने निर्मापित किया था जिनमें कुछका तो नामोल्लेख मात्र भी अवशेष नहीं है। ये समस्त देवालय वेदीके निम्नभागके चहुंओर अवस्थित हैं कि जहां सत्यकी मूर्त्तिके समक्ष जिनवाणी देवी संरक्षक-अधिपति रूपमें विराजमान हैं।

और इन देवालयोंकी दिवालोंके ऊपर जो देवी देवताओंके चित्र अंकित हैं, उनको ऐसी कुशलतासे प्राचीन चित्रकारो और शिल्पकारोने दीवालोंको खोद खोद कर बनाया है कि उनमेंसे प्रत्येक अपने स्थानपर बिलकुल ठीक ठीक बैठ जाता है। और, उनकी शिल्पचातुरी इस प्रकार उत्तम एवं उनके चित्रकारोकी श्रेष्ठता इस उत्कृष्ट प्रकारकी है कि आपको वह मनुष्य द्वारा निर्मित चित्र नहीं विदित होते हैं सुतरां यह भान होता है कि जीवित देवता, मनुष्य और पशु, अमर पुरुषोकी क्रीड़ाओंमें दत्तचित्त हैं।

यहां पर आप गणेशजीको हिन्दू देवालयके दरवाजेपर विराजमान पायंगे; जहां आप इन्द्रको अब भी अपने गुरुकी स्त्री को आलिंगन करते देख सक्के हैं जिसके कारणसे उसके शरीर पर फोड़े फुन्सी फूट निकले है जो इन्द्रके ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने के कारणसे नेत्रोंमें परवर्तित हो रहे हैं। यहूदियोंके देवालयमें आप बाग अदनको उसके दोनो प्रसिद्ध एवं विख्यात वृक्षोंके साथ देखेंगे। और आदमके वर्जित फलके खानेका ड्रामा होता हुआ पायेंगे। सामने ईसाई मतके देवालयमें यरदन नदीके किनारे, जिसमे स्नान करना भी वर्जित था, आप यहुन्नाको बप्तिस्मा देते हुए पायंगे। और एक महात्माको मृतकोंको जीवित करते हुए, और खोपड़ीकी हड्डीके स्थान पर बहिरात्माको वैराग्यके रूपक क्रास (स्लीब) पर चढ़ाते हुए देखेंगे । और अरबमें आपको

मुसलमान और यहूदी लोग गऊकी कुरबानीका उत्सव करते हुए मिलेंगे। परन्तु इन देवालयोंके द्वारा वेदीके स्थान पर जानेका कोई मार्ग नहीं है सिवाय कुछ गुप्त दरवाजोंके, जिनको उनके शिल्पकारोंने ऐसा छिपाया है कि केवल सूक्ष्मदृष्टिवालोंके अतिरिक्त वे अन्य किसी व्यक्तिको रंचमात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। यह देवालयोंकी भूगर्भमय भूलभुलैयाँ समूची ही अंधकूपमें पड़ी हैं। और यहां जो कुछ प्रकाश है वह केवल वह ही रंगीन झलक, वेदीके अभ्यंतर प्रकाश की है जो इन अद्भुत चित्रों और रूपकों Personifications को प्रकाशमय कर रही है और उनमेंसे छन कर आ रही है। वेदीमें जानेके लिए एक कुञ्जी थी जो भूतकालमें प्रत्येक चित्रकारको ज्ञात थी। परन्तु वह ईसाई संवत्‌के बहुत समय पहिले लुप्त हो चुकी थी यद्यपि वह नूतन क्रमसे उस समय बनाई गई थी। अनुमानतः १३०० वर्ष हुए जब पुनः एक बार यह कुञ्जी कुछ तालोंमें लगाई गई थी परन्तु इसमें विशेष संशय है कि जबसे किसीने आज पर्य्यन्त इस कुञ्जीको पाया हो अथवा इससे कोई ताले खोले गए हों। आज वह कुंजी आपके हाथोंमें देदी गई है जैसा कि आप देखते हैं वह कुंजी लोहे वा पीतलकी नहीं है, न यह किसी मूल्यवान धातु सोने या चादी की है। परन्तु वह Key of Knowledge (ज्ञानकी कुञ्जी) है। जो स्वयं प्रकाशमय है और अपने इर्द गर्दके पदार्थोंको प्रकाशित करती है। इसके दिव्य

प्रकाशसे वे द्वार एवं ताले जो वेदीके जीवन (Life) और ज्योति (Light) के राजमंदिरमें प्रवेश करनेसे रोकते हैं प्रत्यक्षतया दृष्टिकोण हो जाते हैं। यही ज्ञानकी कुञ्जी है कि जिसके लुप्तकर देने पर ईसूने शराके वेत्ताओंको डांटा था जैसा कि लूकाकी इन्जीलमें (देखो अध्याय ११ आ० ५२) लिखा है:—

'ऐ! शास्त्रके वेत्ताओ! तुम पर खेद है कि तुमने ज्ञानकी कुञ्जीको खो दिया है। तुम आप भी प्रविष्ट न हुए और अन्य प्रवेश करनेवालोंको भी तुमने रोका।"

यही वह ज्ञानकी कुञ्जी है जो फिर नवीन रूपसे बना करके तुम्हारे हाथोंमे दी गई है और मैं आशा करता हूं कि तुम इसको पुनः लुप्त नहीं होने दोगे। और इसके नूतन संस्कार (निर्माण) के सम्बधमे यह अनोखी बात है कि इसको प्रारंभमें Doctors of Law (शास्त्रज्ञो) ने खोया था। और अब पुनः इसको एक Lawyer (वैरिस्टर) ने नवीन रूपसे रचा है।

मैं आशा करता हूं कि मैंने आपके समक्षमें प्रेम व मिलापके मंदिरका यथार्थ चित्र चित्रित किया है जैसा कि वह वास्तवमे है, और जैसा उसको होना चाहिए। कारण कि मुझको ऐसी बात कहनेसे, जिससे किसीका दिल दुखे, खेद होगा। परंतु हम केवल सिड़ीपनके पाखण्डको भी वैज्ञानिक (Scientific) खोजमें दखल देते नहीं देख सक्ते हैं। अस्तु, यदि कोई सज्जन मेरे निर्णयसे दुःखित हों तो मैं केवल उनको इस बातका विश्वास

करा सका हूं कि मेरी इच्छा किसीके दिल दुखानेकी नहीं है। अधिक बात चीत इस विषयमें, हमारे उद्देशसे ही जिसका भाव सत्यकी खोज है, मना है। इस विचारमें कि यह धार्मिक विज्ञान (सायंस) का सिद्धांत केवल वर्तमानके जैनियोंकी सम्पत्ति नहीं है सुतरां यह एक भूतकालीन समयमें समस्त मनुष्योंको ज्ञात था, यथार्थ मिष्ठता है। बल्कि यह असम्भव नहीं है कि इस समयके जैनी उन लोगोंके वंशज हों जिन्होंने ज्ञानकी मशालको वर्तमानके ऐतिहासिक समयमें ही पालिया व उठाया है, और जो अभाग्यवश उसको अभी तक संसारमें चहुं ओर नहीं पहुंचा सके हैं। तब तो प्राचीन कालमें आपके पूर्वजोंका सत्य सिद्धांत का रक्षक-अधिकारी होना उतना ही बुद्धिगम्य है जितना मेरे पूर्वजोंका। अर्थात् आप सत्यसे अपरिचित नहीं कहे जा सकते हैं।

और अंत में कुछ शब्द जीवन (Life) के यथार्थ उद्देश्यके, उस पर अमल करनेके, सम्बंधमें कहूंगा। निःसंदेह धर्मसे कुछ लाभ नहीं है यदि उस पर अमल न किया जावे। केवल वाद-विवादसे क्या लाभ प्राप्त हो सक्ता है? यद्यपि यह बात नितान्त योग्य है कि जब श्रद्धा एक बार उत्पन्न हो जाती है तो वह बिदुन मोक्ष दिलवाए नहीं रहती। कारण कि यह एक जीवनसंबंधी प्राकृतिक नियम है कि श्रद्धा कभी न कभी अपनेको चारित्रके रूपमें अवश्यमेव प्रकट करती है।

अब यदि आप अपने चहुं ओर नेत्र उठाकर देखेंगे तो यह पांयगे कि संसार क्लेशों (कष्टों) और असंतुष्टतासे भरपूर है। प्रत्येक स्थानपर अवनति (बरबादी) विद्यमान है और मनुष्योंके हृदय, क्लेशोसे दुःखित एवं कष्टोसे भेदित है। यह आफतें किसी देवी देवता द्वारा प्रेरित नहीं हैं। स्वयं मनुष्योंका हाथ ही इनका कारण है। हमारी कभी शांत न होनेवाली हकूमतकी वाञ्छा और धनका लालच हमारे समस्त दुःखो व क्लेशोके कारण हैं। हम अपने कर्तव्योंका पालन नहीं करते हैं। हम अपने वचनोंको पूर्ण नहीं करते, हम अपने लेखप्रमाणोंको जब वह हमारे लाभदायक नहीं होते हैं, पगतले रौंद डालते हैं। तिस पर भी हम नीति और न्यायका ही सदैव राग गाया करते है। और कभी अपनी धार्मिक चारित्रशीलता व सत्यताको चिल्ला चिल्ला कर प्रसिद्ध करनेमें नहीं लजाते है। विचारे हतभाग्य अन्धे मनुष्य! यह महाशय तो अपने कृत्योसे अपने और अपने पड़ोसीको ही ठगनेकी इच्छा नहीं करते है वल्कि प्राकृतिक नियमोंके भी नेत्रोमे धूल डालनेवाले हैं यदि इनको ऐसा करनेका कोई मार्ग ज्ञात हो। सर्वसे प्रथम कार्य्य जो मनुष्यको करना चाहिए वह यह है कि वह अपनेसे सत्यताका वर्ताव करे। छल कपटके भाव और लूट खसोट व लालचके विचार मनसे निकाल कर जीवनके यथार्थ उद्देश्योको उनके स्थान पर कायम करना योग्य है। कारण कि जैसा इन्जीलमें लिखा है (देखो मत्तीकी इन्जील अ० १६ आ० २६) :—

"यदि मनुष्य समस्त संसार प्राप्त करे और अपने जीवन (आत्मा) की हानि उठाए तो उसे क्या लाभ होगा?"

'स्वयं जीवित रह और अन्य प्राणियोंको जीवित रहने दे' यह एक यथार्थ जीवनोद्देश्य सत्य धर्माचरणका है-जिसमे भी गुरुत्व (जोर) अन्तिम भाग पर है। कारण कि यदि अन्यके जीवनकी रक्षा करनेमे तुम्हारा जीवन व्यतीत हो जावे तो तुम्हारा पारितोषक दूसरे जन्ममे सम्पूर्ण व अटूट जीवन होगा। परन्तु यदि कहीं तुम ऐसे हतभाग्य निकले कि तुमने इस संसारमे अपने दिनोका परिमाण बढ़ानेके लालचसे किसी जीवित प्राणीका बलिदान कर डाला तो तुम्हारे आगे दुःख और क्लेशके अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। क्या तुमने इन्जीलमे यह नहीं पढ़ा है कि:-

"परन्तु तुम जा करके इसका अर्थ पूछो कि मैं बलिदान नहीं, सुतरां दयाका इच्छुक हूं।"

(देखो मत्तीकी इन्जील अध्याय १० आयत १३.)।

इसको फिर मत्तीके बारहवे अध्यायकी सातवीं आयतमें दुहराया है:—

"परन्तु यदि तुम इसका अर्थ जानते कि मैं बलिदान नहीं सुतरां दयाका इच्छुक हूं।"

क्या आप इसको नहीं समझ सके कि यदि किसीके प्राणों का घात करना किसी ईश्वर या देवी देवताके नाम पर हिंसाका

कार्य्य माना गया है और दयाका इच्छुक है तो क्या वह आपकी जिह्वा वा स्वादके अर्थ जायज होगा? जैसा टोल्सटाय साहब लिखते हैं :—

"यदि मनुष्यके धार्मिक विचार सत्य हैं तो उसका प्रथम त्याग नियम मांस खानेका त्याग होगा। कारण कि अतिरिक्त इसके कि इस प्रकारके भोजनसे क्रोध आदि अशुभ कषाय और भड़कते हैं—इसका भक्षण प्रत्यक्षतया न्यायके विपरीत है। कारण कि वह हिंसा (संहार) करने पर अवलम्बित है जो नीति [सदाचार] के विपक्षमें है। और लालच कषायके कारण होता है।"

जो मनुष्य मांस भोजनके विषयमें अपनेको धोखा देता है वह अन्य सर्व कार्य्योंमें भी अपनेको ठगता होगा। प्राण प्रत्येक जीवको प्यारे और आल्हादक हैं। और जो मनुष्य उसको एक क्षण भरके रसना इन्द्रियके स्वादके लिए नष्ट करता है वह दया और प्रेमकी सभामें (जो परमात्माओंके दो मुख्य गुण हैं) प्रवेश नहीं कर सक्ता है। हिंसाके भावोंके हृदयमें विद्यमान होते हुए जीव और पुद्गलका संयोग अति निःकृष्ट रूपमें होता है। और जीवको दूसरे जन्ममें अत्यन्त बुरी और दुर्निवार गतियोंमें खींच ले जाता है। इस समय जब कि बुद्धिका प्रकाश

विद्यमान है यह सम्भव है कि हम उसके द्वारा अपनेको सुधारें परन्तु यदि हम आगामी जीवनमें नीच गतियोमें गिर जायें तो यह सदैव हमारे लिए सम्भव नहीं होगा।

मांस भक्षणकी लोलुपताके विध्वंश होने पर हमको राज्य-नीति (पोलिटिक्स) के यथार्थ नियम भी प्रत्यक्ष जान पड़ेंगे। और उस समयमे जातियो, राष्ट्रों और सम्राटोंके सम्बंध भी प्रेम और दयाके सिद्धांतों पर निर्णीत हो सकेंगे।

यह बात जानने योग्य है कि जीवनके चार प्रकारके उद्देश्य होते हैं। जो—

(१) धर्म,

(२) अर्थ (अर्थात् धनसम्पन्नता),

(३) काम (अर्थात् विषय सुखसम्पन्नता),

और

(४) मोक्ष

कहलाते हैं। इनमेंसे प्रथम तीन तो गृहस्थके उद्देश्य हैं और चौथा साधूका जिसने संसारसे पूर्णतया सम्बंध त्याग दिया है। इन गृहस्थाश्रमके ध्येयोमें श्रेष्ठतम मार्ग यह है कि काम अर्थात् विषयवासना सबसे हेय अवस्थाका ध्येय है। और अर्थ अर्थात् धन प्राप्तिको उससे बढ़ कर, एवं धर्मको अर्थसे उत्तम मानना चाहिए। कारण कि यदि आप उस मूल्यवान समयको जो धन प्राप्त करनेमें व्यतीत करना चाहिए, अज्ञानतावश मद्यपान व

विषयवासनामें नष्ट कर दें तो बहुत शीघ्र ही आप निर्धन दरिद्र अवस्थाको पहुंच जांयगे। और धर्मके विपरीत यदि धन प्राप्त हुआ भी तो वह अन्तमें नष्टता (बरबादी) ही का कारण होगा। अस्तु;

'......तुम पहिले परमात्माके राज्य और उसकी सत्यता को खोज करो, तो यह सब वस्तुएं भी तुम्हें मिल जांयगी।"

(मत्तीकी इंजील अध्याय ६ आयत ३३)।

साधूका जिसने ससारको त्याग दिया है स्वभावतः मोक्षके अतिरिक्त अन्य कोई ध्येय नहीं हो सक्ता है। इस कारण न वह विषयाकांक्षा करता है, न धनको और न पुण्यके कार्य्योंको ढूंढता है। सुतरां वह सदैव ही अपने कर्म्मोंके नाश करनेके लिए अपनी ही आत्माके शुद्धध्यानमें संलग्न रहता है। यह मुझको कहना चाहिए कि पुण्य और पाप दोनों ही कर्मोंके बंधन और आवागमनकी स्थितिके कारण हैं। केवल भेद इतना है कि पुण्य बंध आनंददायक (उच्च कुलमे उत्पन्न होना, उत्तम सम्बंध आदि) होना है, और पापसे कष्टमय दशा और सम्बंध प्राप्त होते हैं। इस कारण साधु पुण्य पाप दोनोंको छोड़ कर आत्माके शुद्ध ध्यानमें तल्लीन होता है जो आवागमन और कर्म्म बंधकी जड़ रागद्वेषको बहुत शीघ्र उखाड़ डालता है।

मैं समझता हूं कि अब मुझे इस विषयको पूर्ण करना चाहिए। मैंने जितना कहा है वह यथार्थ उन्नतिके लिए और उन

ठोकर खिलानेवाले रोड़ोंसे जो धार्मिक कथानकोंके धुंधले मार्ग में पड़े हैं, बचनेके लिए पर्याप्त है। अब आपको स्वयं फावड़ा हाथमें लेना चाहिए और खोजको भिन्न २ स्थानो पर एवं उन सीमाओंके बाहर जहां मैं पहुंच पाया हूं, चालू रखना चाहिए। मिस्टर अय्यरकी पुस्तक दि पर्मेनेन्ट हिस्ट्री ओफ भारतवर्ष (The Prmanent History of Bharhtvarsha) जिसका उल्लेख पहिले अनेक बार किया जा चुका है, हिन्दू रूपक अलङ्कारोके विवेचनमें कोई बात अवशेष नहीं छोड़ती है, यद्यपि मैं बहुत खुश होता अगर वह और भी जियादा स्पष्ट और क्रमानुसारी होती। शेषके सर्व धर्म अब तक एक मुहरबन्द पुस्तकके सदृश हैं अतिरिक्त इसके कि एक अमरीकन खोजी जे० एम० प्राइज (J. M. Pryse) साहबने पुस्तक मुकाशफा इन्जील पर एक अति उत्तम और दर्शनीय विवेचन छापा है, जिसको उन्होंने बहुत उच्च मानसिक विश्वास व उत्साहके साथ लिखा है। उनकी पुस्तक (दि एपोकेलिप्स अनसील्ड) में विशेष त्रुटियां नहीं मिलती हैं। और जो थोडीसी मिलती हैं वह ऐसी हैं कि जिनको एक ऐसा योरोपियन वा अमरीकन सत्य-खोजी जिसने सत्यकी इस कुमारी देवी और प्रतिपालिकाको जो जिनवाणी वा ईश्वर (तीर्थङ्कर) की कन्या कहलाती है पूर्ण विश्वासके साथ प्रणाम नहीं किया है, बचा नहीं सक्ता है। दृष्टांतके लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा। मि० प्रायज़की

तीर्थंकर भगवानोंके गुण, संख्या, पद और कर्तव्यसे परिचय नहीं था, और इस कारणवश जब वह उस स्थान पर पहुंचा जहां मुकाशफाके ड्रामामे २४ आध्यात्मिक पूर्वजोका उल्लेख आया है तो वह उसके भेदको न समझ सका। और जल्दीसे २४ पूर्वजोंको २४ पन्द्रहवाड़ों (पखवाड़ों) के रूपमें मान बैठा। और फिर इनका वर्णन एक दम ही पूर्ण करके बिदून इन २४ पखवाड़ोंका अन्य कुछ अर्थ समझाए अन्य विषयमें संलग्न हो गया। यह उसके विचारमे नहीं आया कि देखें मोक्षका २४ पखवाड़ोंसे क्या सम्बंध हो सक्ता है। आपको ध्यान है कि यह चौबीस आध्यात्मिक पूर्वज एक मोक्षेच्छु आत्माके ईश्वरीय दशामें प्रवेश कराए जानेके समय चौबीस आसनों पर जीवनके आसन के चहुंओर बैठे हुए हैं। तीर्थंकरोंके रूपमें तो यथार्थमें उनका ऐसे दरबारमें उस समय सिंहासनारूढ़ होना नितांत उपयुक्त है कारण कि वह सच्चे पथप्रदर्शक हैं। और मर्म्मज्ञानमें प्रवेश करानेके लिए ऐसे ही सर्वज्ञ पथप्रदर्शकोंकी आवश्यक्ता होती है। विश्वसतः श्रीतीर्थंकर भगवानसे उच्च कोई गुरु नहीं हो सक्ता है। कारण कि वह तो स्वयं परमात्मा हैं। और जैसा कि कुरान शरीफकी एक आयतमें, जिसका परिचय पहिले दिया जा चुका है, लिखा है :-

"ईश्वरका बपतिस्मा ! और ईश्वरसे बढ़कर बपतिस्मा (शिक्षा) देनेमें और कौन विशेषज्ञ हो सक्ता है।"

मैं आपको स्मरण कराता हूं कि यह मुकाशफेका ड्रामा आध्यात्मिक है (देखो पुस्तक मुकाशफा अध्याय ४ आयत २) जो जीवन (Life) के दरबारमें रचा जाता है। एक मोक्षेच्छु और स्यात् एक भविष्यकालीन तीर्थंकरको आत्मिक ज्ञानमें यथार्थरूप शिक्षा प्राप्त होनेवाली है। और वह भेद जो इसको सिखाया जायगा वह उस पुस्तकसे संबंध रखता है जो भीतर और पीछेकी ओर लिखी हुई है, और जिसपर सात मुहरें लगीं हुई हैं जिसका प्रत्यक्ष अर्थ शरीरमय सत्तासे है कारण कि वह भेदवाली पुस्तक रीढ़की नली और उसके सात नाड़ियोंके चक्र हैं। वह जो एक सिंहासनारूढ़ मध्यमें है वह जीवनका दिव्य प्रकाश सामान्द रूपमें है। कारण कि उसके न कोई वस्त्राभूषण दिखाए हैं और न उसके शरीरका वर्णन किया गया है। ऐसे दरबारमें ऐसी शर्तों (सूरतों) में और इन दशाओंमें आपको २४ पखवाड़ोंको २४ आसनो पर जिनके अतिरिक्त किसी अन्यके बैठने के लिए अन्य कोई आसन वहां पर नहीं है, बैठे हुए विचारना है! इसका यथार्थ वर्णन हम पहिले कर चुके हैं। वह जो मध्यमें सिंहासनारूढ़ है जिसमेंसे गर्जन, विद्युत, और शब्द निकल रहे हैं, जीवन है। कारण कि गर्जन आदि-जीवनकी स्वतन्त्र क्रियाके चिन्ह हैं। २४ आध्यात्मिक-पूर्वज २४ तीर्थंकर हैं जो प्रत्येक कालमें उत्पन्न होते हैं। इनके श्वेतवस्त्र इनके व्यक्तित्वके चिह्न हैं जिससे वह केवल जीवनसे जो सामान्य रूपमें उपस्थित है पृथक् समझे

आ सकें। इस प्रकार वह शुद्ध आत्मस्वरूप था दिव्य जीवनमय हैं। उनके वस्त्रोंका श्वेतपन उनका सर्व प्रकारके मल और पौद्गलिक अपवित्रतासे पाक होना प्रगट करता है। साफ शब्दोंमें वह अपने स्वाभाविक गुणोंका ही वस्त्र पहिने हैं। और उनके सोनेके ताज जिन्हें उस समुदायमें अन्य कोई धारण नहीं किए है उनके परमोत्कृष्ट पदके सूचक हैं। मुझे विश्वास है कि आप इस बात पर मुझसे सहमत होंगे कि इस समुदायमें सप्ताहों वा पखवाड़ोंके लिए कहीं स्थान नहीं है। जैसा पहिले कहा जा चुका है, मि० प्रायज जैनधर्मसे नितान्त अपरिचित थे जो किसी प्रकार भी उनका अपराध नहीं है। स्वयं व्याख्यान-दाता भी जो जन्मसे जैन है सन् १९१३ ई० तक जैनधर्मके तत्त्वों से नितान्त अपरिचित था। इसका कारण यह है कि जैनधर्मके शास्त्र अंग्रेजी और हिन्दीमे अब हालमें छपने लगे हैं। इस कारण जो मनुष्य इन्हीं दो भाषाओंको जानते थे उनको जैनधर्म के शास्त्रोंका, जो बीस वर्ष हुए किसी भाषामें भी प्रकाशित नहीं हुये थे, अध्ययन करना प्रायः असम्भव था। इस कमीके अवश्य-मेव जैनी ही अपराधी हैं। जब कि अन्य धर्म्मोंमे तीर्थङ्करोंका उल्लेख केवल गुप्त समस्यायोंके रूपमें आया है और जब कि उनकी जीवन चरित्रावली केवल जैनधर्ममें ही पाई जाती है, तब इसमें कोई विस्मय नहीं है यदि दूरस्थ अमरीकाका एक सत्य-खोजी जैनियोंके अपने शास्त्रोंको छुपाये रखनेके कारण धोखेमें

पड़ जावे। हम सब भी वैसी ही त्रुटियां कर सक्ते हैं। और फिर मिथोलोजी (कथानकोंके रूपमें धर्मतत्वोंका वर्णन) वह विद्या नहीं है कि जिसकी प्रशंसा की जावे यद्यपि इसके कथानकोंके भावोंको ढूंढना इस समय नितान्त आवश्यक है जिससे कि विभिन्न धर्मोंका विरोध दूर हो। उस मनुष्यके लिए जो मोक्षका इच्छुक है वैज्ञानिक (Scientific) मार्ग बतलाया गया है। इस कारण उसको इन देवी देवताओंके कथानकोंसे एक योग्य दूरी पर ही रहना उपयुक्त है जिससे कि वह उनकी वक्र गलियों और अकथ्य मार्गों और अंधेरी भूलभुलैयामें न फंस जाय। भावार्थ यह है कि पौराणिक कथानकों (Mythology) का अध्ययन एक खोजीकी दृष्टिसे करना उपयुक्त है। परन्तु भक्तिकी दृष्टिसे कभी नहीं। और सत्यखोजीको सफलता के हेतु जीवनविज्ञान (Science) से जिसके विविध सिद्धांत पत्थरकी मूर्तियोंके रूपमें संसारके जीर्ण देवालयोंमे पड़े मिलते हैं, परिचित होना उतना ही आवश्यक है जितना यह है कि उन चित्रकारोंके लिए, जिनके हाथ इन मूर्तियोंको नास्तित्वसे अस्तित्वमें लाए, हृदयमें सहानुभूतिका भाव हो।

और अब मैं वर्तमान समयके प्रचलित विचारो पर दृष्टिपात करूंगा जिसके अनुसार मनुष्य नीच पशुओंमेंसे उन्नति प्राप्त करके बना है। और उसने क्रमशः अर्ध असभ्यावस्थासे बुद्धि और धर्मको प्राप्त किया है। इसके संबंधमें मुझे केवल इतना ही

कहना है कि आपने स्वयं देखा है कि कहांतक हम लोग उनसे विशेष बुद्धिवान हैं जिनकी अर्ध असभ्यताकी मूर्खताको समय समय पर खिल्ली उड़ानेका फैशन वर्तमानके विद्वानोंमें प्रचलित हो गया है। आप स्वयं ही इस बातका निर्णय कीजिए कि आप सत्यसे परिचित निकले अथवा प्राचीन कालीन मनुष्य! और यदि आप इस अर्थको निकालें कि प्राचीन कालके मनुष्योंकी विद्वत्ता एवं योग्यताके विषयमें आपके विचार नितान्त असत्य थे तव अपने इस विचारको कि मनुष्य पशुओंमेंसे और पशु अजीव पदार्थोंमेंसे क्रम क्रमसे उन्नति प्राप्त कर बने हैं और इसी प्रकारके अन्य भ्रमोको त्याग दीजिए।

मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं इस विषयपर विशेष विवेचन कर सकूं और न मुझे इसका विषय परिचय ही है परंतु मैं इतना अवश्य कहूंगा कि मनुष्यों और जीवित प्राणियोंके प्रारम्भके सम्बन्धमें हमारी उपर्युक्त वर्णित सम्मति किसी ईश्वरीय वाणी पर अवलंबित नहीं है कि जो संशोधित नहीं की जा सके। वह एक शीघ्रकी स्थापित काम चलाऊ सम्मति है जो इसीप्रकारकी अन्य सम्मतियोंके सदृश आगामी विवेचनके चालू रखनेके लिए मान ली जाती है। यह सीमा है जिसके उपरांत कभी कोई सत्य वैज्ञानिक (Sceintist) नहीं वढेगा। परन्तु साधारण बुद्धिवाले वाह्य लोगोंका एक समुदाय है जो ऐसे शीघ्रतासे संगठित किए गए विचारोंका सत्य सिद्धांतके तौर-

पर चिल्ला २ कर दावा किया करते हैं। प्राचीन कालके मनुष्यों की गुप्त विद्वत्ता वर्तमानके सत्यखोजियोंकी सम्मतिको जो आज भी आत्माके गुप्त विज्ञानसे अपरिचित हैं, झुटलानेको पर्याप्त है। भाव यह है कि जो कोई मनुष्य इस बातका दावा करेगा कि वह भूतकालके मनुष्यकी समझको बुद्धिकी बाल्यावस्था प्रमाणित करे तो उसको सर्वप्रथम सत्य विद्वत्ताके उस विशाल ढेरका जिसको उसने अपने प्राचीनसे प्राचीन पूर्वजोंसे कथानकोंके रूपमें विरसेमें पाया है और जिसका अर्थ वह अबतक नहीं समझा है, हिसाब देना होगा कि वह कहांसे आया है? यथार्थ यह है कि ज्ञान किसी मुख्य समयसे और विशेषतया वर्तमान समयसे संबंधित नहीं है। प्राचीन कालके मनुष्य अपनी सादगी और उच्च विचारोंके कारण हमारेसे इसके विशेष अधिकारी थे यद्यपि प्राकृतिकरूपसे विशुद्ध ईश्वरीय ज्ञान उस कालमें भी थोड़ी ही नितांत उच्च आत्माओंसे सम्बंधित रहा होगा। जो लोग इस ज्ञानके प्रकाशकी सीमाके बाहर थे उनमें जरूर सब प्रकारके मनुष्य सम्मिलित होंगे अर्थात् असभ्योंसे लेकर सब उच्च कक्षाओंके मनुष्य और यह लोग अपने बुद्धिविकाश और भावोंके अनुसार प्रतिलिपि और निरूपण दोनों प्रकारके कार्य करते रहे होंगे। प्राचीन कालके बहुतसे रीति रिवाज केवल असभ्यताके प्रारंभिक समयके ज्ञात होते हैं। परंतु यह सम्भव है कि वह किसी गुप्तरहस्यकी दुर्भाग्य कापी हों, साथ ही यह ठीक है

कि असभ्यता भी कमसे कम उतनी ही प्राचीन है जितना कि, यथार्थ ज्ञानका प्रकाश। और बलिदानकी प्रथाको मर्म ज्ञानके भाव पहिनानेका प्रयत्न ही असभ्यो और मूढ़ोंको मनुष्य बनानेके विचारोंको प्रकट करता है। कारण कि मनुष्य और पशुओंके बलिदानकाण्डके रचयिता कभी-भी सच्चे धर्मात्मा वा शाकभोजी मनुष्य नहीं हो सकते थे कारण कि उनके पवित्र विचार और दयापूर्ण भाव मांस एवं रक्तपातका इस प्रकार पर वर्णन करनेको कभी भी तत्पर नहीं हो सकते थे। हिन्दू धर्मके परिणामका वर्णन 'प्रेक्टीकल पाथ' के शेष पत्रों (Appendix) मे दिखलाया गया है और संभवत: और धर्मोंका विवेचन भी इसी ढंगपर करना होगा तो भी प्रत्येक धर्मको उसके मुख्य हालातके लिहाजसे देखना होगा। कारण कि कोई ऐसे अचल कार्यकारी नियम निर्णीत नहीं किए जा सकते हैं जो विना संशोधन हर स्थानपर कार्यमें लाए जा सकें। मैं समझता हूं कि मेरे यह थोड़ेसे शब्द इस विषयपर उपयुक्त होंगे।

अब मैं धर्मका भावार्थ जिसको हम कुछ गतसप्ताहोसे समझ रहे हैं एक पदमें आपके समक्ष उपस्थित करूंगा। यह पद कोई नवीन नहीं है। यद्यपि स्यात् आपमेंसे कुछ सज्जन इससे अपरिचित हों। कारण कि यह भावार्थ मेरा नहीं है सुतरां कहा जाता है कि स्वयं जीवनका है, जिसको उसने बहुत काल व्यतीत हुआ, एक समय कहा थाः—

"मैं आजके दिन आकाश और पृथ्वीको तुम्हारे ऊपर साक्षी लाता हूं कि मैंने जीवन और मृत्यु एवं सुख और आताप तुम्हारे समक्ष रक्खे हैं। अस्तु; तू जीवनको पसन्द कर जिससे तू और तेरी संतान दोनों जीवित रहें।"

(किताब इस्तिसना इन्जील अध्याय ३० आयत १६)।

दूसरे शब्दोंमें 'जीवन ईश्वर है और वह मैं हूं।" धर्मका वाचवर्ड (पहिचान) है। और आप निश्चयतः मार्ग भ्रष्ट नहीं होंगे यदि आप हर प्रकारसे अपने ही जीवनमें अपना घर बनाने का प्रयत्न करें जो आपका यथार्थ कर्तव्य है। और अब इसके पूर्व कि हम एक दूसरेसे विदा होवें हमको जीवनसे प्रेम व दया व वैराग्यके आध्यात्मिक वरोंके लिए मिल कर प्रार्थना करनी चाहिए—और प्रत्येक जीवित प्राणीको चाहे वह आज जीवित प्राणियोंमें कितना ही नीचतम क्यों न हो, शांतिका संदेशा सुनाना चाहिए। निम्नलिखित कविता जो बाबू युगलकिशोर साहब सम्पादक जैनहितैषीकी रचना है, इस अवसरके लिए नितान्त उपयुक्त है और उनकी अनुमतिसे यहां उद्धृत की जाती है:—

(१)

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवोंको मोक्षमार्गका निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर जिन, हरि, हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह चित्त उसीमें लीन रहो॥

(२)

विषयोंकी आशा नहीं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज-परके हित-साधनमें जो निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थत्यागकी कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके दुखसमूहको हरते हैं॥

(३)

रहे सदा सत्संग उन्हींका, ध्यान उन्हींका नित्य रहे,
उनही जैसी चर्यामें यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊँ किसी जीवको, झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
परधन-वनिता पर न लुभाऊँ, सतोपामृत पिया करूँ॥

(४)

अहंकारका भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
देख दूसरोंकी बढ़तीको कभी न ईर्षा-भाव धरूँ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूँ,
बने जहाँतक इस जीवनमें औरोंका उपकार करूँ॥

(५)

मैत्रीभाव जगतमें मेरा सब जीवोंसे नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवोंपर मेरे उरसे करुणास्रोत बहे।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥

(६)

गुणीजनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँतक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहणका भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥

(७)

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे,
तो भी न्यायमार्गसे मेरा कभी न पद डिगने पावे॥

(८)

[illegible] मग्न न फूले, दुखमें कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक अटवीसे नहिं भय खावे।
रहे अडोल-अकंप निरन्तर, यह मन दृढतर बन जावे,
इष्टवियोग-अनिष्टयोगमें सहनशीलता दिखलावे॥

(९)

सुखी रहें सब जीव जगतके, कोई कभी न घबरावे,
बैर-पाप-अभिमान छोड़ जग नित्य नये मङ्गल गावे।
घर घर चर्चा रहे धर्मकी, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज-जन्मफल सब पावें॥

(१०)

ईति-भीति व्यापे नहिं जगमें वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजाका किया करे।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांतिसे जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगतमें, फैल सर्वहित किया करे॥

(११)

फैले प्रेम परस्पर जगमें, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं कोई मुखसे कहा करे।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदयसे देशोन्नतिरत रहा करें,
वस्तुस्वरूप विचार खुशीसे सब दुख-संकट सहा करें॥

इति असहमत-संगम समाप्त।